Barcode : 99999990311146
Title - Varahi Sanhita
Author - P, Mishra Baldev Prasad
Language - sanskrit
Pages - 246
Publication Year - 1925
Barcode EAN.UCC-13
9 999999 031114

रविजेन सिते विजिते गणमुख्याः शस्त्रजीविनः क्षत्रम् । जलजाश्च निपीड्यन्ते सामान्यं भक्तिफलमन्यत् ॥२४॥ असिते सितेन निहतेऽर्घवृद्धिरहिविहगमानिनां पीडा । क्षितिजेन टङ्कणान्ध्रोड्रकाशिबाह्लीकदेशानाम् ॥ २५ ॥ सौम्येन पराभूते मन्देऽङ्गवणिग्विहङ्गपशुनागाः । सन्ताप्यन्ते गुरुणा स्त्रीबहुला महिषकशकाश्च ॥ २६ ॥ अयं विशेषोऽभिहितो हतानां कुजज्ञवागीशसितासितानाम् । फलं तु वाच्यं ग्रहभक्तितोऽन्यद् यथा तथा घ्नन्ति हताः स्वभक्तीः ॥ २७ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां ग्रहयुद्धं सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अथाष्टादशोऽध्यायः ।

चन्द्रग्रहसमागम.

भानां यथासम्भवमुत्तरेण यातो ग्रहाणां यदि वा शशाङ्कः । प्रदक्षिणं तच्छुभकृन्नराणां याम्येन यातो न शिवः शशाङ्कः ॥ १ ॥ चन्द्रमा यदि कुजस्य

होती है ॥ २३ ॥ शनिसे शुक्र विजित हो जाय तौ गणश्रेष्ठ शस्त्रजीवी, क्षत्रिलोग और जलज पीडित होते हैं और अन्न साधारण होता है, यह ग्रहभक्तका फल है ॥ २४ ॥ शुक्रसे शनि ग्रह निहत हो तौ महंगी, सर्प, पक्षी और मानियोंको पीडा होती है । मंगलसे शनि निहत होवे तौ टंकण, अन्ध्र, ओड्र, काशी और बाह्लीक देशवालोंको पीडा होती है ॥२५॥ बुध करके शनि पराजित हो तौ अंगदेश, वणिक्, विहंग, पशु और सर्पगण संतापित होते हैं और बृहस्पतिके द्वारा हत होनेपर स्त्रियें, महिष और शकजातिके पुरुष सन्तापित होते हैं ॥ २६ ॥ मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि इन ग्रहोंके परस्पर हननका यह विशेष फल कहा गया और स्थलान्तर अर्थात् साधारण नक्षत्रादिके साथ जो ग्रहादिका युद्ध होगा वह भक्ति नामक पूर्व अध्यायमें उसका जो फल कहा है तिसके अनुसार कहना चाहिये परन्तु ग्रह अनेक स्थानोंमें हत होकर अपने २ नियत पदार्थोंका नाश करते हैं ॥ २७ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्य्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

यदि चन्द्रमा नक्षत्रोंके या ग्रहोंके यथासम्भव उत्तरमें गमन करे तो उस चंद्रको ' प्रदक्षिण ' कहते हैं यह मनुष्योंका शुभकारी है, परन्तु उसका दक्षिणमें गमन करना मनुष्योंको शुभदायी नहीं है ॥ १ ॥ जो चन्द्रमा मण्डल ग्रहके उत्तरमें जाय

यात्युदक्पार्वतीयबलशालिनां जयः । क्षत्रियाः प्रमुदिताः सपापिनो भूरिधान्य-मुदिता वसुन्धरा ॥ २ ॥ उत्तरतः स्वसुतस्य शशाङ्कः पौरजयाय सुभिक्षकरश्च । सस्यचयं कुरुते जनहार्दं कोशचयं च नराधिपतीनाम् ॥ ३ ॥ बृहस्पतेरुत्तरगे शशाङ्के पौरद्विजक्षत्रियपण्डितानाम् । धर्मस्य देशस्य च मध्यमस्य वृद्धिः सुभिक्षं मुदिताः प्रजाश्च ॥ ४ ॥ भार्गवस्य यदि यात्युदक् शशी कोशयुक्तगजवाजि-वृद्धिदः । यायिनां च विजयो धनुष्मतां सस्यसम्पदपि चोत्तमा तदा ॥ ५ ॥ रविजस्य शशी प्रदक्षिणं कुर्याच्चेत् पुरभूभृतां जयः । शकबाह्लिकसिन्धुपह्लवा मुदाजो यवनैः समन्विताः ॥ ६ ॥ येषामुदग्गच्छति भग्रहाणां प्रालेयरश्मिर्नि-रुपद्रवश्च । तद्द्रव्यपौरेतरजातिदेशान् पुष्णाति याम्ये न निहन्ति तानि ॥ ७ ॥ शशिनि फलमुदक्स्थे यद्ग्रहस्योपदिष्टं भवति तदपसव्ये सर्वमेव प्रतीपम् । इति शशिसमवायाः कीर्तिता भग्रहाणां न खलु भवति युद्धं साकमिन्दोर्ग्रहर्क्षैः ॥८॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां शशिग्रहसमागमोऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

तो बलवान् पहाडियोंकी जय होती है, पापी गणोंके साथ क्षत्री लोग हर्षित होते हैं और पृथ्वी बहुतसे धान्यसे युक्त होकर प्रसन्न हो जाती है ॥ २ ॥ चन्द्रमा बुधके उत्तरमें जाय तो पौर जयहेतु, सुभिक्षकारी, धान्यवर्द्धक, मनुष्योंको आनन्द-दायी और राजाओंका कोशसंचारी होता है ॥ ३ ॥ बृहस्पतिके उत्तरम चन्द्रमा जाय तो पौर, क्षत्रिय, ब्राह्मण, पंडित और मध्यदेशके धर्मकी वृद्धि होती है, सुभिक्ष होता है, प्रजा संतुष्ट होती है ॥ ४ ॥ यदि शुक्रके उत्तरमें चन्द्रमा गमन करे तो कोश, गज (हाथी) और घोडोंकी वृद्धि हो; यायी और धनुषधारी लोगोंको विजय हो और उत्तम धान्य सम्पत्ति प्राप्त होवे ॥ ५ ॥ जो चन्द्रमा शनिके दक्षिणमें गमन करे तो पौर राजाओंकी जय और शक, वाह्लीक, सिन्धु, पह्लव और यवन लोग आनन्दित होते हैं ॥ ६ ॥ जो शीतल किरणवाला चन्द्रमा नक्षत्रोंके उत्तरमें गमन करे तो निरुपद्रव होकर निजद्रव्य पौर वा ग्रहभक्ति मत हो देशवा-सियोंको पोषण करे; परन्तु दक्षिणमें गमन करके उनको हनन करता है। ग्रहोंके उत्तरमें चन्द्रमाके होनेका फल कहा गया; दक्षिण ओर होनेसे इसका विपरीत फल होता है। ग्रह वा नक्षत्रोंके साथ चन्द्रमाका मिलन कहा गया। चन्द्रमाका युद्ध ग्रह वा नक्षत्रोंके साथ कभी नहीं होता ॥ ७ ॥ ८ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्त-व्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायामष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

अथैकोनविंशोऽध्यायः ।

ग्रहवर्षफल.

सर्वत्र भूर्विरलसस्ययुता वनानि दैत्याधिपाध्युषितदंष्ट्रिसमावृतानि । स्यन्दंति नैव च पयः प्रचुरं स्रवन्त्यो रुग्भेषजानि न तथातिबलान्वितानि ॥ १ ॥ तीक्ष्णं तपत्यदितिजः शिशिरेऽपि काले नात्यम्बुदा जलमुचोऽचलसन्निकाशाः । नष्टप्रभर्क्षगणशीतकरं नभश्च सीदन्ति तापसकुलानि सगोकुलानि ॥ २ ॥ हस्त्यश्वपत्तिमदसह्यबलैरुपेता बाणासनासिमुशलातिशयाश्चरन्ति । घ्नन्तो नृपा युधि नृपाननुचरैश्च देशान् संवत्सरे दिनकरस्य दिनेऽथ मासे ॥ ३ ॥ व्याप्तं नभः प्रचलिताचलसन्निकाशैर्व्यालाञ्जनालिगवलच्छविभिः पयोदैः । गां पूरयद्भिरखिलाममलाभिरद्भिरुत्कण्ठकेन गुरुणा ध्वनितेन चाशाः ॥ ४ ॥ तोयानि पद्मकुमुदोत्पलवन्त्यतीव फुल्लद्रुमाण्युपवनान्यलिनादितानि । गावः प्रभूतपयसो नयनाभिरामा रामा रतैरविरतं रमयंति रामान् ॥ ५ ॥ गोधूमशालियवधान्य-

---

यदि सूर्य वर्षका स्वामी, मासका स्वामी, दिनका स्वामी हो तौ सब जगह पृथ्वीपर धान्य थोडा हो, वनमें जगह २ वृक्षोंमें कीडे लग जाँय, नदियोंमें बहुतसा जल न रहे, मारे पीडाके औषधियोंमें अत्यन्त बल न रहे, शीतकालमेंभी सूर्य तीक्ष्ण धूप करे, पर्वतके समान मेघगण अधिक जल नहीं वर्षावें, आकाशमें चंद्रमा और तारोंकी दीप्ति जाति रहे, गाय और तपस्वी कुलको शोक हो, हाथी, घोडे, पदातिरूप सहनीय बलयुक्त राजा लोग बहुतसे बाण, धनु, असि और मुसल लेकर अपने अनुचरोंको साथ ले युद्ध करके समस्त देशोंको ध्वंस करते हुए घूमें ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ जो चंद्रमा वर्षका मालिक हो तौ चलायमान पर्वतकी समान काले सर्प अञ्जन, भ्रमर और महिषीकी नाई काली द्युतिवाले मेघवृन्द आकाशको व्याप्त करते हैं. उत्कण्ठासूचक भारी शब्द करके समस्त दिशाओंको पूर्ण करते हुए अमल जलसे पृथ्वीको पूर्ण करते हैं; सरोवरोंमें, कमल बबूले और उत्पल फूल जाते हैं; उपवन (बाग) प्रफुल्ल वृक्षयुक्त और भ्रमरोंके शब्दसे शब्दायमान होते हैं; गाय दूध बहुतसा देती हैं; नेत्रोंको आनंद देनेवाली स्त्रियां आसक्तिसे अविरत पुरुषोंको रमण कराती हैं; ईख, शाली, जौ, धान्य श्रेष्ठ और युक्त समूह समृद्धियुक्त चैत्य अर्थात् छोटे २ देवमंदिरोंसे अंकित और यज्ञ व होमके पवित्र शब्दसे

बरेशुघाटा भूः पाल्यते नृपतिभिर्नगराकराढ्या । चित्याङ्किता क्रतुवरेष्टिविघुष्टनादा संवत्सरे शिशिरगोरभिसम्प्रवृत्ते ॥ ६ ॥ वातोद्धतश्चरति वह्निरतिप्रचण्डो ग्रामान् वनानि नगराणि च सन्दिधक्षुः। हाहेति दस्युगणपातहता रटन्ति निःस्वीकृता विपशवो भुवि मर्त्यसङ्घाः ॥ ७ ॥ अभ्युन्नता वियति संहतमूर्तयोऽपि मुञ्चन्ति न क्वचिदपः प्रचुरं पयोदाः । सीम्नि प्रजा तमपि शोषमुपैति सस्यं निष्पन्नमप्यविनयादपरे हरन्ति ॥ ८ ॥ भूपा न सम्यगभिपालनसक्तचित्ताः पित्तोत्थरुक्प्रचुरता भुजगप्रकोपः । एवंविधैरुपहता भवति प्रजेयं संवत्सरेऽवनिसुतस्य विपन्नसस्या ॥ ९ ॥ मायेन्द्रजालकुहकाकरनागराणां गान्धर्वलेख्यगणितास्त्रविदां च वृद्धिः। पिप्रीषया नृपतयोऽद्भुतदर्शनानि दित्सन्ति तुष्टिजननानि परस्परेभ्यः ॥ १० ॥ वार्ता जगत्यवितथाविकला त्रयी च सम्यक् चरत्यपि मनोरिव दण्डनीतिः । अध्यक्षरं स्वभिनिविष्टधियोऽत्र केचिदान्वीक्षिकीषु च परं पदमीहमानाः ॥ ११ ॥ हास्यज्ञदूतकविबालनपुंसकानां युक्तिज्ञसेतु-

---

शब्दायमान होकर पृथ्वी राजाओंसे पाली जाती है ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ मंगल वर्षका स्वामी हो तो वायुसे उठी हुई अतिप्रचंड अग्नि ग्राम, वन और नगरोंको जलानेकी इच्छा करती है; पृथ्वीके मनुष्य चोरोंसे मार डाले जाकर सहायहीन और पशुहीन होकर हाहाकार करते हुए विचरण करते हैं; मेघकुल शून्यमें कम ऊंचा और संहत पूर्ति होकरभी कहीं बहुतसा जल नहीं वर्षाते; पका हुआ धान्य लगभग सूखही जाता है और किसी प्रकारसे निवटकरभी अविनयके हेतुसे दूसरे आदमी उसको हरण कर लेते हैं. मंगलके संवत्सरमें राजालोग भलीभांतिसे प्रजाको नहीं पालते, पित्तसे उत्पन्न हुए रोगोंकी अधिकता होती है. सर्पोंका कोप होता है. इस प्रकार प्रजाके लोग विना नाजके दीन हीन और मृतवत् हो जाते हैं ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ बुध वर्षका स्वामी हो तो माया, इन्द्रजाल और भानमती करनेवाले मनुष्य और गंधर्व, लेख्य, गणित व अस्त्र जाननेवालोंकी वृद्धि होती है; राजालोग प्रीतिकी कामनासे अद्भुतदर्शन और तुष्टिकर द्रव्य, परस्पर एक दूसरेको दान करनेकी इच्छा करते हैं; जगत्में वार्ता और त्रयी शास्त्र अविकल और सत्य रहता है; मनुकी समान दंडनीति भली भांतिसे विराजमान रहती है; कोई शास्त्रज्ञानमें अपनी बुद्धिको लगाता है, कोई २ आन्वीक्षिकी शास्त्रसे परम पदके पानेकी चेष्टा करता है; बुधग्रह अपने वर्षमें अथवा मासमें इस प्रकारसे पृथिवीको हास्यज्ञ,

जलपर्वतवासिनां च । हार्दि करोति मृगलाञ्छनजः स्वकेऽब्दे मासेऽथ वा प्रचुरतां भुवि चौषधीनाम् ॥ १२ ॥ ध्वनिरुच्चरितोऽध्वरे द्युगामी विपुलो यज्ञमुषां मनांसि भिन्दन् । विचरत्यनिशं द्विजोत्तमानां हृदयानन्दकरोऽध्वरांशभाजाम् ॥ १३ ॥ क्षितिरुत्तमसस्यवत्यनेकद्विपपत्त्यश्वधनोरुगोकुलाढ्या । क्षितिपैरभिपालनप्रवृद्धा द्युचरस्पर्द्धिजना तदा विभाति ॥ १४ ॥ विविधैर्वियदुन्नतैः पयोदैस्तनुवीं पयसाभितर्पयद्भिः । सुरराजगुरोः शुभेऽत्र वर्षे बहुसस्या क्षितिरृद्धियुक्ता ॥ १५ ॥ शालीक्षुमत्यपि धरा धरणीधराभधाराधरोज्झितपयःपूर्णवप्रा । श्रीमत्सरोरुहततताम्बुतडागकीर्णा योषेव भात्यभिनवाभरणोज्ज्वलाङ्गी ॥ १६ ॥ क्षत्रं क्षितौ क्षपितभूरिबलारिपक्षमुद्धष्टनैकजयशब्दविरावितशम् । संहृष्टशिष्टजनदुष्टविनष्टवर्गां गां पालयन्त्यवनिपा नगराकराढ्याम् ॥ १७ ॥ पेपीयते मधु मधौ सह कामिनीभिर्जेगीयते श्रवणहारि सवेणुवीणम् । बोभुज्य

दूत, कवि, बालक, नपुंसक, युक्तिके जाननेवाले, सेतु, जल और पर्वतवासियोंको तृप्ति करता है और पृथ्वीपर औषधियां बहुतायतसे होती हैं ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ बृहस्पति वर्षका स्वामी हो तो यज्ञमें उच्चारण की हुई विपुल आकाशगामी वेदध्वनि, यज्ञध्वंस करनेवालोंके मनको विदीर्ण कर श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके और यज्ञांश भागियोंके हृदयको आनंद कराकर भ्रमण करती है; उत्तम सस्यवती और अनेक हस्ती, घोडे, चतुरंगसेना, महाधन, गोकुल और धनयुक्त पृथ्वी राजाओंके पासे जाकर और वर्धित होकर मानो स्वर्गवासियोंकी समान स्पर्द्धा करनेवालोंके साथ विराजमान होती है; आसमानी पानीसे तृप्तिकारक विविध रंगके बादल पृथ्वीको ढक लेते हैं. इन देवतानाथके गुरु बृहस्पतिजीके शुभवर्षमें इस प्रकार पृथ्वी बहुतसे धान्यवाली और ऋद्धियुक्त होती है ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ बृहस्पति वर्षका स्वामी हो तो पर्वताकार बादलों करके छोडे हुए जलसे परिपूर्ण हुई पृथ्वी सुन्दर कमलोंसे जिनका जल ढका हुआ है ऐसे तडागोंसे आकीर्ण होकर नये गहनोंसे सजी हुई उज्ज्वल अंगवाली नारीकी समान शोभा पाती है, और शत्रुओंको क्षय करनेवाले और पोषण करते हुए जयशब्दसे दिशाओंको शब्दायमान करते हुए राजालोग शिष्ट जनोंको संतोष और दुष्टोंका नाश करके नगर व खानिके सहित ऋद्धिवाली पृथ्वीका पालन करते हैं, वसन्तऋतुमें मनुष्यगण कामिनियोंके साथ वारंवार मधुपान करके वेणुवीणाके साथ कर्णमधुर गान किया करते हैं और अतिथि सुहृद् व भाई बन्धु-

तेऽतिथिसुहृत्स्वजनैः सहान्नमब्दे सितस्य मदनस्य जयावघोषः ॥ १८ ॥
उद्वृत्तदस्युगणभूरिरणाकुलानि राष्ट्राण्यनेकपशुवित्तविनाकृतानि। रोरूयमाणहतबन्धुजनैर्जनैश्च रोगोत्तमाकुलकुलानि बुभुक्षया च ॥ १९ ॥ वातोद्धताम्बुधरवर्जितमन्तरिक्षमारुग्णनैकविटपं च धरातलं द्यौः। नष्टार्कचन्द्रकिरणातिरजोऽवनद्धा तोयाशयाश्च विजलाः सरितोऽपि तन्व्यः ॥ २० ॥ जातानि कुत्रचिदतोयतया विनाशमृच्छन्ति पुष्टिमपराणि जलोक्षितानि। सस्यानि मन्दमभिवर्षति वृत्रशत्रौ वर्षे दिवाकरसुतस्य सदा प्रवृत्ते ॥ २१ ॥ अणुरसदुमयूखो नीचगोऽन्यैर्जितो वा न सकलफलदाता पुष्टिदोऽतोऽन्यथा यः। यदशुभमशुभेऽब्दे मासजं तस्य वृद्धिः शुभफलमपि चैवं याप्यमन्योऽन्यतायाम् ॥ २२ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां ग्रहवर्षफलमेकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

साथ अन्नभोजन किया करते हैं, शुक्रके वर्षमें इस प्रकारसे कामदेवकी जय हुआ करती है ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ जब शनि वर्षका स्वामी होता है तब खोटे मनवाले, चोर और बहुतसे संग्रामोंके होनेसे समस्त राज्य आकुल होते हैं; पशुओंका पशु धन जाता रहता है; बन्धुओंका वियोग होनेसे मनुष्यगण बहुतही रोते हैं; क्षुधाके मारे और रोगोंके मारे बहुतही व्याकुल होते हैं; आकाशमें जैसेही बादल आते हैं वैसेही पवन उनको उड़ा देता है, पृथ्वीपर एक पलभी तो आरोग्य नहीं रहता, आकाशमें सूर्य चन्द्रमाकी किरणें धूरीसे बन्ध जाती हैं; जलाशय जलहीन और नदियां कृशांग हो जाती हैं; कहीं पर नाज जलके अभावसे नष्ट हो जाता है; कहीं जल भरी हुई भूमिमें गल जाता है। इस प्रकार जिस वर्षमें शनि स्वामी होता है तब इन्द्र मन्द मन्द धान्यका देनेवाला जल बर्षाता है ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ जो ग्रह क्षुद्र, अपटुकिरण, नीचगामी या किसीसे विजित हो जाता है, वह सम्पूर्ण फलका दाता और पुष्टिकारी नहीं हो सकता। जो अशुभ ग्रह वर्षका स्वामी या मासका स्वामी होता है तो उसके मासमें उत्पन्न हुए फलकी प्राप्ति होती है अन्यथा होवे तो शुभ फलभी प्राप्त हो जाता है ॥ २२ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां [illegible]
[illegible]

अथ विंशोऽध्यायः।

ग्रहशृङ्गाटक.

यस्यां दिशि दृश्यन्ते विशन्ति ताराग्रहा रविं सर्वे । भवति भयं दिशि तस्यामायुधकोपक्षुधातङ्कैः ॥ १ ॥ चक्रधनुःशृङ्गाटकदण्डपुरप्रासवज्रसंस्थानाः । क्षुद्वृष्टिकरा लोके समराय च मानवेन्द्राणाम् ॥ २ ॥ यस्मिन् राशौ दृष्टा ग्रहमाला दिनकरे दिनान्तगते । तत्रान्यो भवति नृपः परचक्रोपद्रवश्च महान् ॥ ३ ॥ यस्मिन्नृक्षे कुर्युः समागमं तज्जनान् ग्रहा हन्युः । अविभेदिनः परस्परममलमयूखाः शिवास्तेषाम् ॥ ४ ॥ ग्रहसंवर्तसमागमसम्मोहसमाजसन्निपाताख्याः । कोशश्चेत्येषामभिधास्ये लक्षणं सफलम् ॥ ५ ॥ एकर्क्षे चत्वारः सह पौरयायिनोऽथवा पञ्च । संवर्तो नाम भवेच्छिखिराहुयुतः स सम्मोहः ॥ ६ ॥ पौरः पौरसमेतो यायी सह यायिना समाजाख्यः । यमजीवसङ्गमेऽन्यो यद्या- च्छेदसौ कोशः ॥ ७ ॥ उदितः पश्चादेकः प्राक् चान्यो यदि स सन्निपाताख्यः

जिस दिशामें ताराग्रह सूर्यमें प्रवेश करते हुए देखे जाते हैं; उसी दिशाके [illegible] शस्त्रकोप, क्षुधा और आतंकसे भय होता है ॥ १ ॥ ग्रहसंस्थान यदि चक्र, धनु, शृङ्गाटक (चतुष्पथ), दण्डपुर, प्रास या वज्रकी समान दिखाई देता [illegible] क्षुधा, वृष्टि और राजाओंका समर हुआ करता है ॥ २ ॥ सूर्यदेवके दिनके अन्तमें चले जाने पर जिस देशके आकाशके अंशमें ग्रहमाला दिखलाई दे वहांपर दूसरे राजाका अधिकार होता है और परचक्रका महान उपद्रव होता है ॥ ३ ॥ जिस नक्षत्रमें ग्रह आया करते हैं, उस नक्षत्रके वशीभूत मनुष्योंका [illegible] करते हैं. परस्पर वर्जित विभेदन और निर्मल किरण होनेपर वहांके मनुष्योंका [illegible] होता है ॥ ४ ॥ ग्रहोंका संवर्त, समागम, सम्मोह, समाज, सन्निपात और कोश [illegible] हुआ करता है इन सबके सफल लक्षण कहे जाते हैं ॥ ५ ॥ एक नक्षत्रमें [illegible] के साथ चार या पांच यायि ग्रहोंके मिलनेसे [illegible] है, [illegible] संवर्त कहलाता है ॥ ६ ॥ पौरके साथ [illegible] समाज नाम होता है [illegible] ग्रह आ जाय [illegible] ॥ ७ ॥ यदि पश्चिममें एक और पूर्वमें दूसरा उदय हो तो उसे

अविकृततनवः स्निग्धा विपुलाश्च समागमे धन्याः ॥ ८ ॥ समौ तु संवर्तसमागमाख्यौ सम्मोहकोशौ भयदौ प्रजानाम् । समाजसंज्ञः सुसमः प्रदिष्टो वैरप्रकोपः खलु सन्निपाते ॥ ९ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां ग्रहशृङ्गाटकं नाम विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

अथैकविंशोऽध्यायः ।

गर्भलक्षण.

अन्नं जगतः प्राणाः प्रावृट्कालस्य चान्नमायत्तम् । यस्मादतः परीक्ष्यः प्रावृट्कालः प्रयत्नेन ॥ १ ॥ तल्लक्षणानि मुनिभिर्यानि निबद्धानि तानि दृष्ट्वेदम् । क्रियते गर्गपराशरकाश्यपवात्स्यादिरचितानि ॥ २ ॥ दैवविदवहितचित्तो द्युनिशं यो गर्भलक्षणे भवति । तस्य मुनेरिव वाणी न भवति मिथ्याम्बुनिर्देशे ॥ ३ ॥ किं वातः परमन्यच्छास्त्रं ज्यायोऽस्ति यद्विदित्वैव । प्रध्वंसिन्यपि

सन्निपात कहते हैं; समागममें अर्थात् चंद्रमाके मिलनमें ग्रहगण विकाररहित, स्निग्ध, विपुल और धन्य होते हैं ॥ ८ ॥ संवर्त्त और समागमका फल समता है; सम्मोह और कोशमें प्रजाओंको भय होता है; समाज संज्ञामें उत्तम समता और सन्निपातमें वैर और कोप होता है ॥ ९ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य–पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

अन्नही जगत्का प्राण है और अन्नही वर्षाकालके वशमें है इस कारण इस करके यत्नके सहित वर्षाकालकी परीक्षा करनी चाहिये ॥ १ ॥ मैंने गर्ग, पराशर, काश्यप और वात्स्यादि मुनियोंके द्वारा रचे हुए और बांधे हुए वर्षाके लक्षण लक्षण देखकर यह गर्भलक्षण बनाया है ॥ २ ॥ जो दैवका जाननेवाला पुरुष रात दिन गर्भलक्षणमें मन लगाय सावधान चित्तसे रहते हैं, उनके वाक्य मुनियोंके समान मेघगर्जितमें कभी मिथ्या नहीं होते ॥ ३ ॥ इससे कौनसा श्रेष्ठ शास्त्र है, कि जिस श्रेष्ठ शास्त्रको जानकर विध्वंसी कलिकालमेंभी लोग [illegible] दर्शी होते

स्निग्धाः । परिवेषाश्वासकलाः कपिलस्ताम्रो रविश्च शुभः ॥ २१ ॥ पवनघन
वृष्टियुक्ताश्चैत्रे गर्भाः शुभाः सपरिवेषाः । घनपवनसलिलविद्युत्स्तनितैश्च हिताः
वैशाखे ॥ २२ ॥ मुक्तारजतनिकाशास्तमालनीलोत्पलाञ्जनाभासः । जलचर
सत्त्वाकारा गर्भेषु घनाः प्रभूतजलाः ॥ २३ ॥ तीव्रदिवाकरकिरणाभितापिताः
मन्दमारुता जलदाः । रुषिता इव धाराभिर्विसृजन्त्यम्भः प्रसवकाले ॥ २४
गर्भोपघातलिङ्गान्युल्काशनिपांशुपातदिग्दाहाः । क्षितिकम्पखपुरकीलककेतु
ग्रहयुद्धनिर्घाताः ॥ २५ ॥ रुधिरादिवृष्टिवैकृतपरिघेन्द्रधनूंषि दर्शनं राहोः । इत्
युत्पातैरेभिस्त्रिविधैश्चान्यैर्हतो गर्भः ॥ २६ ॥ स्वर्तुस्वभावजनितैः सामान्यैर्यैः
लक्षणैर्वृद्धिः । गर्भाणां विपरीतैस्तैरेव विपर्ययो भवति ॥ २७ ॥ भाद्रपदाद्वय
विश्वाम्बुदेवपैतामहेष्वथर्क्षेषु । सर्वेष्वृतुषु विवृद्धो गर्भो बहुतोयदो भवति ॥२८
शतभिषगाश्लेषार्द्रास्वातिमघासंयुतः शुभो गर्भः । पुष्णाति बहून्दिवसान् हन्त्य
त्पातैर्हतस्त्रिविधैः ॥ २९ ॥ मृगमासादिष्वष्टौ षट् षोडश विंशतिश्चतुर्युक्ता

ताम्रवर्ण हो तो शुभ होता है ॥ २१ ॥ यदि चैत्रमें सब गर्भ पवन, मेघ, वृष्टि
और परिवेषयुक्त हो तो शुभ है । जो वैशाखमें मेघ, वायु, जल और शब्दायमा
बिजलीसे युक्त हो तो गर्भसे हितसाधन होता है ॥२२॥ मोती या चांदीकी सम
वा तमाल, नील उत्पल और अंजनकी द्युतिके समान या जलचर प्राणियों
समान आकारवाले मेघ बहुतसा जल वर्षावे और सूर्यकी किरणसे गर्भ तपे और मं
पवनके चलनेसे बादल प्रसवकालमें मानो कुपित होकर जलधारा वर्षावे ॥ २३ ॥२४
उल्का, वज्र, धूलिका गिरना, दिग्दाह, भूंचाल, गन्धर्वनगर, कीलक, केतु, ग्रहयु
निर्घात, रुधिरादिके वर्षनेमें विकारपन, परिघ, इन्द्रधनुष, राहुदर्शन इन सब उत्
तोंसे व और तीन उत्पातोंसे गर्भका नाश हो जाता है ॥ २५ ॥ २६ ॥ ऋत
स्वभावसे साधारण लक्षणद्वारा जो गर्भ बढते हैं; उनके विपरीत लक्षणोंसे उन
हरस हो जाता है ॥ २७ ॥ सब ऋतुओंमेंही पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, पू
षाढा, उत्तराषाढा और रोहिणीनक्षत्रमें बढे हुए गर्भ बहुतसा जल देते हैं ॥ २८
शतभिषा, आश्लेषा, आर्द्रा, स्वाति और मघासंयुक्त गर्भ शुभदायी और ब
दिनतक पोषण करते हैं, तीन उत्पातोंसे हने हुए हों तो हनन करते हैं ॥ २९
जब चंद्रमा इन पांच नक्षत्रोंमेंसे किसी एक नक्षत्रमें रहता है तब अगहनक
बैसाखतक छः मासमें क्रमानुसार ८।६।१६।२४।२० और तीन दिनतक ग

विंशतिरथ दिवसत्रयमेकतमर्क्षेण पञ्चरूपः ॥ ३० ॥ क्रूरग्रहसंयुक्ते करकाश-
निमत्स्यवर्षदा गर्भाः । शशिनि रवौ वा शुभसंयुतेक्षिते भूरिवृष्टिकराः ॥ ३१ ॥
गर्भसमयेऽतिवृष्टिर्गर्भाभावाय निर्निमित्तकृता । द्रोणाष्टांशेऽभ्यधिके वृष्टे गर्भः
स्रुतो भवति ॥ ३२ ॥ गर्भः पुष्टः प्रसवे ग्रहोपघातादिभिर्यदि न वृष्टः । आत्मी-
यगर्भसमये करकामिश्रं ददात्यम्भः ॥ ३३ ॥ काठिन्यं याति यथा चिरकाल-
धृतं पयः पयस्विन्याः । कालातीतं तद्वत्सलिलं काठिन्यमुपयाति ॥ ३४ ॥
पञ्चनिमित्तैः शतयोजनं तदर्धार्धमेकहान्यातः । वर्षति पञ्च समन्ताद्रूपेणैव यो
गर्भः ॥ ३५ ॥ द्रोणः पञ्चनिमित्ते गर्भे त्रीण्याढकानि पवनेन । षड् विद्युता
नवाभ्रैः स्तनितेन द्वादश प्रसवे ॥ ३६ ॥ पवनसलिलविद्युद्गर्जिताभ्रान्वितो यः
स भवति बहुतोयः पञ्चरूपाभ्युपेतः । विसृजति यदि तोयं गर्भकालेऽतिभूरि
प्रसवसमयमित्वा शीकराम्भः करोति ॥ ३७ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां गर्भलक्षणमेकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

पर वर्षा हुआ करती है ॥ ३० ॥ क्रूरग्रहसंयुक्त होनेपर समस्त गर्भ ओले, अशनि और मछली बर्षाया करते हैं और चंद्रमा या सूर्य शुभग्रहयुक्त या शुभग्रहसे देखे जानेपर बहुतही वर्षा करते हैं ॥ ३१ ॥ यदि गर्भसमयमें अकारणही बहुतसी वर्षा होवे तो गर्भका अभाव होता है, द्रोणके अष्टांशसेभी अधिक वर्षण करनेपर गर्भ नष्ट हो जाता है ॥ ३२ ॥ जो पुष्टगर्भ ग्रहोपघातादिसे न वर्षे तो प्रसवकालमें आत्मीय गर्भके समय ओलेका मिला हुआ जल वर्षाते हैं ॥ ३३ ॥ जिस प्रकार गायोंका बहुत कालतक धरा हुआ दूध कडेपनको प्राप्त हो जाता है, वैसेही गर्भ अनेक दिन बीतनेपर कठिनताको प्राप्त हो जाता है ॥ ३४ ॥ जो गर्भ पांच प्रका-रके निमित्तसे पुष्ट होता है वह गर्भ शतयोजनतक चैतरफ वर्षा करता है, उनमें एक २ निमित्तके अभावमें शत योजनके अर्द्धार्द्धकी हानि होकर वर्षा होती है ॥ ३५ ॥ अर्थात् चतुर्निमित्तक गर्भ ५० योजन (२०० कोश), त्रिनिमित्तक २५ योजन (१०० कोश), द्विनिमित्तक १२॥ योजन (५० कोश) और एक निमित्तकगर्भ ५ योजन (२० कोश) तक जल वर्षता है. पांचनिमित्तकगर्भ एक द्रोणजल वर्षाता है, पवननिमित्तक तीन (३) आढक और विद्युन्निमित्तक ६ आढक जलवर्षाता है ॥ ३६ ॥ जो गर्भ पवन, जल, बिजली, [illegible]

अथ द्वाविंशोऽध्यायः।

गर्भधारण.

ज्येष्ठसितेऽष्टम्याद्याश्चत्वारो वायुधारणादिवसाः। मृदुशुभपवनाः शस्ताः स्निग्धघनस्थगितगगनाश्च ॥ १ ॥ तत्रैव स्वात्याद्ये वृष्टे भचतुष्टये क्रमान्मासाः। श्रावणपूर्वा ज्ञेयाः परिस्रुता धारणास्ताः स्युः ॥ २ ॥ यदि ताः स्युरेकरूपाः शुभास्ततः सान्तरास्तु न शिवाय। तस्करभयदाः प्रोक्ताः श्लोकाश्चात्र वासिष्ठाः ॥ ३ ॥ सविद्युतः सपृषतः सपांशूत्करमारुताः। सार्कचन्द्रपरिच्छन्ना धारणाः शुभधारणाः ॥ ४ ॥ यदा तु विद्युतः श्रेष्ठाः शुभाशासमुपस्थिताः। तदापि सर्वसस्यानां वृद्धिं ब्रूयाद्विचक्षणः ॥ ५ ॥ सपांशुवर्षाः साम्भ शुभा बालक्रिया अपि। पक्षिणां सुस्वरा वाचः क्रीडा पांशुजलादिषु ॥ ६ ॥ रविचन्द्रपरिवेषाः स्निग्धा नात्यन्तदूषिताः। वृष्टिस्तदापि विज्ञेया सर्वसस्यानि

रूप पंचनिमित्तयुक्त है सो बहुतसा जल देता है; यदि गर्भकालमें बहुतसा जल वर्षे तौ प्रसवकालको लांघकर जलकण वर्षा करते हैं ॥ ३७ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य–पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायामेकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

ज्येष्ठमासके शुक्लपक्षकी अष्टमी आदिको चार दिनतक वायुसे गर्भधारणज्ञान होनेके दिन हैं। सो मृदु शुभ वायुयुक्त होनेपर या चिकने मेघसे ढके हुए बादलके होनेपर श्रेष्ठ है ॥ १ ॥ तिसमें स्वाति आदि चार नक्षत्रोंके वर्षा हो तौ क्रमसे श्रावणादि महीनेमें गर्भधारण परिस्रुत जानना अर्थात् वर्षा न होगी ॥ २ ॥ यदि यह चारों दिन एकसे हों तौ शुभ होता है, जो इससे विपरीत हो तौ मंगलदायी नहीं होते; वरन तस्करोंका भय होता है। वसिष्ठजीके कहे हुए श्लोक इस विषयमें कहे हैं यथा ॥ ३ ॥ दामिनी, जलकण और धूरि मिला हुआ पवन चले, चन्द्रमा या सूर्यका मेघोंसे ढके रहना इस प्रकारका जो गर्भ धारण है सो श्रेष्ठ है ॥ ४ ॥ जिस समय श्रेष्ठ बिजली शुभ दिशाओंमें दमके तब बुद्धिमान् पुरुषको जानना चाहिये कि धान्यकी वृद्धि होगी ॥ ५ ॥ जो बालक खेलते २ जल या धूरिको वर्षावें या पक्षियोंका मधुर २ शब्द हों; पक्षी जलादिमें किलोलें करें तो शुभ होता है ॥ ६ ॥ चन्द्रमा सूर्यके मण्डल स्निग्ध है और अत्यन्त दूषित नहीं हो तौ तिस कालमें

द्दये ॥ ७ ॥ मेघाः स्निग्धाः संहताश्च प्रदक्षिणगतिक्रियाः । तदा स्यान्महती वृष्टिः सर्वसस्यार्थसाधिका ॥ ८ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां मेघगर्भधारणं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः ।

प्रवर्षण.

ज्येष्ठ्यां समतीतायां पूर्वाषाढादिसम्प्रवृष्टेन । शुभमशुभं वा वाच्यं परिमाणं चाम्भसस्तज्ज्ञैः ॥ १ ॥ हस्तविशालं कुण्डकमधिकृत्याम्बुप्रमाणनिर्देशः । पञ्चाशत्पलमाढकमनेन मिनुयाज्जलं पतितम् ॥ २ ॥ येन धरित्री मुद्रा जनिता वा बिन्दवस्तृणाग्रेषु । वृष्टेन तेन वाच्यं परिमाणं वारिणः प्रथमम् ॥ ३ ॥ केचिद्यथाभिवृष्टं दशयोजनमण्डलं वदन्त्यन्ये । गर्गवसिष्ठपराशरमतमेतद्द्वादशान्न

वर्षादी सब धान्योंकी घटानेवाली है ॥ ७ ॥ मेघ चिकने, गाढे और प्रदक्षिण गतिसे परिक्रमा करते हुए चलते हों तो सर्व धान्य और अर्थकी साधन करनेवाली बडी भारी वर्षा होती है ॥ ८ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

ज्येष्ठके पूर्णिमाके भलीभांति वर्ष जानेपर यदि पूर्वाषाढादि नक्षत्रमें वर्षा हो तो जलका परिमाण और शुभाशुभ बुद्धिमानोंको कहना उचित है ॥ १ ॥ एक हाथ लम्बे और एक हाथ चौडे कुण्डको धारण करके जलका प्रमाण कहना चाहिये, यह पानीसे भर जाय तो उस वर्षे हुए जलको तोलकर वर्षाका परिमाण कहे। उक्त पात्रका परिमाण पचास पल है । यह जलसे भर जाय तो वर्षे हुए जलका परिमाण एक आढक होता है ॥ २ ॥ जिसके गिरनेसे पृथ्वीपर चिह्न पड जाय या तृणोंकी नोकोंपर पानीकी बूंदें ठहर जांय, उस वर्षासेही जलका प्रथम परिमाण कहना चाहिये ॥ ३ ॥ कोई २ कहते हैं; कि जहांतक देखा जाय तहांहीतक वर्षा होती है; कोई २ ऊपर कहे हुए लक्षणसे दश योजन मण्डलमें वर्षाका होना कहते हैं, परन्तु गर्ग, वसिष्ठ और पराशरके मतसे बारह योजन अर्थात् ४८ कोशके आगे

परम् ॥ ४ ॥ येषु च भेष्वभिवृष्टं भूयस्तेष्वेव वर्षति प्रायः । यदि नाप्यादिषु वृष्टं सर्वेषु तदा त्वनावृष्टिः ॥ ५ ॥ हस्ताप्यसौम्यचित्रापौष्णधनिष्ठासु षोडश द्रोणाः । शतभिषगैन्द्रस्वातिषु चत्वारः कृत्तिकासु दश ॥ ६ ॥ श्रवणे मघानुराधाभरणीमूलेषु दश चतुर्युक्ताः । फल्गुन्यां पञ्चकृतिः पुनर्वसौ विंशतिर्द्रोणाः ॥७॥ ऐन्द्राग्नाख्ये वैश्वे विंशतिः सार्पभे च दश त्र्यधिकाः । आहिर्बुध्न्यार्यम्णप्राजापत्येषु पञ्चकृतिः ॥ ८ ॥ पञ्चदशाजे पुष्ये कीर्तिता च वाजिभे दश द्वे च । रौद्रेऽष्टादश कथिता द्रोणा निरुपद्रवेष्वेषु ॥ ९ ॥ रविरविसुतकेतुपीडिते भे क्षितितनयत्रिविधाद्भुताहते च । भवति हि न शिवं न चापि वृष्टिः शुभसहिते निरुपद्रवे शिवं च ॥ १० ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां प्रवर्षणं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः॥२३॥

वर्षा नहीं होती ॥ ४ ॥ जिन नक्षत्रोंमें वर्षा होती है; बहुधा प्रसवकालके समय उन्हीं सब नक्षत्रोंमें वर्षा हुआ करती है, परन्तु यदि पूर्वाषाढासे लेकर मूलनक्षत्रतक किसी नक्षत्रमें वर्षा न हो तौ सब नक्षत्रोंमें अनावृष्टि होती है ॥५॥ जो उपद्रवहीन चंद्रमा हस्त, पूर्वाषाढा, मृगशिर, चित्रा, रेवती और धनिष्ठामें हो तौ सोलह द्रोण, शतभिषा, ज्येष्ठा और स्वातीमें ४ द्रोण, कृत्तिकामें १० दश, श्रवण, मघा, अनुराधा, भरणी और मूलमें चतुर्दश, फाल्गुनीमें पचीस, पुनर्वसुमें २० बीस, विशाखा और उत्तराषाढ नक्षत्रमें बीस, आश्लेषा नक्षत्रमें तेरह, उत्तराभाद्रपदा, उत्तराफाल्गुनी और रोहिणीमें पचीस, पूर्वाभाद्रपदा, पुष्य और अश्विनी नक्षत्रमें बारह और आर्द्रामें अठारह द्रोण जल वर्षाता है ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ यदि सब नक्षत्र सूर्य, शनि वा केतुसे पीडित हों और मंगल करके त्रिविध अद्भुतद्वारा आहत हों तौ वर्षा नहीं होती परन्तु शुभके साथ निरुपद्रव होनेपर शुभ होता है ॥ १० ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः ।

रोहिणीयोग.

कनकशिलाचयविवरजतरुकुसुमासक्तमधुकरानुरुते । बहुविहगकलहसुरयुवतिगीतमन्द्रस्वनोपवने ॥ १ ॥ सुरनिलयशिखरिशिखरे बृहस्पतिर्नारदाय यानाह । गर्गपराशरकाश्यपमयाश्च यान्शिष्यसङ्घाय: ॥ २ ॥ तानवलोक्य यथावद् प्राजापत्येन्दुसमयोगार्थान् । स्वल्पग्रन्थेनाहं तानेवाभ्युद्यतो वक्तुम् ॥ ३ ॥ प्राजेशमाषाढतमिस्रपक्षे क्षपाकरेणोपगतं समीक्ष्य । वक्तव्यमिष्टं जगतोऽशुभं वा शास्त्रोपदेशाद्ग्रहचिन्तकेन ॥ ४ ॥ योगो यथानागत एव वाच्यः स धिष्ण्ययोगः करणे मयोक्तः । चन्द्रप्रमाणद्युतिवर्णमार्गैरुत्पातपातैश्च फलं निगाद्यम् ॥ ५ ॥ पुरादुदक्प्राक्पुरतोऽपि वा स्थलं ग्रहोषितस्तत्र हुताशतत्परः । ग्रहान् सनक्षत्रगणान् समालिखेत् सधूपपुष्पैर्बलिभिश्च पूजयेत् ॥ ६ ॥ सरत्नतोयौषधिभिश्चतुर्दिशं तरुप्रवालापिहितैः सुपूजितैः । अकालमूलैः कलशै-

---

सुमेरुपर्वतके शिखरपर लगे हुए वृक्षोंके फूलोंपर आसक्त हुए भ्रमरोंके गुंजारवे, अनेक प्रकारके पक्षियोंकी चहकारसे और देवाङ्गनाओंके मृदु गंभीर गीतोंके स्वरसे परिपूर्ण, पर्वतकी चोटीपर स्थित रमणीक उपवनोंमें बृहस्पतिजीने नारदजीसे जो रोहिणीयोग कहा था और गर्ग, पराशर, काश्यप ऋषियोंने और मयअसुरने अपने शिष्योंसे जो कहा था, तिसको देखकर इस छोटेसे ग्रंथमें उसही रोहिणी और चंद्रमाके योगका अर्थ यथार्थ २ वर्णन करनेको हम उत्साही हुए हैं ॥१॥२॥ ॥ ३ ॥ आषाढ मासके कृष्णपक्षमें रोहिणीका चंद्रमाके साथ मेल देखकर जगत्का इष्ट या अनिष्ट शास्त्रके उपदेशानुसार दैवज्ञ कह सकता है ॥४॥ मेल होनेसे पहलेही उनका योग जिस प्रकारसे होना चाहिये, करण (पंचसिद्धान्तिका) में वह धिष्ण्ययोग हमारे द्वारा कहा जा चुका है; चंद्रमाका प्रमाण, द्युति, वर्ण, मार्ग और उत्पातके द्वाराही फल कहना चाहिये ॥ ५ ॥ ग्रहसंस्थानके जाननेवाले नगरकी पूर्व उत्तरदिशामें नक्षत्रसहित ग्रहोंको लिखकर धूप, फूल और बलिसे पूजा करे ॥६॥ चारों ओरमें वृक्ष और कोंपलसे ढका हुआ रत्नसहित जल और औषधियुक्त, तिसकी तलीकामी न हो ऐसे पूजनीय कलशके द्वारा कुश बिछे हुए यज्ञस्थानमें

रलंकृतं कुशास्तृतं स्थण्डिलमावसेद्द्विजः ॥ ७ ॥ आलभ्य मन्त्रेण महाव्रते
बीजानि सर्वाणि निधाय कुम्भे। पुण्यानि चामीकरदर्भतोयैर्होमो मरुद्वारुण
सौम्यमन्त्रैः ॥ ८ ॥ श्लक्ष्णां पताकामसितां विदध्याद्दण्डप्रमाणां त्रिगुणोच्छ्रि
च। आदौ कृते दिग्ग्रहणे नभस्वान् ग्राह्यस्तया योगमते शशाङ्के ॥ ९ ॥ तद
र्धमासाः प्रहरैर्विकल्प्या वर्षानिमित्तं दिवसास्तदंशैः। सव्येन गच्छन्शुभ
सदैव यस्मिन्प्रतिष्ठा बलवान् स वायुः ॥ १० ॥ वृद्धे तु योगेऽङ्कुरितानि या
सन्तीह बीजानि धृतानि कुम्भे। येषां तु योंऽशोऽङ्कुरितस्तदंशस्तेषां विवृ
समुपैति नान्यः ॥ ११ ॥ शान्तपक्षिमृगराविता दिशो निर्मलं वियदनीन्दि
ऽनिलः। शस्यते शशिनि रोहिणीयुते मेघमारुतफलानि वक्ष्यतः ॥ १२
क्वचिदसितसितैः सितैः क्वचिच्च क्वचिदसितैर्भुजगैरिवाम्बुवाहैः। वलितजठ

ब्राह्मणको बैठना चाहिये ॥ ७ ॥ महाव्रत नामके मंत्रोंसे अभिमंत्रित कर स
प्रकारके बीज घडेमें डालकर सुवर्ण और दर्भयुक्त जलसे उसको प्लावित करे
मारुत, वरुण और सौम्य मंत्रसे होम करे ॥ ८ ॥ चन्द्रमाका योग होनेपर दं
समान बारह हाथ ऊंचे बांसपर ४ हाथ लम्बी असित पताका धारण करे। प
दिन निर्णय करके उस पताकासे कितने क्षणतक कौन दिशामें हवा चलती है
जानें ॥ ९ ॥ एक प्रहरतक एक दिशामें हवा चले तौ १५ दिनतक वर्षा होगी
इस प्रकार वायु बहनके कालसे दिवसके अंशको निर्णय करे (श्रावणसे कार्तिक
इन चार मासके आठ पक्षका एक २ पक्ष एक २ अंशसे निर्देश करना चाहिये
बायीं दिशामें वायु गमन करे तौ शीघ्रही शुभदायी होती है और जो एक नि
लक्ष्यमें अर्थात् एक दिशामेंही गमन करे तौ वह वायु प्रतिष्ठावान्
बलवान् होता है ॥ १० ॥ इस योगके चले जानेपर घडेमें धरे हुए बीजोंमें
जो अंकुरित हों, उनका वही २ अंशही वृद्धिको प्राप्त होगा; और अंश नहीं ॥ ११
रोहिणीके साथ चन्द्रमाका मेल होनेपर यदि सब दिशायें शान्त हो जांय, पक्षि
या मृगगण उनमें मनोहर शब्द करें, आकाश निर्मल और वायु आनंदित हो
भूमिकी श्रेष्ठ सिद्धि होती है। इसके उपरान्त मेघ मारुतके फल क्रमानुसार क
जाते हैं ॥ १२ ॥ आकाशमें कहीं काला, कहीं श्वेत, कहीं कृष्ण वर्ण, क
कुटिल, जटा, पृष्ठ भाग रूप अर्थात् कुण्डली मारकर सर्पके मारनेसे जैसे तिरछे

उमावदृश्यैः स्फुरिततडिद्रसनैर्वृत विशालैः ॥ १३ ॥ विकसितकमलोदरावदाते-
रुणकरद्युतिरञ्जितोपकण्ठैः । छुरितमिव वियद्घनैर्विचित्रैर्मधुकरकुंकुमकिंशु-
कावदातैः ॥ १४ ॥ असितघननिरुद्धमेव वा चलिततडित्सुरचापचित्रितम् ।
द्विपमहिषकुलाकुलीकृतं वनमिव दावपरीतमम्बरम् ॥ १५ ॥ अथवाञ्जनशैल-
शिलानिचयप्रतिरूपधरैः स्थगितं गगनम् । हिममौक्तिकशंखशशाङ्ककरद्युतिहा-
रिभिरम्बुधरैरथवा ॥ १६ ॥ तडिद्धेमकक्षैर्बलाकाग्रदन्तैः स्रवद्वारिदानैश्चलत्क्ष्मा-
न्तहस्तैः विचित्रेन्द्रचापध्वजोच्छ्रायशोभैस्तमालालिनीलैर्वृतं चाब्दनागैः ॥१७॥
सन्ध्यानुरक्ते नभसि स्थितानामिन्दीवरश्यामरुचां घनानाम् । वृन्दानि पीताम्बरवे-
ष्टितस्य कान्तिं हरेश्चोरयतां यदा वा ॥ १८ ॥ सशिखिचातकदर्दुरनिस्वनै-
र्यदि विमिश्रितमन्द्रपटुस्वनाः । खमवतत्य दिगन्तविलम्बिनः सलिलदाः सलि-
लौघमुचः क्षितौ ॥ १९॥ निगदितरूपैर्जलधरजालैस्त्र्यहमवरुद्धं द्व्यहमथवाहः ।
यदि वियदेवं भवति सुभिक्षं मुदितजना च प्रचुरजला भूः ॥ २० ॥

पीठ और पेट दीख पडती हो, चमकती हुई बिजलीकी समान जीभवाले और शब्दयुक्त विशाल भुजंगाकार मेघोंके द्वारा जो आकाश घिर जाय, खिले हुए कमलकी समान निर्मल व अरुण है समीपभाग जिनका, मधुकर, कुंकुम, टेसूके फूलकी समान निर्मल विचित्र मेघोंसे रंगनेकी समान जो आकाश शोभायमान हो, काले मेघोंसे रंगनेकी समान जो आकाश शोभायमान हो, काले मेघोंसे ढका हुआ हो या चमकती हुई बिजली और इन्द्रधनुषके द्वारा चित्रित आकाश मानो हाथी और भैंसोंके द्वारा आकुल किया हुआ दावानलयुक्त वनकी समान दिखलाई दे या अञ्जन पहाडके काले पत्थरोंकी समान मेघोंसे 'आकाश छा जाय, अथवा हिम, मुक्ता, शंख और चन्द्रकिरणोंकी ज्योति हरण करनेवाले बादलोंसे जो आकाशमण्डल ढक जाय या बिजलीरूप हैमकक्षासम्पन्न वायुका रूप अभ्रदन्तरूप जलरूप मद चुआता मान्तरूप कर चलनेवाला, विचित्र इन्द्रधनु रूप ऊंची ध्वजासे शोभायमान और तमाल या भ्रमरकी समान नीलवर्ण हाथीरूप बादलसे सब आकाश छा जाय; जो सांझके रागसे रंगे हुए आकाशमें स्थित नीले कमलकी समान मेघसमूह पीतांबर पहरे हुए हरिकी कान्तिको हरण करे और मोर चातक व मेंडकोंके शब्दके साथ यदि मेघका गंभीर शब्द मिल जाय तो दिशाओंमें फैले हुए आकाशव्यापी बादल पृथ्वीपर बहुतसा जल बर्षाते हैं ॥१३॥१४॥१५॥१६॥१७॥१८॥१९॥
इस उक्त प्रकारके बादलोंसे आकाश दो या तीन दिन घिर रहे तो सुभिक्ष होवे,

गच्छेत् कदाचिदनृषिर्मनसापि पारम् ॥ ४ ॥ होराशास्त्रेऽपि राशिहोराद्रेक्काणनवांशकद्वादशभागत्रिंशद्भागबलाबलपरिग्रहो ग्रहाणां दिक्स्थानकालचेष्टाभिरनेकप्रकारबलनिर्धारणं प्रकृतिधातुद्रव्यजातिचेष्टादिपरिग्रहो निषेकजन्मकालविस्मापनप्रत्ययादेशसद्योमरणायुर्दायदशान्तर्दशाष्टकवर्गराजयोगचन्द्रयोगद्विग्रहादियोगानां नाभसादीनाञ्च योगानां फलान्याश्रयभावावलोकननिर्याणगत्यनूकानि तात्कालिकप्रश्नशुभाशुभनिमित्तानि विवाहादीनाञ्च कर्म्मणां करणम् । यात्रायाञ्च तिथिदिवसकरणनक्षत्रमुहूर्त्तविलग्नयोगदेहस्पन्दनस्वप्नविजयस्नानग्रहयज्ञगणयागाग्निलिङ्गहस्त्यश्वेङ्गितसेनाप्रवादचेष्टादिग्रहषाड्गुण्योपायमंगलामङ्गलशकुनसैन्यनिवेशभूमयोऽग्निवर्णा मन्त्रिचरदूताटविकानां यथाकालं प्रयोगाः परदुर्गलम्भोपायोश्चेत्युक्तं चाचार्यैः । जगति प्रसारितमिवालिखितमिव मतौ

तन्त्रको जानता हो, छाया, जल, यन्त्र आदि द्वारा लग्नको जान सकता हो और होराशास्त्रमें निपुण हो ऐसे पुरुषकी वाणी कदाचित् भी मिथ्या नहीं हो सकती । आर्य विष्णुगुप्तने कहाभी है—कि कदाचित् कोई पुरुष समुद्रको तैरकर पार होना चाहे तो वायुके वेगसे तैरकर पार हो सकता है परन्तु यह कालपुरुषका रूप जो ज्योतिष शास्त्र समुद्र है उसको ऋषिभिन्न मनुष्य मनसेभी पार नहीं हो सकता है । होरा शास्त्रमेंभी राशि, होरा, द्रेक्काण, नवांश, द्वादशांश, त्रिंशांश और बलाबल, परिग्रह, स्थान, काल और चेष्टा आदि अनेक प्रकारसे ग्रहबलका निर्द्धारण है; प्रकृति, धातु, द्रव्य, जाति और चेष्टा आदिका परिग्रह, निषेक, जन्मकाल, विस्मापन, प्रत्यय (विश्वास), आदेश, शीघ्रमरण, आयुर्दाय, दशा, अन्तर्दशा, अष्टवर्ग, राजयोग, चन्द्रयोग, द्विग्रहादियोग और नाभसादि सब योगोंका फल; आश्रय, भाव, दृष्टि, निर्याण, गति और अनूकादि व तिस कालके सब प्रश्नोंका शुभाशुभ कारण, सबही विवाहादि कर्म्म समूहोंका हेतु, यात्राका वर्णन; तिथि, दिवस, करण, नक्षत्र मुहूर्त्त, लग्न, योग, शरीरके अंगोंका फडकना, स्वप्न, विजय, स्नान, ग्रहयज्ञ, गणयात्रा, अग्निलिंग, हाथी घोडेके संकेत, सेनापवादकी चेष्टा इत्यादि, षाड्गुण्य-उपाय, मंगल अमंगलके शकुन, सेनाके वास करनेकी भूमियें, अग्नियोंका वर्ण, मंत्री, चर, दूत और वनचारियोंका कालानुसार प्रयोग, परदुर्गोपालम्भका उपाय, सब यात्राओंका हेतु स्वरूप; यह सब बातें होराशास्त्रमें कही हैं । आचार्योंने कहा है; जगत्में प्रचार हुएकी समान, बुद्धिमें लिखे हुएकी समान, हृदयमें ढाले हुएकी समान भगणसहित शास्त्र अर्थात् इस ज्योतिषशास्त्रको जो भलीभांतिसे

निषिक्तमिव हृदये । शास्त्रं यस्य सभगणं नादेशा निष्फलास्तस्य ॥५॥ संहितापारगश्च दैवचिन्तको भवति । यत्रैते संहितापदार्थाः । दिनकरादीनां ग्रहाणां चारास्तेषु च तेषां प्रकृतिविकृतिप्रमाणवर्णकिरणद्युतिसंस्थानास्तमनोदयमार्गमार्गान्तरवक्रानुवक्रर्क्षग्रहसमागमचारादिभिः फलानि नक्षत्रकूर्मविभागेन देशेष्वगस्तिचारः सप्तर्षिचारो ग्रहभक्तयो नक्षत्रव्यूहग्रहशृङ्गाटकग्रहयुद्धग्रहसमागमग्रहवर्षफलगर्भलक्षणरोहिणीस्वात्याषाढीयोगाः सद्योवर्षकुसुमलतापरिधिपरिवेषपरिघपवनोल्कादिग्दाहक्षितिचलनसन्ध्यारागगन्धर्वनगररजोनिर्घातार्घकाण्डसस्यजन्मेन्द्रध्वजेन्द्रचापवास्तुविद्याङ्गविद्यावायसविद्यान्तरचक्रमृगचक्राश्वचक्रवातचक्रप्रासादलक्षणप्रतिमालक्षणप्रतिष्ठापनवृक्षायुर्वेदोदकार्गलनीराजनखञ्जनोत्पातशान्तिमयूरचित्रकघृतकम्बलखड्गपट्टकृकवाकुकूर्मगोऽजाश्वेभपुरुषस्त्रीलक्षणान्यन्तःपुरचिन्तापिटकलक्षणोपानच्छेदवस्त्रच्छेदचामरदण्डशय्यासनलक्षणरत्नपरीक्षा दीप-

---

जानता है, उसका आदेश कभी निष्फल नहीं होता है ॥ ५ ॥ ज्योतिषशास्त्रके संहिताओंमें चतुर पुरुषही दैवज्ञ हो सकते हैं । क्योंकि संहिताओंमें इन सब बातोंका निरूपण होता है; यथा,-सूर्यादिग्रहकी चाल, तिनमें सूर्यादि सब ग्रहोंका स्वभाव, विकार, प्रमाण, वर्ण, किरण, ज्योति, संस्थान, उदय, अस्त, मार्ग, पृथक् मार्ग, वक्र, अनुवक्र और नक्षत्र, ग्रह, व समागमादिसे फलका निरूपण करना, नक्षत्रविभाग और कूर्मविभागसे सब देशोंमें उसका फल, अगस्त्यकी चाल, सप्तर्षियोंकी चाल, ग्रहभक्ति, नक्षत्रव्यूह, ग्रहशृंगाटक, ग्रहयुद्ध, ग्रहसमागम, ग्रहण, वर्षोंका फल, गर्भलक्षण, रोहिणीयोग, स्वातीयोग, आषाढीयोग, शीघ्र वर्षा होना, कुसुम, लता, परिधि (घेरा), परिवेश, परिघ, वायु, उल्का, दिग्दाह, भौंचाल, संध्याका फूलना, गन्धर्वनगर, धूरि, निर्घात, वस्तुओंका महँगा हो जाना, नाजका उत्पन्न होना, इन्द्रध्वज, इन्द्रधनुष, वास्तुविद्या (राजगीरी वगैरः आदि), अंगविद्या, वायसविद्या, अन्तरचक्र, मृगचक्र, अश्वचक्र, वातचक्र, प्रासादलक्षण प्रतिमालक्षण, प्रतिमाप्रतिष्ठा, वृक्षआयुर्वेद, वृक्षदोहद, उदकार्गल, नीराजन (निराजन), खंजन, उत्पातशान्ति, मयूरचित्रक, घृतलक्षण, कम्बललक्षण, खड्गलक्षण, पट्टलक्षण, कृकवाकु (मुर्गा) लक्षण, कूर्मलक्षण, गोलक्षण, अजालक्षण, कुक्कुर (कुत्ता) लक्षण, अश्वलक्षण, हस्तिलक्षण, पुरुषलक्षण, स्त्रीलक्षण, अन्तःपुर-चिन्ता, पिटक (देहादिमें बना हुआ चिह्न) लक्षण, मोजीके लक्षण, वस्त्रछेद-लक्षण, चामरलक्षण, दण्डलक्षण, शय्यालक्षण, आसनलक्षण, रत्नपरीक्षा, दीपक-

गच्छेत् कदाचिदनृषिर्मनसापि पारम् ॥ ४ ॥ होराशास्त्रेऽपि राशिहोराद्रेक्काणनवांशकद्वादशभागत्रिंशद्भागबलाबलपरिग्रहो ग्रहाणां दिक्स्थानकालचेष्टाभिरनेकप्रकारबलनिर्धारणं प्रकृतिधातुद्रव्यजातिचेष्टादिपरिग्रहो निषेकजन्मकालविस्मापनप्रत्ययादेशसद्योमरणायुर्दायदशान्तर्दशाष्टकवर्गराजयोगचन्द्रयोगद्विग्रहादियोगानां नाभसादीनाञ्च योगानां फलान्याश्रयभावावलोकननिर्याणगत्यनूकानि तात्कालिकप्रश्नशुभाशुभनिमित्तानि विवाहादीनाञ्च कर्म्मणां करणम् । यात्रायाञ्च तिथिदिवसकरणनक्षत्रमुहूर्तविलग्नयोगदेहस्पन्दनस्वप्नविजयस्नानग्रहयज्ञगणयागाग्निलिङ्गहस्त्यश्वेङ्गितसेनाप्रवादचेष्टादिग्रहषाड्गुण्योपायमंगलामङ्गलशकुनसैन्यनिवेशभूमयोऽग्निवर्णा मन्त्रिचरदूताटविकानां यथाकालं प्रयोगाः परदुर्गलम्भोपायोश्चत्युक्तं चाचार्यैः । जगति प्रसारितमिवालिखितमिव मतौ

तत्त्वको जानता हो, छाया, जल, यन्त्र आदि द्वारा लग्नको जान सकता हो और होराशास्त्रमें निपुण हो ऐसे पुरुषकी वाणी कदाचित् भी मिथ्या नहीं हो सकती । आर्य विष्णुगुप्तने कहाभी है–कि कदाचित् कोई पुरुष समुद्रको तैरकर पार होना चाहे तो वायुके वेगसे तैरकर पार हो सकता है परन्तु यह कालपुरुषका रूप जो ज्योतिष शास्त्र समुद्र है उसको ऋषिभिन्न मनुष्य मनसेभी पार नहीं हो सकता है । होरा शास्त्रमेंभी राशि, होरा, द्रेक्काण, नवांश, द्वादशांश, त्रिंशांश और बलाबल, परिग्रह, स्थान, काल और चेष्टा आदि अनेक प्रकारसे ग्रहबलका निर्द्धारण है; प्रकृति, धातु, द्रव्य, जाति और चेष्टा आदिका परिग्रह, निषेक, जन्मकाल, विस्मापन, प्रत्यय (विश्वास), आदेश, शीघ्रमरण, आयुर्दाय, दशा, अन्तर्दशा, अष्टवर्ग, राजयोग, चन्द्रयोग, द्विग्रहादियोग और नाभसादि सब योगोंका फल; आश्रय, भाव, दृष्टि, निर्याण, गति और अनूकादि व तिस कालके सब प्रश्नोंका शुभाशुभ कारण, सबही विवाहादि कर्म्म समूहोंका हेतु, यात्राका वर्णन; तिथि, दिवस, करण, नक्षत्र मुहूर्त्त, लग्न, योग, शरीरके अंगोंका फडकना, स्वप्न, विजय, स्नान, ग्रहयज्ञ, गणयात्रा, अग्निलिंग, हाथी घोडेके संकेत, सेनापवादकी चेष्टा इत्यादि, षाड्गुण्य-उपाय, मंगल अमंगलके शकुन, सेनाके वास करनेकी भूमियें, अग्नियोंका वर्ण, मंत्री, चर, दूत और वनचारियोंका कालानुसार प्रयोग, परदुर्गोपालम्भका उपाय, सब यात्राओंका हेतु स्वरूप; यह सब बातें होराशास्त्रमें कही हैं । आचार्योंने कहा है; जगत्में प्रचार हुएकी समान, बुद्धिमें लिखे हुएकी समान, हृदयमें ढाले हुएकी समान प्रमाणसहित शास्त्र अर्थात् इस ज्योतिषशास्त्रको जो भलीभांतिसे

निषिक्तमिव हृदये । शास्त्रं यस्य सभगणं नादेशा निष्फलास्तस्य ॥५॥ संहिता-पारगश्च दैवचिन्तको भवति । यत्रैते संहितापदार्थाः । दिनकरादीनां ग्रहाणां चारास्तेषु च तेषां प्रकृतिविकृतिप्रमाणवर्णकिरणद्युतिसंस्थानास्तमनोदयमार्गमार्गान्तरवक्रानुवक्रर्क्षग्रहसमागमचारादिभिः फलानि नक्षत्रकूर्मविभागेन देशेष्वगस्त्यचारः सप्तर्षिचारो ग्रहभक्तयो नक्षत्रव्यूहग्रहशृङ्गाटकग्रहयुद्धग्रहसमागमग्रहवर्षफलगर्भलक्षणरोहिणीस्वात्याषाढीयोगाः सद्योवर्षकुसुमलतापरिधिपरिवेषपरिघपवनोल्कादिग्दाहक्षितिचलनसन्ध्यारागगन्धर्वनगररजोनिर्घातार्घकाण्डसस्यजन्मेन्द्रध्वजेन्द्रचापवास्तुविद्याङ्गविद्यावायसविद्यान्तरचक्रमृगचक्राश्वचक्रवातचक्रप्रासादलक्षणप्रतिमालक्षणप्रतिष्ठापनवृक्षायुर्वेदोदगार्गलनीराजनखञ्जनोत्पातशान्तिमयूरचित्रकघृतकम्बलखड्गपट्टकृकवाकुकूर्मगोऽजाश्वेभपुरुषस्त्रीलक्षणान्यन्तःपुरचिन्तापिटकलक्षणोपानच्छेदवस्त्रच्छेदचामरदण्डशय्यासनलक्षणरत्नपरीक्षा दीप-

---

जानता है, उसका आदेश कभी निष्फल नहीं होता है ॥ ५ ॥ ज्योतिषशास्त्रकी संहिताओंमें चतुर पुरुषही दैवज्ञ हो सकते हैं । क्योंकि संहिताओंमें इन सब बातोंका निरूपण होता है; यथा,—सूर्यादिग्रहकी चाल, तिनमें सूर्यादि सब ग्रहोंका स्वभाव, विकार, प्रमाण, वर्ण, किरण, ज्योति, संस्थान, उदय, अस्त, मार्ग, पृथक् मार्ग, वक्र, अनुवक्र और नक्षत्र, ग्रह, व समागमादिसे चालका निरूपण करना, नक्षत्रविभाग और कूर्मविभागसे सब देशोंमें उसका फल, अगस्त्यकी चाल, सप्तर्षियोंकी चाल, ग्रहभक्ति, नक्षत्रव्यूह, ग्रहशृंगाटक, ग्रहयुद्ध, ग्रहसमागम, ग्रहण, वर्षाका फल, गर्भलक्षण, रोहिणीयोग, स्वातीयोग, आषाढीयोग, शीघ्र वर्षाका होना, कुसुम, लता, परिधि (घेरा), परिवेश, परिघ, वायु, उल्का, दिग्दाह, भौंचाल, संध्याका फूलना, गन्धर्वनगर, धूरि, निर्घात, वस्तुओंका महँगा हो जाना, नाजका उत्पन्न होना, इन्द्रध्वज, इन्द्रधनुष, वास्तुविद्या (राजगीरी वगैरह आदि), अंगविद्या, वायसविद्या, अन्तरचक्र, मृगचक्र, अश्वचक्र, वातचक्र, प्रासादलक्षण प्रतिमालक्षण, प्रतिमाप्रतिष्ठा, वृक्षआयुर्वेद, वृक्षदोहद, उदगार्गल, नीराजन (निम-जन), खंजन, उत्पातशान्ति, मयूरचित्रक, घृतलक्षण, कम्बललक्षण, खड्गलक्षण, पट्टलक्षण, कृकवाकु (कुक्कुट) लक्षण, कूर्मलक्षण, गोलक्षण, अजालक्षण, कु[illegible] (कुत्ता) लक्षण, अश्वलक्षण, हस्तिलक्षण, पुरुषलक्षण, स्त्रीलक्षण, अन्तःपुर-चिन्ता, पिटक (देहादिमें बना हुआ पिटक) लक्षण, कोपीके लक्षण, वस्त्रछेद-लक्षण, चामरलक्षण, दण्डलक्षण, शय्यालक्षण, आसनलक्षण, रत्नपरीक्षा, दीपल-

क्षणं दन्तकाष्ठाद्याश्रितानि शुभाशुभानि निमित्तानि सामान्यानि च जगतः प्रतिपुरुषं पार्थिवे च प्रतिक्षणमनन्यकर्माभियुक्तेन दैवज्ञेन चिन्तयितव्यानि । न चैकाकिना शक्यन्तेऽहर्निशमवधारयितुं निमित्तानि । तस्मात् सुभृतेनैव दैवज्ञेनान्ये तद्विदश्चत्वारो भर्तव्याः । तत्रैकेनैन्द्रीचाग्नेयी च दिगवलोकयितव्या । याम्या नैर्ऋती चान्येनैवं वारुणी वायव्या चोत्तरा चैशानी चेति । यस्मादुल्कापातादीनि निमित्तानि शीघ्रमुपगच्छन्तीति । तेषां चाकारवर्णस्नेहप्रमाणादिग्रहर्क्षाभिघातादिभिः फलानि भवन्ति ॥ ६ ॥ उक्तञ्च गर्गेण महर्षिणा । कृत्स्नाङ्गोपाङ्गकुशलं होरागणितनैष्ठिकम् । यो न पूजयते राजा स नाशमुपगच्छति ॥ ७ ॥ वनं समाश्रिता येऽपि निर्ममा निष्परिग्रहाः । अपि ते परिपृच्छन्ति ज्योतिषां गतिकोविदम् ॥ ८ ॥ अप्रदीपा यथा रात्रिरनादित्यं यथा नभः । तथाऽसांवत्सरो राजा भ्रमत्यन्ध इवाध्वनि ॥ ९ ॥ मुहूर्त्तं तिथिनक्षत्रमृतवश्चायने तथा । सर्वाण्येवाकुलानि स्युर्न स्यात् सांवत्सरो यदि ॥ १० ॥

क्षण और दन्तकाष्ठादि आश्रित समस्त शुभाशुभनिमित्त इस संहितासे प्रगट हो जाते हैं । दैवज्ञलोगोंको उचित है कि दूसरे कार्योंमें मन न लगाकर संसारके और प्रत्येक पुरुषके लिये समस्त पार्थिव बातोंमें साधारण, असाधारण, समस्त शुभाशुभको सर्वदा विचारें । परन्तु दिनरात इन बातोंका शुभाशुभ निर्णय करना अकेले आदमीका काम नहीं है; अत एव सुभृत दैवज्ञके साथ इस प्रकारके शास्त्र जाननेवाले औरभी चार आदमियोंको राजा नियत करे । तिनमेंसे एक आदमीको पूर्व और अग्निकोणकी बातें देखनी चाहिये । दूसरेको दक्षिण और नैर्ऋतकी, तीसरेको पश्चिम और वायुकोणकी, चौथेको उत्तर और ईशानकोणकी बातें देखनी चाहिये कि जिससे उल्कापातादि निमित्त शीघ्र मालूम हो जाय । क्योंकि इन उल्कापातादिका फल आकार, वर्ण, स्नेहप्रमाणादि और ग्रह नक्षत्र व अभिघातादिके सहित नहीं होता है । गर्गाचार्यने कहा है—साङ्गोपांग कुशल, होरा और गणितविषयमें चतुर दैवज्ञको जो राजा नहीं पूजता है, वह शीघ्रही नाशको प्राप्त हो जाता है ॥ ६ ॥ ७ ॥ वनवासी, ममताहीन और कुछ न ग्रहण करनेवाले पुरुषभी, ग्रहनक्षत्रादिकी गति जाननेवाले पंडितोंसे सब बातें पूंछा करते हैं ॥ ८ ॥ दीपकहीन रात्रि और सूर्यहीन आकाशकी समान दैवज्ञहीन राजाभी शोभायमान नहीं होता; वरन वह अन्धेकी समान कुपंथमें घूमा करता है ॥ ९ ॥ बिना दैवज्ञके मुहूर्त, तिथि,

तस्माद्राज्ञाधिगन्तव्यो विद्वान् सांवत्सरोऽग्रणीः। जयं यशः श्रियं भोगान् श्रेयश्च समभीप्सता ॥ ११ ॥ नासांवत्सरिके देशे वस्तव्यं भूतिमिच्छता। चक्षुर्भूतो हि यत्रैष पापं तत्र न विद्यते ॥ १२ ॥ न सांवत्सरपाठी च नरकेषूपपद्यते। ब्रह्मलोकप्रतिष्ठां च लभते दैवचिन्तकः ॥ १३ ॥ ग्रन्थतश्चार्थतश्चैतत् कृत्स्नं जानाति यो द्विजः। अग्रभुक् स भवेच्छ्राद्धे पूजितः पंक्तिपावनः ॥ १४ ॥ म्लेच्छा हि यवनास्तेषु सम्यक् शास्त्रमिदं स्थितम्। ऋषिवत्तेऽपि पूज्यन्ते किं पुनर्दैवविद्द्विजः ॥ १५ ॥ कुहकावेशपिहितैः कर्णोपश्रुतिहेतुभिः। कृतादेशो न सर्वत्र प्रष्टव्यो न स दैववित् ॥ १६ ॥ अविदित्वैव यः शास्त्रं दैवज्ञत्वं प्रपद्यते। स पंक्तिदूषकः पापो ज्ञेयो नक्षत्रसूचकः ॥ १७ ॥ नक्षत्रसूचकोद्दिष्टमुपवासं करोति यः। स व्रजत्यन्धतामिस्रं सार्धमृक्षविडं-बिना ॥ १८ ॥ नगरद्वारलोष्टस्य यद्वत् स्यादुपयाचितम्। आदेशस्तद्वदज्ञानां

नक्षत्र, ऋतु और अयनादि सब उलट पलट हो जांय ॥ १० ॥ इस कारण जय, यश, श्री, भोग और मंगलार्थी राजाको विद्वान् और अग्रणी दैवज्ञके निकट जाना अर्थात् सब कुछ जान लेना उचित है ॥ ११ ॥ जिस देशमें दैवज्ञ न रहता होय, उस देशमें वास करना उचित नहीं है; क्योंकि सब बातोंका नेत्ररूप दैवज्ञ जहां वास करता है वहांपर कोईभी पाप नहीं रहता है ॥ १२ ॥ दैवज्ञके पास पढनेसे या दैवज्ञको पढानेसे नरकमें नहीं जाना पडता, वरन दैवचिन्तक होनेसे ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठा मिलती है ॥ १३ ॥ जो ब्राह्मण इस विषयको ग्रंथके अनुसार या अर्थके अनुसार या भलीभांति जान लेते हैं, वह श्राद्धमें प्रथम भोजन करनेवाले और पंक्तिपावन होकर सब जगह पूजे जाते हैं ॥ १४ ॥ म्लेच्छ या यवनके पासभी जो यह शास्त्र हो तो ऋषियोंकी समान उनकी भी पूजा करनी चाहिये; फिर दैवचिन्तक ब्राह्मणके लिये इससे अधिक विशेष क्या कहा जाय ॥ १५ ॥ किसी प्रकारसे कुहक (माया, धोखा, जालसाजी) भेषसे ढका हुआ अथवा कानोंसे श्रवण करनेके हेतु विदिष्ट अर्थात् निन्दाभाजन होनेपर दैवज्ञसे कोई बात न पूछे और दैवज्ञभी न कहे ॥ १६ ॥ जो पुरुष बिना शास्त्रके जाने हुए दैवज्ञ हो जाय, उस पंक्तिदूषक पापात्माको "नक्षत्र-सूचक" (पटिया) जाने ॥ १७ ॥ नक्षत्रसूचकके उपदेश किये हुए उपवासा-दिको जो पुरुष करता है, वह आदमी उस नक्षत्रसूचकके साथ अंधतामिस्र नामक नरकमें पडता है ॥ १८ ॥ नगरद्वारलोष्टकी प्रार्थनाके (पत्थीशालग्रामादि

यः सत्यः स विभाव्यते ॥ १९ ॥ सम्पत्त्या योजितादेशस्तद्विच्छिन्नकथाप्रियः । मत्तः शास्त्रैकदेशेन त्याज्यस्तादृङ् महीक्षिता ॥ २० ॥ यस्तु सम्यग्विजानाति होरागणितसंहिताः । अभ्यर्च्यः स नरेन्द्रेण स्वीकर्तव्यो जयैषिणा ॥ २१ ॥ न तत्सहस्रं करिणां वाजिनां वा चतुर्गुणम् । करोति देशकालज्ञो यदेको दैवचिन्तकः ॥ २२ ॥ दुःस्वप्नदुर्विचिन्तितदुःप्रेक्षितदुष्कृतानि कर्माणि । क्षिप्रं प्रयान्ति नाशं शशिनः श्रुत्वा भसंवादम् ॥ ॥ २३ ॥ न तथेच्छति भूपतेः पिता जननी वा स्वजनोऽथवा सुहृत् । स्वयशोऽभिविवृद्धये यथा हितमाप्तः सबलस्य दैववित् ॥ २४ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां सांवत्सरसूत्रं द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ।

आश्लेषार्धाद्दक्षिणमुत्तरमयनं धनिष्ठाद्यम् । नूनं कदाचिदासीद् येनोक्तं पूर्वशास्त्रेषु ॥ १ ॥ साम्प्रतमयनं सवितुः कर्कटकाद्यं मृगादितश्चान्यत् । उक्ता-

---

अभिलापकी) समान, अज्ञानी पुरुषका आदेश कभी सत्यभी हो जाता है ॥१९॥ सम्पत्तियुक्त अर्थात् अनेक प्रकारके अर्थको बतानेवाले, अथवा सम्पत्तिहीन बातें जिसको अत्यन्त प्यारी हों, और थोडेसेही ज्ञानसे मतवाले होनेवाले दैवज्ञको राजा त्याग देवे ॥ २० ॥ होरा, गणित और संहितामें उत्तम ज्ञान रखनेवाले दैवज्ञको, जीतकी इच्छा करनेवाले राजा लोग पूजें और उसको अंगीकार करें ॥ २१ ॥ एक देशकालका जाननेवाला दैवचिंतक जो काम करनेकी सामर्थ्य रखता है उस कार्यको हजार हाथी या चार हजार घोडे नहीं कर सक्ते ॥ २२ ॥ दैवज्ञके मुखसे चन्द्रका नक्षत्रसंवाद श्रवण करनेसे बुरे स्वप्न, बुरे देखे हुए और बुरे कर्म इनका शीघ्रही नाश हो जाता है ॥ २३ ॥ दैवज्ञलोग अपना यश बढानेके अर्थ बलवाले राजाका इस प्रकार हित करते हैं कि जिस प्रकार उस राजाके पिता, माता, स्वजन और भाई बन्धुभी नहीं कर सक्ते ॥ २४ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यपण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

निश्चयही किसी समयमें आश्लेषा नक्षत्रके अर्द्धभागसे दक्षिणायन और धनिष्ठाके प्रथमसे उत्तरायण प्रचलित था, नहीं तो पहिले शास्त्रोंमें इसका वर्णन क्यों

भावो विकृतिः प्रत्यक्षपरीक्षणैर्व्यक्तिः ॥ २ ॥ दूरस्थचिह्नवेधादुदयेऽस्तमयेऽपि वा सहस्रांशोः । छायाप्रवेशनिर्गमचिह्नैर्वा मण्डले महति ॥ ३ ॥ अप्राप्य मकरमर्को विनिवृत्तो हन्ति सापरां याम्याम् । कर्कटकमसम्प्राप्तो विनिवृत्तश्चोत्तरां सैन्द्रीम् ॥ ४ ॥ उत्तरमयनमतीत्य व्यावृत्तः क्षेमसस्यवृद्धिकरः । प्रकृतिस्थश्चाप्येवं विकृतगतिर्भयकृदुष्णांशुः ॥ ५ ॥ सतमस्कं पर्व विना त्वष्टा नामार्कमण्डलं कुरुते । स निहन्ति सप्त भूपान् जनांश्च शस्त्राग्निदुर्भिक्षैः ॥ ६ ॥ तामसकीलकसंज्ञा राहुसुताः केतवस्त्रयस्त्रिंशत् । वर्णस्थानाकारैस्तान् दृष्ट्वार्के फलं ब्रूयात् ॥ ७ ॥ ते चार्कमण्डलगताः पापफलाश्चन्द्रमण्डले सौम्याः । ध्वाङ्क्षकबन्धप्रहरणरूपाः पापाः शशाङ्केऽपि ॥ ८ ॥ तेषामुदये रूपाण्यम्भः कलुषं रजोवृतं व्योम । नगतरुशिखरविमर्दी सशर्करो मारुतश्चण्डः ॥ ९ ॥ ऋतुविपरीतास्तरवो दीप्ता मृगपक्षिणो दिशां दाहः । निर्घातमहीकम्पादयो भवन्त्यत्र

होता ? परन्तु सूर्यका जो अयन इस समयमें प्रचलित है वह कर्कराशिके आर्द्र और मकरके प्रथमसेही आरम्भ होता है इस विषयके प्रमाणकोही विकृति कहते हैं; प्रत्यक्ष परीक्षा करनेसे जो ठीक होगा उसकोही प्रकाशित किया जायगा ॥ १ ॥ २ ॥ सूर्यके उदय वा अस्तकालमें महामंडलकी दूरीके चिह्नोंके वेधसे अथवा महामण्डलमें छायाके प्रवेश और छायाके निकलनेके चिह्नोंसे अयनकी परीक्षा होती है ॥ ३ ॥ सूर्य विना मकरराशिमें गये यदि लौट आवें तो दक्षिण-पश्चिम दिशाका नाश करते हैं, और जो विना कर्कराशितक गये लौट आवें तो पूर्व उत्तर दिशाको नष्ट करते हैं, यदि उत्तरायणको लांघकर लौट आवें तो मंगल होता है, धान्यकी वृद्धि होती है, इसको ही प्रकृतिस्थ सूर्य कहते हैं; सूर्यकी गति विकृत होनेसे भय होता है ॥ ४ ॥ ५ ॥ यदि विना पर्वकालके सूर्य अपने मंडलको राहुयुक्त करें तब सात राजाओंकी मृत्यु होयगी, और शस्त्र अग्नि वा दुर्भिक्ष आदिसे मनुष्योंका नाश होयगा ॥ ६ ॥ तामस और कीलकादि नामवाले राहुके पुत्र केतु तेंतीस प्रकारके हैं, वर्ण, स्थान और आकारादिसे सूर्यमंडलमें उनको देखकर फल निर्देश करना चाहिये ॥ ७ ॥ वह यदि सूर्यमंडलमें जाय तो अमंगलकारक है, परन्तु चन्द्रमंडलमें जाय तो शुभफलको देते हैं, जो वह चन्द्रमंडलमें काक, कबन्ध वा शस्त्रके रूपसे प्रकाशित होवें तो अमंगलदायक हैं ॥ ८ ॥ इन केतुओंका उदय होनेसे नदियोंमें उथल पुथल हो जाती है; जल मलीन हो जाता है, आकाशमें धूरी छा जाती है, पर्वत और वृक्षोंके शिखरको मर्दन करनेवाला प्रचण्ड पवन चले;

त्याताः ॥ १० ॥ न पृथक् फलानि तेषां शिखिकीलकराहुदर्शनानि यदि ।
दयकारणमेषां केत्वादीनां फलं ब्रूयात् ॥ ११ ॥ यस्मिन् यस्मिन् देशे
नमायान्ति सूर्यबिम्बस्थाः । तस्मिंस्तस्मिन् व्यसनं महीपतीनां परिज्ञेयम्
१२ ॥ क्षुत्प्रम्लानशरीरा मुनयोऽप्युत्सृष्टधर्मसच्चरिताः । निर्मांसबालहस्ताः
क्लेशेनायान्ति परदेशान् ॥ १३ ॥ तस्करविलुप्तवित्ताः प्रदीर्घनिःश्वासमुकु-
ताक्षिपुटाः । सन्तः सन्नशरीराः शोकोद्भवबाष्परुद्धदृशः ॥ १४ ॥ क्षामा
जुगुप्समानाः स्वनृपतिपरचक्रपीडिता मनुजाः । स्वनृपतिचरितं कर्म्म च पराकृतं
त्रुवन्त्यन्ये ॥ १५ ॥ गर्भेष्वपि निष्पन्ना वारिमुचो न प्रभूतवारिमुचः । सरितो
न्ति तनुत्वं क्वचित् क्वचिज्जायते सस्यम् ॥ १६ ॥ दण्डे नरेन्द्रमृत्युर्व्याधिभयं
ात् कबन्धसंस्थाने । ध्वाङ्क्षे च तस्करभयं दुर्भिक्षं कीलकेऽर्कस्थे ॥ १७॥
नोपकरणरूपैश्छत्रध्वजचामरादिभिर्विद्धः । राजान्यत्वकृदर्कः स्फुलिङ्गधू-

ती है, वृक्ष ऋतुमें विपरीत हो जाते हैं मृग और पक्षी इत्यादि प्रदीप्त दिशा-
की ओर दौडते या शब्द करते हैं, दिग्दाह, निर्घात और भौंचाल आदि बडे २
पात होते हैं ॥ ९ ॥ १० ॥ इन राहुके पुत्रोंमें यदि बाण या नाम्भादि रूप-
से राहुका दर्शन होय तौ पहिलेकी समान फल कहना चाहिये इस प्रकारसे उनके
उदयका कारण और केतु आदिका फलाफल निर्णय करे ॥ ११ ॥ सूर्यबिम्बवाले
तु जिन जिन देशोंमें दिखाई दें,उन्हीं २ देशोंके राजाका अमंगल होयगा ॥१२॥
के उदय होनेसे मुनिलोगभी भूंखसे थकित देहवाले और स्वधर्म व श्रेष्ठ चरित्रसे
न होकर मांसहीन बालकोंको हाथमें लेकर अतिकष्टसे दूसरे देशोंमें जायँगे॥१३॥
पुरुषोंके वित्तको तस्कर चुरा लेंगे, इस कारण वह लम्बे लम्बे सांस छोडते हुए
ोंमे आंसू बहाते व्याकुल देहसे शोकके मारे गद्गद कंठ होकर रहेंगे ॥ १४ ॥
स कालमें मनुष्य अपने राजा या दूसरे राजचक्रसे अत्यन्त दुबले होकर निन्दा-
ती हो जायेंगे, कोई स्वदेशीय राजाके चरित्र या पराकृत कर्मकी निन्दा करेंगे
१५ ॥ मेघ गर्भयुक्त होकरभी रहेंगे, बहुतसा जल नहीं देंगे, नदियें कम जलवाली
जायेंगी, धान कहीं कहीं उत्पन्न होगा ॥ १६ ॥ सूर्यमण्डलमें दण्डाकार
तु दिखाई देनेसे राजाका मरण होता है, कबन्ध दिखाई देनेसे व्याधिका
य उत्पन्न होता है, ध्वांक्षाकार दिखाई देनेसे चोरभय और स्तम्भका
कार दीखनेसे अकाल होता है ॥ १७ ॥ राजाके उपकरणरूप छत्र,

१. दीप्ता इत्यादि दिशाओंका वर्णन शकुनाध्यायमें करेंगे ।

मादिभिर्जनहा ॥ १८ ॥ एको दुर्भिक्षकरो द्वयाद्याः स्युर्नरपतेर्विनाशाय । सितरक्तपीतकृष्णैस्तैर्विद्धोऽर्कोऽनुवर्णघ्नः ॥ १९ ॥ दृश्यन्ते च यतस्ते रविबिम्बस्योत्थिता महोत्पाताः । आगच्छति लोकानां तेनैव भयं प्रदेशेन ॥ २० ॥ ऊर्ध्वकरो दिवसकरस्ताम्रः सेनापतिं विनाशयति । पीतो नरेन्द्रपुत्रं श्वेतस्तु पुरोहितं हन्ति ॥ २१ ॥ चित्रोऽथवापि धूम्रो रविरश्मिर्व्याकुलां करोति महीम् । तस्करशस्त्रनिपातैर्यदि सलिलं नाशु पातयति ॥ २२ ॥ ताम्रः कपिलो वार्कः शिशिरे हरिकुंकुमच्छविश्च मधौ । आपाण्डुकनकवर्णो ग्रीष्मे वर्षासु शुक्लश्च ॥ २३ ॥ शरदि कमलोदराभो हेमन्ते रुधिरसन्निभः शस्तः । प्रावृट्काले स्निग्धः सर्वर्तुनिभोऽपि शुभदायी ॥ २४ ॥ रूक्षः श्वेतो विप्रान् रक्ताभः क्षत्रियान्विनाशयति । पीतो वैश्यान् कृष्णस्ततोऽपरान् शुभकरः स्निग्धः ॥२५॥

ध्वज, चामरादि चिह्न यदि सूर्यमण्डलमें विधे हुए हों तो राज्यकी बदली होती है और चिनगारी या धूमादिसे ढक जानेपर सब मनुष्योंकी मृत्यु होती है ॥ १८ ॥ पूर्वश्लोकोक्त छत्रादि एक चिह्नसे सूर्य विद्ध होवे तो दुर्भिक्ष होता है, दो आदिसे विद्ध होवे तो राजाका नाश होता है; सपेद, लाल, पीला और काला इन वर्णवाले पूर्वोक्त चिह्नसे विद्ध होनेपर क्रमसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रका नाश होता है ॥ १९ ॥ उत्पन्न हुए यह महाउत्पात रविबिम्बमें जहां कहीं दिखाई देंगे, उस देशके रहनेवाले सब लोगोंको भय होगा ॥ २० ॥ सूर्यके ऊपर भागकी किरण जो ताम्ररंगकी होय तो सेनापतिका नाश होता है, पीतरंगकी होय तो राजपुत्रका और श्वेतवर्णकी होय तो राजपुरोहितका नाश होता है ॥२१॥ सूर्यका किरणमण्डल यदि अनेक रंगोंसे रंगा हुआ होय अथवा धूम्रवर्ण होय, यदि शीघ्र वर्षा न हो तो चोरोंसे या शस्त्रनिपातादिसे समस्त पृथिवी व्याकुल होयगी ॥ २२ ॥ सूर्यमण्डल शिशिरकालमें ताम्रवर्ण या कपिलवर्ण, वसन्तकालमें हरित कुमकुमकी समान, ग्रीष्मकालमें कुछएक पाण्डुवर्ण (श्वेत और पीत मिला हुआ) और स्वर्णकी समान, वर्षाकालमें शुक्लवर्ण, शरदकालमें कमलके गर्भकी छविके समान और हेमन्तकालमें रक्तवर्ण होनेपर शुभकारक है, परन्तु वर्षाकालमें स्निग्ध होनेपर अशुभ होता है ॥ २३ ॥ २४ ॥ रूखा या श्वेतवर्ण होनेसे ब्राह्मणोंका नाश होता है, रक्तकी आभायुक्त होनेपर क्षत्रीका नाश, पीतवर्णसे वैश्यका और काला वर्ण होनेसे शूद्रका नाश होता है, सूर्यके इन सब रंगोंमें चमक हो तो शुभ होता है ॥ २५ ॥

ग्रीष्मे रक्तो भयकृद्वर्षास्वसितः करोत्यनावृष्टिम् । हेमन्ते पीतोऽर्कः करोत्यचिरेण रोगभयम् ॥ २६ ॥ सुरचापपाटिततनुर्नृपतिविरोधप्रदः सहस्रांशुः । प्रावृट्काले सद्यः करोति विमलद्युतिर्वृष्टिम् ॥ २७ ॥ वर्षाकाले वृष्टिं करोति सद्यः शिरीषपुष्पाभः । शिखिपत्रनिभः सलिलं न करोति द्वादशाब्दानि ॥ २८ ॥ श्यामेऽर्के कीटभयं भस्मनिभे भयमुशन्ति परचक्रात् । यस्यर्क्षे सच्छिद्रस्तस्य विनाशः क्षितीशस्य ॥ २९ ॥ शशरुधिरनिभे भानौ नभस्तलस्थे भवन्ति संग्रामाः । शशिसदृशे नृपतिवधः क्षिप्रं चान्यो नृपो भवति ॥ ३० ॥ क्षुन्मारकृद्घटनिभः खण्डो नृपहा विदीधितिर्भयदः । तोरणरूपः पुरहा छत्रनिभो देशनाशाय ॥ ३१ ॥ ध्वजचापनिभे युद्धानि भास्करे वेपने च रूक्षे च । कृष्णा रेखा सवितरि यदि हन्ति नृपं ततः सचिवः ॥ ३२ ॥ दिवसकरमुदयसंस्थित-

---

ग्रीष्मकालमें सूर्यका मण्डल लाल होवे तौ प्राणियोंको भय होता है, वर्षाकालमें कृष्णवर्ण हो तौ अनावृष्टि होती है और हेमन्तकालमें पीतवर्ण होय तौ शीघ्रही रोगभय होता है ॥ २६ ॥ जो सूर्यमण्डल वर्षाके समय इन्द्रका चाप सन्मुख आ पडनेसे खण्डित देहवाला दिखाई दे तौ राजाओंमें विरोध होता है, यदि निर्म्मल किरणवाला दीखे तौ शीघ्रही वृष्टि होती है ॥ २७ ॥ यदि वर्षाकालमें सूर्यबिम्ब सिरीषके फूलकी समान आभावाला ज्ञात हो तौ शीघ्र वर्षा होयगी, परन्तु मोरकी पूंछके समान आभावाला दिखाई दे तौ बारह वर्षतक अनावृष्टि होयगी ॥ २८ ॥ सूर्यका बिम्ब श्यामवर्णवाला हो तौ (देशमें) कीटभय, राखकी समान वर्णवाला हो तौ परराष्ट्रसे भय होता है और जिस राजाके जन्मनक्षत्रमें विराजमान सूर्यमें छिद्र दिखाई दे तौ उस राजाका नाश हो जाता है ॥ २९ ॥ जो सूर्यका रंग खरगोशके [illegible] समान शोणित हो तौ युद्ध होता है और चन्द्रमाकी समान रंगवाला दिखाई दे तौ शीघ्रही उस देशके राजाका नाश होकर दूसरा राजा हो जाता है ॥ ३० ॥ जो सूर्यमण्डल घडेके आकारसा दिखाई दे तौ (प्राणिगण) क्षुधा [illegible] भाग छोडें, खण्डाकार होनेपर राजाका नाश होता है; [illegible] होता है, तोरण (फाटक) रूप होनेपर नगरका नाश होता है, [illegible] देशविनाश होता है ॥ ३१ ॥ जो सूर्यका बिम्ब कम्पायमान [illegible] अथवा धनुष या ध्वजकी समान हो तौ संग्राम होता है, यदि सूर्यमण्डलमें काली रेखा दिखाई दे तौ मंत्रीसे राजाका नाश होता है ॥ ३२ ॥ उल्का, वज्र या बिजली जो उदयकालमें सूर्यको टक्कर दे तो वर्तमान राजाका नाश होकर

सोल्काशनिविद्युतो यदा हन्युः । नरपतिमरणं विद्यात् तदान्यराजप्रतिष्ठां च ॥ ३३ ॥ प्रतिदिवसमहिमकिरणः परिवेषी सन्ध्ययोर्द्वयोरथवा । रक्तोऽस्तमेति रक्तोदितश्च भूपं करोत्यन्यम् ॥ ३४ ॥ प्रहरणसदृशैर्जलदैः स्थगितः सन्ध्याद्वयेऽपि रणकारी । मृगमहिषविहगखरकरभसदृशरूपैश्च भयदायी ॥ ३५ ॥ दिनकरकराभितापादृक्षमवाप्नोति सुमहतीं पीडाम् । भवति च पश्चाच्छुद्धं कनकमिव हुताशपरितापात् ॥ ३६ ॥ दिवसकृतः प्रतिसूर्यो जलकृदुदग्दक्षिणे स्थितोऽनिलकृत् । उभयस्थः सलिलभयं नृपमुपरि निहन्त्यधो जनहा ॥ ३७ ॥ रुधिरनिभो वियदवनिपान्तकरो न चिरात् । परुषरजोऽरुणीकृततनुर्यदि वा दिनकृत् ॥ ३८ ॥ असितविचित्रनीलपरुषो जनघातकरः । खगमृगभैरवखररुतैश्च निशामुखे ॥ ३९ ॥ अमलवपुरवक्रमण्डलः स्फुटविपुलामल-

---

दूसरे राजाकी प्रतिष्ठा होती है ॥ ३३ ॥ जिस देशमें सूर्यदेव प्रतिदिन प्रातःकालमें और सन्ध्याकालमें परिधिवाले (पैषयुक्त) होते हैं अथवा लाल रंगको धारण करके उदय होते और छिपते हैं उस देशमें निश्चयही दूसरा राजा होता है ॥ ३४ ॥ यदि प्रातःकाल और सन्ध्याकालमें सूर्यबिम्ब शस्त्रके समान आकारवाले बादलोंसे घिर जाय तो युद्ध होगा और मृग, महिष, पक्षी, गधे और हाथीके समान मेघोंसे ढक जाय तो अत्यन्त भय होगा ॥ ३५ ॥ जैसे अग्निके तापसे सुवर्ण अत्यन्त पीडाको प्राप्त होकर पीछेसे शुद्ध हो जाता है, वैसेही समस्त नक्षत्र सूर्यकी किरणोंके सन्तापसे कष्ट पाकर फिर शुद्ध होते हैं ॥ ३६ ॥ सूर्यदेवकी उत्तर दिशामें यदि प्रतिसूर्य दिखाई दे तो वृष्टि होगी; दक्षिणदिशामें दिखाई देनेसे आंधी तूफान होगा; सूर्यके दोनों ओर दिखाई देनेसे जलभय, नीचे दीखनेसे लोकविनाश और ऊपर दीखनेसे राजाका विनाश होता है ॥ ३७ ॥ यदि आकाशके ऊपर भागमें सूर्य लालरंगका दिखाई दे, या भयंकर धूलिकी राशिसे लाल वर्णका दिखाई दे तो शीघ्रही राजाकी मृत्यु होती है ॥ ३८ ॥ जो सूर्यका बिम्ब कृष्णवर्ण, चित्रवर्ण अथवा नीलवर्ण होकर भयंकर आकार धारण करे और जो सन्ध्याकालमें पक्षी और मृगोंका शब्द गधेके शब्दकी समान भयंकर हो तो सब लोकोंका विनाश हो जाता है ॥ ३९ ॥ जो सूर्य निर्मल देहवाला, गोलमण्डलवाला, स्पष्ट व आयत निर्मल दीर्घ किरणवाला हो और उसकी देह विकाररहित हो तथा चिह्न-

१ सूर्यके उदयकालमें जो रक्तवर्ण सूर्यकी समान पदार्थ दीखता है उसको ही प्रतिसूर्य कहते हैं ।

मगधान्मथुरां च पीडयेद् वेणायाश्च तटं शशाङ्कजः। अपरत्र कृतं युगं वदेद् यदि भित्त्वा शशिनं विनिर्गतः ॥ २६ ॥ क्षेमारोग्यसुभिक्षाविनाशी शीतांशुः शिखिना यदि भिन्नः। कुर्य्यादायुधजीविविनाशं चौराणामधिकेन च पीडाम् ॥ २७ ॥ उल्कया यदा शशी ग्रस्त एव हन्यते हन्यते तदा नृपो यस्य जन्मनि स्थितः ॥ २८ ॥ भस्मनिभः परुषोऽरुणमूर्त्तिः शीतकरः किरणैः परिहीणः। श्यावतनुः स्फुटितः स्फुरणो वा क्षुत्समरामयचौरभयाय ॥ २९ ॥ प्रालेयकुन्दकुमुदस्फटिकावदातो यत्नादिवाद्रिसुतया परिमृज्य चन्द्रः। उच्चैः कृतो निशि भविष्यति मे शिवाय यो दृश्यते स भविता जगतः शिवाय ॥ ३० ॥ यदि कुमुदमृणालहारगौरस्तिथिनियमात् क्षयमेति वर्द्धते वा। अविकृतगतिमण्डलांशुयोगी भवति नृणां विजयाय शीतरश्मिः ॥ ३१ ॥ शुक्ले पक्षे सम्प्रवृद्धे प्रवृद्धिं ब्रह्मक्षत्रं याति वृद्धिं प्रजाश्च। हीने हानिस्तुल्यता तुल्यतायां कृष्णे सर्वं तत्फलं व्यत्ययेन ॥ ३२ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां चन्द्रचारश्चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

करके नाश कर देता है ॥ २५ ॥ जो बुध ग्रह चन्द्रमाको भेदकरके निकलता हो तो मगध, मथुरा और वेणा नदीके किनारे वसे हुए देशोंको पीडित करता है और पश्चिम देशमें सतयुगकी उत्पत्ति होती है ॥ २६ ॥ जो केतुसे चन्द्रमा पीडित होता हो तो अमंगल, व्याधि, दुर्भिक्ष व शस्त्रसे जीविका करनेवालोंका नाश होता है और तस्कर लोगोंको अत्यन्त पीडा होती है ॥ २७ ॥ राहु या केतुसे ग्रस्त चन्द्रमाके ऊपर जो उल्का गिरे तो जिस राजाके जन्मनक्षत्रपर चन्द्रमा हो, उस राजाकी मृत्यु होती है ॥ २८ ॥ जो चन्द्रमाका देह भस्मतुल्य रूखा, अरुणवर्ण, किरणहीन, श्यामवर्ण, फूटा हुआ अथवा कम्पमान दिखाई दे तो क्षुधा, संग्राम, रोग अथवा चोरोंका भय होता है ॥ २९ ॥ मानो कि रात्रिकालमें हमारे लिये यह अत्यन्त सुखदायक होगा इस विचारसे हिमाचलसुता पार्वतीजीके द्वारा यत्नसहित मार्जित होकर चढनेसे जो चन्द्रमा हिमकण, कुन्दपुष्प, कुमुदकुसुम अथवा स्फटिक (बिल्लौर) की समान शुभ्रवर्णवाला होता है, वह चन्द्रमाही जगत्को शुभदाई है ॥ ३० ॥ जो शीतरश्मि चन्द्रमा कुमुद, मृणाल या हारकी समान शुभ्रवर्णवाला होकर तिथिके नियमानुसार घटता बढता है, जिसके मण्डलमें विकार नहीं आता, जो गति और किरणोंसे युक्त होता है, तिससे सब मनुष्योंकी विजय होती है ॥ ३१ ॥ शुक्लपक्षमें किसी तिथिके बढ जानेसे पक्ष बढ जाय और चंद्रमा

पञ्चमोऽध्यायः ।

अमृतास्वादविशेषाच्छिन्नमपि शिरः किलासुरस्येदम् । प्राणैरपरित्यक्तं ग्रहतां यातं वदन्त्येके ॥ १ ॥ इन्द्वर्कमण्डलाकृतिरसितत्वात् किल न दृश्यते गगने । अन्यत्र पर्वकालाद् वरप्रदानात् कमलयोनेः ॥ २ ॥ मुखपुच्छविभक्ताङ्गं भुजङ्गमाकारमुपदिशन्त्यन्ये । कथयन्त्यमूर्तमपरे तमोमयं सैंहिकेयाख्यम् ॥ ३ ॥ यदि मूर्तो भविचारी शिरोऽथवा भवति मण्डली राहुः । भगणार्धेनान्तरितौ गृह्णाति कथं नियतचारः ॥ ४ ॥ अनियतचारः खलु चेदुपलब्धिः सङ्ख्यया कथं तस्य । पुच्छाननाभिधानोऽन्तरेण कस्मान्न गृह्णाति ॥ ५ ॥ अथ तु भुजगेन्द्ररूपः पुच्छेन मुखेन वा स गृह्णाति । मुखपुच्छान्तरसंस्थं

अतिशय वृद्धिको प्राप्त होवे तो ब्राह्मण, क्षत्री और प्रजागण अत्यन्त बढते हैं, जो ऐसेही चन्द्रमा हीन हो तो सबकी हानि होती है, सम होवे तो सबको समता प्राप्त होती है. परन्तु कृष्णपक्षमें हो तो इसका फल विपरीत होता है ॥ ३२ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्य्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य–पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

कोई २ पण्डित कहते हैं कि राहुनामक असुरका यह मस्तक कट जानेपरभी अमृत पीनेके विशेष हेतुकरके प्राणहीन न होकर (राहुरूप) ग्रहपनको प्राप्त हुआ है, परन्तु सूर्यमण्डल और चन्द्रमण्डलकी समान आकृतिवाला राहु कृष्णवर्ण होनेसे ब्रह्माजीके वरदान हेतुकरके ग्रहण समयके अतिरिक्त और किसी समय आकाशमें दिखाई नहीं देता ॥ १ ॥ २ ॥ कोई २ पंडित कहते हैं कि यह राहु मुह और पूंछवाला सर्पाकारसा है और पंडित कहते हैं कि इस राहुका कोईभी आकार नहीं है, वरन यह अंधकारमय है ॥ ३ ॥ यह आकाशमें घूमनेवाला राहु जो शरीरधारी या मस्तकाकार अथवा मंडलमय होता तो यह नियत गतिवाला राहु भगणार्धं अर्थात् छः राशिके अंतरपर होकरभी किस प्रकारसे ग्रहण करता है ॥४॥ यदि राहुकी गतिमें किसी प्रकारकी स्थिरता न होती तो गणितके द्वारा किस प्रकारसे उसका ज्ञान हो सकता और यदि यह मुखपूंछवाले आकारका होता तो अमावस्या या पूर्णिमाके सिवाय और समय ग्रहण क्यों नहीं होता ॥ ५ ॥ जो इसका आकार सर्पकी समान होता तो कभी मुखसे और कभी पूंछसेभी ग्रहण

स्थगयति कस्मान्न भगणार्धम् ॥ ६ ॥ राहुद्वयं यदि स्याद् ग्रस्तेऽस्तमितेऽथवो दिते चन्द्रे । तत्समगतिनान्येन ग्रस्तः सूर्योऽपि दृश्येत ॥ ७ ॥ भूच्छायां स्वग्रहणे भास्करमर्कग्रहे प्रविशतीन्दुः । प्रग्रहणमतः पश्चान्नेन्दोर्भानोश्च पूर्वार्धात् ॥ ८ ॥ वृक्षस्य स्वच्छाया यथैकपार्श्वेन भवति दीर्घा च । निशि निशि तद्वद् भूमेरावरणवशाद्दिनेशस्य ॥ ९ ॥ सूर्यात् सप्तमराशौ यदि चोदग्दक्षिणेन नातिगतः । चन्द्रः पूर्वाभिमुखश्छायामौर्वीं तदाविशति ॥ १० ॥ चन्द्रोऽधःस्थः स्थगयति रविमम्बुदवत्समागतः पश्चात् । प्रतिदेशमतश्चित्रं दृष्टिवशाद्भास्करग्रहणम् ॥ ११ ॥ आवरणं महदिन्दोः कुण्ठविषाणस्ततोऽर्धसञ्छन्नः । स्वल्पं रवेर्यतोऽतस्तीक्ष्णविषाणो रविर्भवति ॥ १२ ॥ एवमुपरागकारणमुक्तमिदं दिव्यदृग्भिराचार्यैः । राहुः कारणमस्मिन्नित्युक्तः शास्त्रसद्भावः ॥ १३ ॥ योऽसावसुरो राहुस्तस्य वरो ब्रह्मणायमाज्ञप्तः । आप्यायनमुपरागे दत्तहुतां

हो जाया करता और कभी मध्यस्थलद्वाराभी ग्रहणकी सम्भावना हुआ करती ॥६॥ यदि कोई कहे कि दो राहु हैं, तो एक राहुसे चन्द्रमा ग्रस्त होता, उदय होते अथवा छिप जाता, तब यह दिखाई देता कि उसकी समान चलनेवाले दूसरे राहुसे सूर्यभी ग्रसित हो गया है ॥ ७ ॥ जो कुछभी हो, चंद्रग्रहणके समय चंद्रमा पृथ्वीकी छायामें प्रवेश करता है और सूर्यग्रहणके समय सूर्यमंडलमें प्रवेश करता है, यही कारण है कि पश्चिम दिशासे चंद्रग्रहण और पूर्व दिशासे सूर्यग्रहणका आरम्भ नहीं होता ॥ ८ ॥ जिस प्रकार किसी एक वृक्षकी छाया सूर्यका आवरण करके एक ओरहीको फैलती है, वैसेही सूर्यके आवरण होनेके कारण पृथ्वीकी छायाभी प्रतिदिन दीर्घ होती है ॥ ९ ॥ जिस समय चंद्रमा सूर्यकी सातवीं राशिमें रहकर उत्तर दक्षिणको अधिक दूर नहीं गमन करता, तब चंद्रमा पूर्वमुखमें आगमन करके पृथ्वीकी छायामें प्रवेश करता है ॥ १० ॥ (सूर्यग्रहणके समय) सूर्यके नीचे स्थित हुआ चन्द्रमा, पश्चिम दिशासे आकर मेघकी समान सूर्यबिम्बको ढक लेता है, यही कारण है कि सूर्यका ग्रहण दृष्टिके वश होकर प्रतिदेशमें अनेक प्रकारसे होता है ॥ ११ ॥ इस प्रकार चन्द्रमाका आवरण अधिक होनेसेही अर्द्ध छन्न चन्द्रमाका शृङ्ग अतिशय कुण्ठित होता है और सूर्यका आवरण बहुत थोड़ा होता है, इसी कारणसे सूर्यका शृङ्ग अत्यन्त तीक्ष्ण होता है ॥ १२ ॥ दिव्यदृष्टिवाले आचार्य लोगोंने इस प्रकारसे ग्रहणका कारण बताया है, परन्तु ग्रहण होनेके विषयमें राहुको कारण कहना शास्त्रका सद्भाव मात्र है ॥ १३ ॥ राहुनामक अ

शेन ते भविता ॥ १४ ॥ तस्मिन् काले सान्निध्यमस्य तेनोपचर्यते राहुः । याम्योत्तरा शशिगतिर्गणितेऽप्युपचर्यते तेन ॥ १५ ॥ न कथञ्चिदपि निमित्तैर्ग्रहणं विज्ञायते निमित्तानि । अन्यस्मिन्नपि काले भवन्त्यथो त्पातरूपाणि ॥ १६ ॥ पञ्चग्रहसंयोगान्न किल ग्रहणस्य सम्भवो भवति । तैलञ्च जलेऽष्टम्यां न विचिन्त्यमिदं विपश्चिद्भिः ॥ १७ ॥ अवनत्यार्के ग्रासो दिग् ज्ञेया वलनयावनत्या च । तिथ्यवसानाद्वेला करणे कथितानि तानि मया ॥ १८ ॥ षण्मासोत्तरवृद्ध्या पर्वेशाः सप्त देवताः क्रमशः । ब्रह्मशशीन्द्रकुबेरा वरुणाग्नियमाश्च विज्ञेयाः ॥ १९ ॥ ब्राह्मे द्विजपशुवृद्धि-क्षेमारोग्याणि सस्यसम्पच्च । तद्वत्सौम्ये तस्मिन् पीडा विदुषामवृष्टिश्च ॥ २० ॥ ऐन्द्रे भूपविरोधः शारदसस्यक्षयो न च क्षेमम् । कौबेरेऽर्थपतीनामर्थविनाशः

इसको ब्रह्माजीने ऐसा वर दिया था कि "लोग ग्रहणके समय जो होम करेंगे उसहीके अंशसे तुम तृप्त होगे" ॥ १४ ॥ इसी कारणसे ग्रहणके समय राहुका सान्निध्य होता है और इसीसे गणितमें चन्द्रमाकी गतिभी उत्तरदक्षिणमें होती है; बस और किसी समयमें ग्रहण नहीं हो सकता। यदि और किसी समयमें ग्रहणका लक्षण निरूपित किया जाय तो वह उत्पातका रूप गिना जाता है ॥ १५ ॥ १६ ॥ पांच ग्रहोंके इकट्ठे मेलसे भी ग्रहण नहीं हो सकता और अष्टमीके दिन जलमें तेल डालनो जो शास्त्रमें लिखा है इस लिखेकाभी पंडित लोगोंको विश्वास न करना चाहिये ॥ १७ ॥ अवनतिके द्वारा सूर्यका ग्रास और वलन व अवनतिके द्वारा दिक् और तिथिके अवसानानुसार समयका जिस प्रकार निरूपण करना चाहिये सो हम अपने बनाये करण ग्रन्थमें कह आये हैं ॥ १८ ॥ ब्रह्मा, चन्द्र, इन्द्र, कुबेर, वरुण, अग्नि और यम ये सात देवता षण्मासोत्तर वृद्धिके अनुसार ग्रहणके मालिक हैं ॥ १९ ॥ जिस ग्रहणमें ब्रह्मा मालिक है उस समयमें द्विज और पशुओंकी वृद्धि होती है, मंगल आरोग्य और धान्यसम्पत्ति होती है। चन्द्रमाके समयमेंभी ऐसा ही होता है और पंडितोंको पीडा व अनावृष्टि होती है ॥ २० ॥ ग्रहणमें इन्द्रके मालिक होनेके समय राजाओंमें विरोध होता है, शरद्ऋतुके धान्यका नाश होता है, अमंगल होता है, कुबेरके

---

१ शास्त्रमें लिखा है कि अष्टमीके दिन पानीमें तेल डालनेसे वह तेल जिस दिशामें न फैले उसी दिशामें ग्रहणकी मुक्ति होगी, जिसकी विपरीत दिशामें नाश होगा। तदा च गर्गः-तैलमष्टम्यां जले तैलं क्षिपन्त स्थाने विनिर्दिशेत् ।" इत्यादि ।

सुभिक्षं च ॥ २१ ॥ वारुणमवनीशाशुभमन्येषां क्षेमसस्यवृद्धिकरम् । आग्नेयं मित्राख्यं सस्यारोग्याभयाम्बुकरम् ॥ २२ ॥ याम्यं करोत्यवृष्टिं दुर्भिक्षं संक्षयं च सस्यानाम् । यदतः परं तदशुभं क्षुन्मारावृष्टिदं पर्व ॥ २३ ॥ वेलाहीने पर्वणि गर्भविपत्तिश्च शस्त्रकोपश्च । अतिवेले कुसुमफलक्षयो भयं सस्यनाशश्च ॥ २४ ॥ हीनातिरिक्तकाले फलमुक्तं पूर्वशास्त्रदृष्टत्वात् । स्फुटगणितविदः कालः कथञ्चिदपि नान्यथा भवति ॥ २५ ॥ यद्येकस्मिन् मासे ग्रहणं रविसोमयोस्तदा क्षितिपाः । स्वबलक्षोभैः संक्षयमायान्त्यतिशस्त्रकोपश्च ॥ २६ ॥ ग्रस्तावुदितास्तमितौ शारदधान्यावनीश्वरक्षयदौ । सर्वग्रस्तौ दुर्भिक्षमरककरौ पापसंदृष्टौ ॥ २७ ॥ अर्धोदितोपरक्तो नैकृतिकान् हन्ति सर्वयज्ञांश्च । अग्न्युपजीविगुणाधिकविप्राश्रमिणोऽयुगाख्युदितः ॥ २८ ॥

[illegible] धनियोंके धनका नाश होता और सुभिक्ष होता है ॥ २१ ॥ वरुणके सम- [illegible] अशुभ होता है, लोगोंका मंगल होता है, धान्यकी वृद्धि होती है. [illegible] इसके समयमें धान्य, आरोग्य, अभय और [illegible] ॥ २२ ॥ जिस समयमें ग्रहणका मालिक यम होता है, उस [illegible] अनावृष्टि, दुर्भिक्ष और धान्यकी हानि होती है. इसके अति- [illegible] ग्रहण होनेसे क्षुधा, महामारी और अनावृष्टि होती है ॥ २३ ॥ [illegible] कालके पहले ग्रहण होनेसे गर्भोको भय [illegible] अर्थात् गणितके नियत किये कालके [illegible] नाश, भय और धान्यका नाश होता है ॥ २४ ॥ [illegible] ग्रहणका फल पहले शास्त्रोंको देखकर इस प्रकार [illegible] गणितका जाननेवाला जो समय बतावेगा वा [illegible] हो सकता ॥ २५ ॥ यदि एक महीनेमें सूर्य चन्द्रमा [illegible] अपनी सेनामें [illegible] जानेसेही नाश [illegible] होता है ॥ २६ ॥ जो सूर्य चन्द्रमा [illegible] उदय हो या अस्त हो और [illegible] नाश होता है और [illegible] ॥ २७ ॥ [illegible] ग्रहण हो जाय तो नैकृति [illegible]

कर्षकपाषण्डवणिक्क्षत्रियबलनायकान् द्वितीयेंऽशे । कारुकशूद्रम्लेच्छान् स्वतृतीयांशे समन्त्रिजनान् ॥ २९ ॥ मध्याह्ने नरपतिमध्यदेशहा शोभनश्च धान्यार्घः । तृणभुगमात्यान्तःपुरवैश्यघ्नः पञ्चमे खांशे ॥ ३० ॥ स्त्रीशूद्रान् षष्ठेंऽशे दस्युप्रत्यन्तहास्तमयकाले । यस्मिन् खांशे मोक्षस्तत्लोकानां शिवं भवति ॥ ३१ ॥ द्विजनृपतीनुदगयने विट्छूद्रान् दक्षिणायने हन्ति । राहुरुदगादिदृष्टः प्रदक्षिणं हन्ति विप्रादीन् ॥ ३२ ॥ म्लेच्छान् विदिक्स्थितो यायिनश्च हन्याद्हुताशसत्त्वांश्च । सलिलचरदन्तिघातो याम्येनोदग्गवामशुभः ॥ ३३ ॥ पूर्वेण सलिलपूर्णां करोति वसुधां समागतो दैत्यः । पश्चात्कर्षकसेवकबीजविनाशाय नि-

---

यदि अयुग्म १ ३ ५ ७ आकाशांशमें ग्रहणका आरम्भ हो जाय तो अग्निसे जीविका करनेवाले सुनार भुरजी आदि, गुणाधिक ब्राह्मण और आश्रममें रहनेवालोंका नाश करता है ॥ २८ ॥ जो आकाशके दूसरे अंशमें ग्रहणका आरम्भ हो जाय तो किसान, पाखण्डी, वणिक्, क्षत्री और सेनाके स्वामीका नाश हो जाता है, जो आकाशके तीसरे अंशमें ग्रासका आरम्भ होवे तो कारुक (शिल्पसे जीविका करनेवाले), शूद्र, म्लेच्छ और मंत्रियोंका नाश हो जाता है ॥ २९ ॥ जो आकाशके बीच भागमें अर्थात् मध्याह्न कालमें ग्रहण आरम्भ होवे तो राजाका मध्यदेश नष्ट होता है, धान्यका मूल्य सुहाता हुआ होता है । आकाशके पंचम भागमें ग्रहणका आरम्भ होनेसे तृणभोजन करनेवाले, मंत्री, अन्तःपुर और वैश्योंका नाश होता है ॥ ३० ॥ आकाशके छठे भागमें ग्रहण होनेसे स्त्री, शूद्र और सप्तम भागमें अर्थात् अस्तकालमें ग्रहणका आरंभ होनेसे चोर और गह्वर आदि म्लेच्छदेशजातियोंका नाश होता है परन्तु आकाशके जिस अंशमें मोक्ष अर्थात् ग्रहणका शेष होता है, तिस २ भागके कहे हुए देशोंका और वहांके प्राणियोंका शुभ होता है ॥ ३१ ॥ उत्तरायणमें ग्रहण होनेसे ब्राह्मण और क्षत्रियोंकी हानि होती है, दक्षिणायनमें होनेसे वैश्य और शूद्रोंकी हानि होती है और उत्तर, पूर्व, दक्षिण और पश्चिम इन चारों दिशाओंमेंसे जो किसी दिशामें राहु दिखाई दे तो दक्षिण पर्यायक्रमसे ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्रजातिकी हानि है ॥ ३२ ॥ ईशानकोणमें दिखाई दे तो म्लेच्छजाति, अग्निकोणमें दिखाई दे तो पथिक, दक्षिणमें जलचर और हस्ती और उत्तरमें गायदोगोंका अशुभ होता है ॥ ३३ ॥ राहु पूर्वदि-

१ ग्रहण होनेके दिनके रात्रिमान या दिनमानके सात भाग करनेसे जो हो वही रात्र वा दिनका सातवां भाग और आकाशका सातवां भाग है ।

दिष्टः ॥३४॥ पाञ्चालकलिङ्गशूरसेनाः काम्बोजोड्रकिरातशस्त्रवार्ताः । जीवन्ति च ये हुताशवृत्त्या ते पीडामुपयान्ति मेषसंस्थे ॥३५॥ गोपाः पशवोऽथ गोमिनो मनुजा ये च महत्त्वमागताः । पीडामुपयान्ति भास्करे ग्रस्ते शीतकरेऽथवा वृषे ॥ ३६ ॥ मिथुने प्रवराङ्गना नृपा नृपमात्रा बलिनः कलाविदः । यमुनातटजाः सबाह्लिका मत्स्याः सुह्मजनैः समन्विताः ॥ ३७ ॥ आभीरान्छबरान् सपह्लवान् मल्लान् मत्स्यकुरूञ्छकानपि । पाञ्चालान्विकलांश्च पीडयत्यन्नं चापि निहन्ति कर्कटे ॥ ३८ ॥ सिंहे पुलिन्दगणमेकलसत्त्वयुक्तान् राजोपमान्नरपतीन् वनगोचरांश्च । षष्ठे तु सस्यकविलेखकगेयसक्तान् हन्त्यश्मकत्रिपुरशालियुतांश्च देशान् ॥३९॥ तुलाधरेऽवन्त्यपरान्त्यसाधून् वणिग्दशार्णान् मरुकच्छपांश्च । अलिन्यथोदुम्बरमद्रचोलान् द्रुमान् सयौधेयविषायुधीयान् ॥४०॥

शासे आवे तो पृथ्वी जलसे पूर्ण हो जाय, पश्चिम दिशासे आवे तो किसान, सेवक और बीजोंका नाश होता है ॥ ३४ ॥ यदि मेषराशिमें राहुका दर्शन हो तो पंजाब, कलिंग, शूरसेन, काम्बोज, ओड्र, किरात और शस्त्रवार्त्त (शस्त्रधारी) आदि समस्त देश और जो अग्निसे आजीविका करनेवाले हैं, वे सबही अत्यन्त पीडित होते हैं ॥ ३५ ॥ सूर्य या चंद्रमा जो वृषराशिमें राहुसे ग्रसे जायँ तो गोप, पशु, अधिक करके गायढोर पालनेवाले लोक और अत्यन्त गुणी लोग अत्यन्तही पीडित होवें ॥ ३६ ॥ मिथुनराशिमें ग्रहण हो जाय तो श्रेष्ठ रमणी (स्त्री), राजा, साधारण राजा (जमीदार), बलवान् आदमी, नाचने गाने और बजानेवाले, यमुनाके किनारेपर रहनेवाले और बाह्लीकदेश, मत्स्यदेश और सुह्म देशवासी मनुष्योंको पीडा होती है ॥ ३७ ॥ जो कर्कटराशिमें चंद्रमा या सूर्यका ग्रहण हो तो आभीर, शबर जातिके पुरुष और पह्लव, मल्ल, मत्स्य, कुरु, शक, पाञ्चाल और विकलदेश पीडित होवें, अन्नोंका नाश होवे ॥ ३८ ॥ सिंहराशिमें ग्रहण होनेसे पुलिन्दगण, मेकल, बलिष्ठ राजा, राजाकी समान पुरुष और वन चारियोंका नाश होता है. कन्याराशिमें ग्रहण होवे तो कवि, लेखक, गीत गानेसे आजीविका करनेवालोंका नाश होता है, धान्य नष्ट होते हैं और अश्मक, त्रिपुर व शालि इन प्रधान देशोंका ध्वंस होता है ॥ ३९ ॥ जो तुलाराशिमें सूर्य या चन्द्रमाका ग्रहण होवे तो अवन्ती देश, पश्चिम समुद्रके निकटका देश, दशार्णदेश, साधु पुरुष, वणिक और मरुकच्छदेशके राजाका नाश होवे, वृश्चिकराशिमें ग्रहण होवे तो उदुम्बर, मद्र और चोलदेशके आदमी, वृक्ष, श्रेष्ठ योधा और विष-

धन्विन्यमात्यवरवाजिविदेहमल्लान् पाञ्चालवैद्यवणिजो विषमायुधज्ञान् ॥ हन्यान्मृगे तु झषमन्त्रिकुलानि नीचान् मन्त्रौषधीषु कुशलान् स्थविरायुधीयान् ॥ ४१ ॥ कुम्भेऽन्तर्गिरिजान् सपश्चिमजनान् भारोद्वहांस्तस्करान् आभीरान्दरदार्यसिंहपुरकान् हन्यात्तथा बर्बरान्। मीने सागरकूलसागरजलद्रव्याणि मान्यान् जनान् प्राज्ञान्वार्युपजीविनश्च भफले कूर्मोपदेशाद्वदेत् ॥ ४२ ॥ सव्यापसव्यलेहग्रसननिरोधावमर्दनारोहाः । आघातं मध्यतमस्तमोऽन्त्य इति ते दश ग्रासाः ॥ ४३ ॥ सव्यगते तमसि जगज्जलप्लुतं भवति मुदितमभयञ्च । अपसव्ये नरपतितस्करावमर्दैः प्रजानाशः ॥ ४४ ॥ जिह्वेव लेढि परितस्तिमिरनुदो मण्डलं यदि स लेहः । प्रमुदितसमस्तभूता प्रभूततोया च तत्र मही ॥ ४५ ॥ ग्रसनमिति यदा त्र्यंशः पादो वा गृह्यतेऽथवाप्यर्द्धम् । स्फीतनृपवित्तहानिः पीडा च स्फीत-

---

देनेवाले आदमियोंका नाश हो जाता है ॥ ४० ॥ धनराशिमें ग्रहण होवे तो मंत्री, श्रेष्ठ अश्व, विदेह, मल्ल और पांचाल देश, वैद्य, वणिक और विषम अस्त्रोंके जाननेवाले पुरुषोंका नाश हो जाता है। मकरराशिमें सूर्य ग्रहण होनेसे मत्स्य, मंत्रिकुल, नीच, सलाह व औषधि जानने या बनानेमें निपुण और वृद्ध अस्त्रधारी पुरुषोंका नाश होता है ॥ ४१ ॥ कुम्भराशिमें ग्रहण होवे तो पहाडी आदमी, पाश्चात्य, बोझा ढोनेवाले, तस्कर, अहीर और दरद, आर्य और सिंहनगर तथा बर्बर देशके लोगोंका नाश हो जाता है। मीनराशिमें ग्रहण होनेसे समुद्रतीरके और समुद्रजलसे उत्पन्न हुए द्रव्य, मान्यपुरुष, पंडित और जलसे आजीविका करनेवाले मच्छीमार, मल्लाहादिकोंका नाश हो जाता है। इस प्रकार कूर्मोपदेशके वशसे अर्थात कूर्मसंस्थानके अनुसारसे ग्रहणका फल कहा जाता है ॥ ४२ ॥ चन्द्रसूर्यके ग्रहणमें दश प्रकारके ग्रास हैं यथा;—१ सव्य, २ अपसव्य, ३ लेह, ४ ग्रसन, ५ निरोध, ६ अवमर्द, ७ आरोह, ८ आघ्रात, ९ मध्यम और १० तमोन्त्य हैं॥४३॥ जो राहु सव्यमें गमन करे अर्थात् सव्य नामक ग्रहण हो तो संसार जलसे पूर्ण हो जाय, हर्षित होकर भयहीन होवे. अपसव्यग्रासमें राजा या चोरोंके पीडा देनेसे प्रजाका नाश हो ॥ ४४ ॥ यदि राहु जीभकी समान चन्द्रमण्डलको चाटे तो उस ग्रहणको लेह कहते हैं. इस ग्रहणके होनेसे पृथ्वीके प्राणिगण हर्षित होते हैं और पृथ्वीपर बहुतसा जल वर्षता है ॥ ४५ ॥ जब ग्रहमण्डलका एकपाद, अर्द्धभाग वा त्रिपाद ग्रस्त हो जाता है, तब उसको ग्रसन कहते हैं, इससे गर्वित राजाके

देशानाम् ॥ ४६ ॥ पर्यन्तेषु गृहीत्वा मध्ये पिण्डीकृतं तमास्तिष्ठेत् । स निरोधो विज्ञेयः प्रमोदकृत् सर्वभूतानाम् ॥ ४७ ॥ अवमर्दनमिति निःशेषमेव सञ्छाद्य यदि चिरं तिष्ठेत् । हन्यात् प्रधानदेशान् प्रधानभूपांश्च तिमिरमयः ॥ ४८ ॥ वृत्ते ग्रहे यदि तमस्तत्क्षणमावृत्य दृश्यते भूयः । आरोहणमित्यन्योऽन्यमर्दनैर्भयकरं राज्ञाम् ॥ ४९ ॥ दर्पण इवैकदेशे सबाष्पनिःश्वासमारुतोपहतः । दृश्येताघ्रातं तत् सुवृष्टिवृद्ध्यावहं जगतः ॥ ५० ॥ मध्ये तमः प्रविष्टं वितमस्कं मण्डलं च यदि परितः । तन्मध्यदेशनाशं करोति कुक्ष्यामयभयं च ॥ ५१ ॥ पर्यन्तेष्वतिबहुलं स्वल्पं मध्ये तमस्तमोऽन्त्याख्ये । सस्यानामीतिभयं भयमस्मिंस्तस्कराणां च ॥ ५२ ॥ श्वेते क्षेमसुभिक्षं ब्राह्मणपीडां च निर्दिशेद्राहौ । अग्निभयमनलवर्णे पीडा च हुताशवृत्तीनाम् ॥ ५३ ॥ हरिते रोगोल्वणता

धनका नाश होता है और गर्वित देशोंको पीडा होती है ॥ ४६ ॥ सूर्य वा चन्द्रमण्डलतक देश अर्थात् पिछली सीमातक ग्रस करके जो राहु मध्यस्थानमें पिण्डाकारकी समान विराजमान होवे तो उसको निरोध कहते हैं इससे समस्तही प्राणियोंको हर्ष होता है ॥ ४७ ॥ जो राहुविम्ब मण्डलको भलीभांति पूर्णतासे ढककर अधिक कालतक विराजमान रहे, तो उसको अवमर्दन कहते हैं; इससे प्रधान देश और प्रधान व प्रधानराजाका नाश होता है और अंधकारका भय होता है ॥ ४८ ॥ जो गोलाकार ग्रहमण्डलको राहु ढककर अर्थात् ग्रहण होकर जो राहु फिर तत्काल दिखाई दे तो उसको आरोहण कहते हैं, इससे राजाओंको परस्पर युद्धका अत्यन्त भय होता है ॥ ४९ ॥ बाफयुक्त सांसकी पवनसे जिस प्रकार दर्पण मलीन हो जाता है वैसेही यदि राहुसे चन्द्र या सूर्यका मंडल एक ओरको मलीन दीख पडे तो उस ग्रासको आघ्रात कहते हैं; इससे जगत्में सुवृष्टि होती है और सब जगत्की वृद्धि होती है ॥ ५० ॥ यदि चन्द्रमाके बिचले भागमें राहु प्रवेश कर आवे और चन्द्रमंडलके चारों ओर यदि निर्मल रहे तो इस ग्रासको मध्यतम कहते हैं, यह मध्यदेश नाशक और कोखके रोगोंको करनेवाला है ॥ ५१ ॥ जो चन्द्रमण्डलकी पिछली सीमामें राहु अत्यन्त बहुतायतसे और बीचके भागमें थोडासा ज्ञात हो तो इसको तमोन्त्यनामक ग्रास कहते हैं; इससे धान्योंको ईति करनेवाला भय होता है और चोरोंका भय होता है ॥ ५२ ॥ राहु श्वेतवर्ण होवे तो मंगल सुभिक्ष और ब्राह्मणोंको पीडा होती है, अग्निवर्ण होनेसे अग्निभय और अग्निसे जीविका करनेवाले लुहारादिको पीडा होती है ॥ ५३ ॥ हरे रंगका राहु होवे तो

सस्यानामीतिभिश्च विध्वंसः । कपिले शीघ्रगसत्त्वम्लेच्छध्वंसोऽथ दुर्भिक्षम्
॥ ५४ ॥ अरुणकिरणानुरूपे दुर्भिक्षावृष्टयो विहगपीडा । आधूम्रे क्षेमसुभि-
क्षमादिशेन्मन्दवृष्टिं च ॥ ५५ ॥ कापोतारुणकपिलश्यावाभे क्षुद्भयं विनिर्दे-
श्यम् । कापोतः शूद्राणां व्याधिकरः कृष्णवर्णश्च ॥ ५६ ॥ विमलकमणि-
पीताभो वैश्यध्वंसी भवेत् सुभिक्षाय । सार्चिष्मत्यग्निभयं गैरिकरूपे तु यु-
द्धानि ॥५७ ॥ दूर्वाकाण्डश्यामे हारिद्रे वापि निर्दिशेन्मरकम् । अशनिभयसंप्र-
दायी पाटलकुसुमोपमो राहुः ॥ ५८ ॥ पांशुविलोहितरूपः क्षत्रध्वंसाय भवति
वृष्टेश्च । बालरविकमलसुरचापरूपभृच्छस्त्रकोपाय ॥ ५९॥ पश्यन् ग्रस्तं सौम्यो
घृतमधुतैलक्षयाय राज्ञां च । भौमः समरविमर्दं शिखिकोपं तस्करभयं च ॥६०॥
शुक्रः सस्यविमर्दं नानाक्लेशांश्च जनयति धरित्र्याम् । रविजः करोत्यवृष्टिं दुर्भिक्षं
तस्करभयं च ॥ ६१ ॥ यदशुभमवलोकनाभिरुक्तं ग्रहजनितं ग्रहणे प्रमोक्षणे

रोगकी अधिकाई और नाजका ईतिसे नाश होता है। कपिलवर्णका राहु होवे तो
शीघ्र चलनेवाले प्राणी, म्लेच्छोंका नाश और दुर्भिक्ष होगा ॥ ५४ ॥ राहुका वर्ण
अरुण दिखाई दे तो दुर्भिक्ष, अनावृष्टि और पक्षियोंको पीडा होती है। धुएँके समान
मैला वर्ण हो तो मंगल, सुभिक्ष और वृष्टि मन्दी होती है ॥ ५५ ॥ कपोत, अरुण,
कपिल वा कपिश वर्णका राहु दिखाई देय तो क्षुधाका भय होता है और कबूतरके
वर्णका या काले रंगका होवे तो शूद्रोंको पीडा होती है ॥ ५६ ॥ जो राहु निर्मल-
मणिकी समान पीत वर्ण होय तो वैश्योंका नाश और सुभिक्ष होता है, अग्निकी
शिखाके समान हो तो अग्निभय और गेरूकी समान दिखाई दे तो युद्ध होता है
॥ ५७ ॥ दूर्वादलकी समान श्यामवर्ण या हल्दीकी समान राहु दिखाई दे तो
मरी पडती है। पाटलफूलकी समान राहुका रंग होवे तो वज्र गिरनेका डर रहता
है ॥ ५८ ॥ धूरीकी समान या लाल वर्णका दिखाई दे तो वर्षा होती है और
क्षत्रियोंका नाश होता है । प्रभातकालीन सूर्यकी समान, कमल या इन्द्रधनुषकी
समान राहुका वर्ण होय तो शस्त्रकोप होता है ॥ ५९ ॥ अब दृष्टिफल कहते हैं;—
ग्रस्तग्रहमंडलमें बुधकी दृष्टि होवे तो घी, शहद, तेल नाश हो और राजाओंको भय
होता है। मंगलकी दृष्टि होवे तो युद्धमें मर्दन, अग्निकोप और चोरोंका भय होता है
॥६०॥ शुक्रकी दृष्टि होवे तो पृथ्वीमें धान्योंका नाश होता है, अनेक प्रकारके उप-
द्रव होते हैं। शनिकी दृष्टि होवे तो दुर्भिक्ष, अनावृष्टि और चोरभय होता है ॥६१॥
ग्रहणके आरम्भसमयमें वा मोक्षसमयमें दर्शनादिके द्वारा जो अशुभफल कहे गये

वा। सुरपतिगुरुणावलोकिते तच्छममुपयाति जलैरिवाग्निरिद्धः ॥ ६२ ॥
ग्रस्ते क्रमान्निमित्तैः पुनर्ग्रहो मासषट्कपरिवृद्धचा। पवनोल्कापातरजःक्षितिक-
म्पतमोऽशनिनिपातैः ॥ ६३ ॥ आवन्तिका जनपदाः कावेरीनर्मदातटाश्रयिणः।
दृप्ताश्च मनुजपतयः पीड्यन्ते क्षितिसुते ग्रस्ते ॥ ६४ ॥ अन्तर्वेदीं सरयूं नेपालं
पूर्वसागरं शोणम्। स्त्रीनृपयोधकुमारान् सह विद्वद्भिर्बुधो हन्ति ॥ ६५ ॥ ग्रह-
णोपगते जीवे विद्वन्नृपमन्त्रिगजहयध्वंसः। सिन्धुतटवासिनामप्युदग्दिशं संश्रि-
तानां च ॥ ६६ ॥ भृगुतनये राहुगते दसेरकाः केकयाः सयौधेयाः। आर्य्या-
वर्त्ताः शिबयः स्त्रीसचिवगणाश्च पीड्यन्ते ॥ ६७ ॥ सौरे मरुभवपुष्करसौराष्ट्रा
धावतोऽर्बुदान्त्यजनाः। गोमन्तपारियात्राश्रिताश्च नाशं व्रजन्त्याशु ॥ ६८ ॥
कार्त्तिक्यामनलोपजीविमगधान् प्राच्याधिपान् कोशलान् कल्माषानथ शूरसेन-
सहितान् काशींश्च सन्तापयेत्। हन्याचाशु कलिङ्गदेशनृपतिं सामात्यभृत्यं
तमो दृष्टं क्षत्रियतापदं जनयति क्षेमं सुभिक्षान्वितम् ॥ ६९ ॥ काश्मीरकान्

वे समस्त बृहस्पतिकी दृष्टिसे इस तरह शान्त हो जाते हैं जैसे जलराशिसे बढ़ी हुई आग ॥ ६२ ॥ वायु, उल्कापात, धूरि वर्षना, भोंचाल, अंधकार और वज्रपात-रूप निमित्तद्वारा बहुधा छः मासके पीछे ग्रहण होता है ॥ ६३ ॥ मंगलका ग्रहण होवे तौ अवन्तीदेश, कावेरी और नर्मदाके निकटके देश और सब गर्वित राजाओंका नाश होता है ॥ ६४ ॥ जो बुधग्रहसे राहुका ग्रहण होवे तौ अन्तर्वेदी, सरयू, नेपाल, पूर्वसागर और शोणादिदेशोंकी स्त्रियें, राजा, योद्धा, पंडित और बालकोंका नाश होता है ॥ ६५ ॥ बृहस्पतिका ग्रहण होवे तौ विद्वान्, राजमंत्री, हाथी और घोडोंका नाश होता है। सिन्धुनदीके निकट रहनेवाले या उत्तरादेशाके रहनेवाले पुरुषोंका नाश होता है ॥ ६६ ॥ शुक्रका ग्रहण होवे तो दासेरक, काश्मीर, यौधेय, आर्य्यावर्त, शिबि आदि देशको व स्त्रियों और मंत्रियोंको पीडा होती है ॥ ६७ ॥ जो शनिग्रह राहुसे ग्रस्त होवे तौ मरुभव, पुष्कर, सौराष्ट्र आदि देशके लोग, पैदल, अर्बुदादि अन्त्यजाति, गोमन्त और पारियात्र पहाडके रहनेवाले शीघ्रही नाशको प्राप्त हो जाते हैं ॥ ६८ ॥ जो राहु कार्तिक महीनेमें दिखाई दे तौ अग्निसे आजीविका करनेवाले पुरुष अर्थात् सुनार, लुहार और मगध, कोशल, कल्माष, शूरसेन व काशीआदि देशोंके रहनेवाले प्राणी पीडित होते हैं और इस प्रकार क्षत्रियोंको ताप देनेवाले राहुके दिखाई देनेपर मंत्री और नौकर चाकरोंके साथ कलिंगदेशके राजाका नाश हो जाता है और मंगल व सुभिक्ष होता है ॥ ६९ ॥ अग्रहा-

कौशलकान् सपुण्ड्रान् मृगांश्च हन्यादपरान्तकांश्च । ये सोमपास्तांश्च निहन्ति सौम्ये सुवृष्टिकृत् क्षेमसुभिक्षकृच्च ॥ ७० ॥ पौषे द्विजक्षत्रजनोपरोधः ससैन्धवाख्याः कुकुरा विदेहाः । ध्वंसं व्रजन्त्यत्र च मन्दवृष्टिं भयं च विद्यादसुभिक्षयुक्तम् ॥ ७१ ॥ माघे तु मातृपितृभक्तवसिष्ठगोत्रान् स्वाध्यायधर्मनिरतान् करिणस्तुरङ्गान् । वङ्गाङ्गकाशिमनुजांश्च दुनोति राहुर्वृष्टिं च कर्षकजनानुमतां करोति ॥ ७२ ॥ पीडाकरं फाल्गुनमासि पर्व वङ्गाश्मकावन्त्यमेकलानाम् । नृत्तज्ञसस्यप्रवराङ्गनानां धनुष्करक्षत्रतपस्विनां च ॥ ७३ ॥ चैत्रे तु चित्रकरलेखकगेयसक्तान् रूपोपजीविनिगमज्ञहिरण्यपण्यान् । पौण्ड्रौड्रकैकयजनानथ चाश्मकांश्च तापः स्पृशत्यमरपोऽत्र विचित्रवर्षी ॥ ७४ ॥ वैशाखमासि ग्रहणे विनाशमायान्ति कार्पासतिलाः समुद्गाः । इक्ष्वाकुयौधेयशकाः कलिङ्गाः सोपद्रवाः किन्तु सुभिक्षमस्मिन् ॥ ७५ ॥ ज्येष्ठे नरेन्द्रद्विजराजपत्न्यः सस्यानि

षणमहीनेमें ग्रहण होवे तो काश्मीर, कोशल, पुण्ड्र आदि देश, पश्चिम और दक्षिणदेशके मृग और समस्त सोम पीनेवालोंका नाश हो जाता है और अच्छी वर्षा, मंगल और सुभिक्षभी होता है ॥ ७० ॥ पौष मासमें ग्रहण होय तो ब्राह्मण और क्षत्रियोंमें उपद्रव हो, सैन्धव, कुकुर और विदेहदेशके मनुष्योंका ध्वंस होता है और अकाल पडता है ॥ ७१ ॥ माघमासमें ग्रहण होवे तो वसिष्ठगोत्रमें उत्पन्न हुए मातापिताकी भक्ति करनेवाले लोग, स्वाध्याय और अपने धर्म कर्मके करनेवाले लोग, बहुतही ऊंचे हाथी और बंगाल, अंग और काशी आदि देशोंमें उत्पन्न हुए मनुष्योंको दुःख होता है, परन्तु वर्षा किसानोंकी मनमानी होती है ॥७२॥ फाल्गुनमासमें ग्रहण होवे तो बंगाल, अश्मक, अवन्ती और मेकलादि देशोंके लोगोंको पीडा होती है, नाचनेवाली, उत्तम धान्य तथा उत्तम स्त्री, धनुषधारी क्षत्री और तपस्वियोंको पीडा होती है ॥ ७३ ॥ चैत्रमासमें ग्रहण होवे तो चित्रकार (मुसौविर), लेखक, गानेमें आसक्त, रूपोपजीवी (वेश्यादि) और निगम (शास्त्र) को जाननेवाले पुरुष, सुवर्णादि व्यापारके द्रव्य और पौण्ड्र, औड्र, अश्मक व काश्मीरादि देशके आदमी अत्यन्त दुःखी होते हैं, वर्षा अच्छी होती है ॥ ७४ ॥ जो वैशाखमासमें ग्रहण होवे तो कपास, तिल [illegible] नाश होता है, इक्ष्वाकु, यौधेय, शक और कलिङ्ग [illegible] उपद्रव [illegible] परन्तु इसमें सुभिक्ष होता है ॥ ७५ ॥ ज्येष्ठमासमें ग्रहण होवे तो रानी, [illegible] वर्षा, [illegible]

वृद्धिश्च महाणजाश्च । मध्वंसमायान्ति नराश्च सौम्याः साल्वैः समेताश्च निषाद-
संघाः ७६ ॥ आषाढपर्वण्युदपानवप्रनदीप्रवाहान् फलमूलवार्त्तान् । गान्धार-
काश्मीरपुलिन्दचीनान् हतान् वदेन्मण्डलवर्षमस्मिन् ॥ ७७ ॥ काश्मीरान्
सपुलिन्दचीनयवनान् हन्यात् कुरुक्षेत्रकान् गान्धारानपि मध्यदेशसहितान्
दृष्टो ग्रहः श्रावणे । काम्बोजैकशफांश्च शारदमपि त्यक्त्वा यथोक्तानिमान्
अन्यत्र प्रचुरान्नहृष्टमनुजैर्धात्रीं करोत्यावृताम् ॥ ७८ ॥ कलिङ्गवङ्गान्
मगधान् सुराष्ट्रान् म्लेच्छान् सुवीरान् दरदाश्मकांश्च । स्त्रीणां च गर्भानसुरो
निहन्ति सुभिक्षकृद्भाद्रपदाभ्युपेतः ॥ ७९ ॥ काम्बोजचीनयवनान् सह शल्य-
हृद्भिर्बाह्लीकसिन्धुतटवासिजनांश्च हन्यात् । आनर्तपौण्ड्रभिषजश्च तथा किरा-
तान् दृष्टोऽसुरोऽश्वयुजि भूरिसुभिक्षकृच्च ॥ ८० ॥ हनुकुक्षिपायुभेदा द्विर्द्वि-
स्संछर्दनं च जरणं च । मध्यान्तयोश्च विदरणमिति दश शशिसूर्य्ययोर्मोक्षाः
॥ ८१ ॥ आग्नेय्यामपगमनं दक्षिणहनुभेदसंज्ञितं शशिनः । सस्योपमर्दो मुख-

---

[illegible], [illegible], [illegible] रहनेवाले मनुष्य और निषाद लोगोंका
[illegible] है ॥ ७६ ॥ जो आषाढ मासमें ग्रहण होवे तो कूआ, बावी, नदीप्रवाह,
[illegible] पुरुष अर्थात् माली, बागवान और गान्धार,
[illegible] देशोंका नाश हो जाता है और देवराज इन्द्र मण्डला
[illegible] है ॥ ७७ ॥ श्रावण मासमें ग्रहण होवे तो काश्मीर, पुलिन्द, चीन
[illegible] नाश होता है और काम्बोज, एकशफ, शारद
[illegible] देशोंके लोग बहुतसे अन्नको प्राप्त होवेंगे।
[illegible] ॥ ७८ ॥ भाद्रपद मासमें ग्रहण होवे तो कलिङ्ग, बंगा
[illegible], [illegible], [illegible] और [illegible] देशोंका नाश होता है, स्त्रियोंके गर्भ
[illegible] है ॥ ७९ ॥ आश्विन मासमें ग्रहण होवे
[illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] और सिन्धुतटके [illegible]
[illegible] रहनेवाले वैद्य और किरात [illegible]
[illegible] है ॥ ८० ॥ चन्द्र और सूर्यके ग्रहणमें मो
[illegible], [illegible] ([illegible]) [illegible] (३-४) [illegible]
[illegible] (७) [illegible] (८) [illegible] (९) [illegible]
[illegible] ॥ ८१ ॥ [illegible]

स्य नृपपीडा स्यात् सुवृष्टिश्च ॥ ८२ ॥ पूर्वोत्तरेण वामो हनुभेदो नृपकु
भयदायी। मुखरोगं शस्त्रभयं तस्मिन् विद्यात् सुभिक्षं च ॥ ८३ ॥ दक्षि
क्षिभेदो दक्षिणपार्श्वेन यदि भवेन्मोक्षः। पीडा नृपपुत्राणामभिये
दक्षिणा रिपवः ॥८४॥ वामस्तु कुक्षिभेदो यद्युत्तरमार्गसंस्थितो राहुः। स्
गर्भविपत्तिः सस्यानि च तत्र मध्यानि ॥ ८५ ॥ नैर्ऋतवायव्यस्थौ दक्षिण
तु पायुभेदौ द्वौ। गुह्यरुगल्पा वृष्टिर्द्वयोस्तु राज्ञीक्षयो वामे ॥ ८६ ॥
भग्रहणं कृत्वा प्रागेव चापसर्पेत। सञ्छर्दनमिति तत् क्षेमसस्यहार्दिप्रदं
॥ ८७ ॥ प्राग्ग्रहणं यस्मिन् पश्चादपसर्पणं तु तज्जरणम्। क्षुच्छस्त्र
द्विग्नाः न शरणमुपयान्ति तत्र जनाः ॥ ८८ ॥ मध्ये यदि प्रकाशः
तन्मध्यविदरणं नाम। अन्तःकोपकरं स्यात् सुभिक्षदं नातिवृष्टिकरम् ॥८
पर्य्यन्तेषु विमलता बहुलं मध्ये तमोऽन्तरणाख्ये। मध्याख्यदेशनाशः श

उसको दक्षिणहनुभेद नामक मोक्ष कहते हैं; इससे धान्यनाश, मुखरोग, राज
और अच्छी वर्षा होती है ॥ ८२ ॥ पूर्वोत्तरकोणसे मोक्ष होनेपर वाम हनुभेद
होता है; इससे राजा और राजकुमारोंको भय, मुखरोग, शस्त्रभय और सुभिक्ष
है ॥ ८३ ॥ दक्षिण ओरसे मोक्ष होनेपर दक्षिणकुक्षिभेद नामक मोक्ष होत
जिससे राजकुमारोंको पीडा और दक्षिणके शत्रुओंमें झगडा होता है ॥ ८४ ॥
राहु उत्तरपक्षमें स्थापित होवे तो वामकुक्षिभेद मोक्ष होता है, इससे स्त्रियोंके
विपत्ति और धान्य मध्यम होता है ॥ ८५ ॥ नैर्ऋत्य कोणसे मोक्ष होवे तो द
दक्षिणवायुभेद कहते हैं; यह दोनों प्रकारकी मोक्ष साधारण गुह्यपीडा और
करती है और वामवायुभेदसे रानीकी क्षय होती है ॥८६॥ राहु यदि प्राग्र मं
पूर्वभागसे ग्रास करना आरम्भ करके पूर्व दिशाकोही चला आवे तो उसको सं
नामक मोक्ष कहते हैं; इससे संसारका मंगल और धान्यसुख होता है ॥ ८
जिसमें पूर्वदिशासे ग्रहणका आरंभ होकर पश्चिम देशोंमें मोक्ष होवे उसको
नामक मोक्ष कहते हैं; जरण नामक मोक्ष होनेसे मनुष्य क्षुधा और शस्त्र
घबडायकर न जाने कहां जाकर शरण प्राप्त होते हैं ? ॥ ८८ ॥ मध्यस्थल
पहले प्रकाशित होनेपर उसको मध्यविदारण नामक मोक्ष कहते हैं; यह प्राणि
मानसिक कोप करानेवाली और सुभिक्षदायक होनेपरभी श्रेष्ठ वर्षा इसमें नहीं
राज्यमें खलबलाहट मचती है ॥ ८९ ॥ यदि चन्द्रग्रहणमें बिंबके चारों

सस्यक्षयश्चास्मिन् ॥ १० ॥ एते सर्वे मोक्षा वक्तव्या भास्करेऽपि किन्त्वत्र । पूर्वादिक् शशिनि यथा तथा रवौ पश्चिमा कल्प्या ॥ ११ ॥ मुक्ते सप्ताहान्तः पांशुनिपातोऽन्नसङ्क्षयं कुरुते । नीहारो रोगभयं भूकम्पः प्रवरनृपमृत्युम् ॥१२॥ उल्का मन्त्रिविनाशं नानावर्णा घनाश्च भयमतुलम् । स्तनितं गर्भविनाशं विद्युन्नृपदंष्ट्रिशरीपीडाम् ॥ १३ ॥ परिवेषो रुक्पीडां दिग्दाहो नृपभयं च साग्निभयम् । रूक्षो वायुः प्रबलश्चौरसमुत्थं भयं धत्ते ॥१४॥ निर्घातः सुरचापं दण्डश्च क्षुद्भयं सपरचक्रम् । ग्रहयुद्धं नृपयुद्धं केतुश्च तदेव संदृष्टः ॥ १५ ॥ अविकृतसलिलनिपाते सप्ताहान्तः सुभिक्षमादेश्यम् । यच्चाशुभं ग्रहणजं तत् सर्वं नाशमुपयाति ॥ १६ ॥ सोमग्रहे निवृत्ते पक्षान्ते यदि भवेद् ग्रहोऽर्कस्य । तत्रानयः प्रजानां दम्पत्योर्वैरमन्योन्यम् ॥ १७ ॥ अर्कग्रहात्तु शशिनो ग्रहणं यदि दृश्यते ततो विप्राः । नैकक्रतुफलभाजो भवन्ति मुदिताः प्रजाश्चैव ॥१८॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां राहुचारः पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

है; इससे मध्यदेश और शरदऋतुकी खेतीका नाश होता है ॥ १० ॥ यह सम्पूर्ण चन्द्रग्रहणकी मोक्ष कही है, इन सबके विषयको सूर्यग्रहणमेंभी कल्पना करना उचित है परन्तु जिस प्रकार चन्द्रग्रहणमें जहां पूर्वदिशा कही, उस जगहपर सूर्यग्रहणमें पश्चिमदिशाका लगाना ठीक है ॥ ११ ॥ मोक्ष होनेके उपरान्त यदि सात दिनके भीतर धूरि बर्षे तो अन्नका नाश हो, कुहर हो जाय तौ रोगका भय होवे, भूकंप होनेसे श्रेष्ठ राजाकी मृत्यु होती है, उल्कापात मंत्रीका नाश करता है और वर्णवर्णके मेघ संध्याकालके विना दिखाई दें तौ महाभय होता है, मेघगर्जन गर्भनाशका कारण होता है, विद्युत्पात राजा, डाढवाले सर्प शूकर आदि लोगोंको पीडादायक होता है, परिवेश होनेसे रोगकी पीडा होती है, दिग्दाह होनेसे राजभय और अग्निभय होता है, अतिप्रचण्ड तथा रूक्ष पवनके चलनेसे चोरभय होता है; निर्घात शब्द होने और इन्द्रधनुषके दिखाई देने तथा पवनका संघात होनेसे दुर्भिक्ष और दूसरे राजाकी सेनासे भय होता है, ग्रहयुद्ध होनेसे राजाओंका परस्पर युद्ध होता है. केतुके दर्शनसेभी युद्ध होता है, ग्रहणमोक्ष होनेके पश्चात् सात दिनके भीतर यदि विना विकारके भलीभांति वर्षा हो जाय तौ सुभिक्ष होता है और ग्रहणका सम्पूर्ण अशुभफलभी नाशको प्राप्त हो जाता है ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ ॥ १६ ॥ चन्द्रग्रहणके पीछे यदि पहुत दिनके भीतर सूर्यग्रहण हो जाय तो प्रजामें इनय होता है और दांपत्योंमें परस्पर वैरभाव होता है ॥ १७ ॥ और यदि सूर्य-

अथ षष्ठोऽध्यायः ।

भौमचार.

यद्युदयर्क्षाद्वक्रं करोति नवमाष्टसप्तमर्क्षेषु । तद्वक्रमुष्णमुदये पीडाकरमग्निवार्त्तानाम् ॥ १ ॥ द्वादशदशमैकादशनक्षत्राद्वक्रिते कुजेऽश्रुमुखम् । दूषयति सानुदये करोति रोगानवृष्टिञ्च ॥ २ ॥ व्यालं त्रयोदशार्क्षाच्चतुर्दशाद्वा विपच्यतेऽस्तमये । दंष्ट्रिव्यालमृगेभ्यः करोति पीडां सुभिक्षं च ॥ ३ ॥ रुधिराननमिति वक्रं पञ्चदशात् षोडशाच्च विनिवृत्ते । तत्कालं मुखरोगं सभयं च सुभिक्षमावहति ॥ ४ ॥ असिमुसलं सप्तदशादष्टादशतोऽपि वा तदनुवक्रे । दस्युगणेभ्यः पीडां करोत्यवृष्टिं सशस्त्रभयाम् ॥ ५ ॥ भाग्यार्यमोदितो यदि निवर्तते

ग्रहणसे एक पक्ष परे चंद्रग्रहण होय तो ब्राह्मणगण अनेक यज्ञोंका फल पावें और वे बहुत यज्ञोंको करते हैं, प्रजा हर्षित होती है ॥ ९८ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

जिस नक्षत्रमें मंगलग्रहका उदय होता है, उस उदय नक्षत्रके सप्तम, अष्टम वा नवम नक्षत्रमें मंगलग्रह यदि वक्री हो तो उस वक्रको 'उष्ण' कहते हैं; इस उष्ण वक्रके उदयकालमें अग्निसे आजीविका करनेवाले लोगोंको पीडा होती है ॥ १ ॥ उदयनक्षत्रके दशम, एकादश अथवा नक्षत्रसे मंगल यदि वक्री होवे तो उस वक्रको 'अश्रुमुख' वक्र कहते हैं; इसके उदय होनेके समयमें समस्त रस दूषित हो जाते हैं और रोग व अनावृष्टि होती है ॥ २ ॥ ऐसेही जिस नक्षत्रमें मंगल अस्त हो जाय, उस अस्त होते हुए नक्षत्रके तेरहवें या चौदहवें नक्षत्रमें यदि मंगलका विपाक अर्थात् वक्र हो तो इस वक्रका नाम 'व्याल' है; इसमें दंष्ट्री, व्याल और मृगसे पीडा होती और सुभिक्ष होता है ॥ ३ ॥ अस्तमन नक्षत्रके पंचदश या षोडश नक्षत्रसे मंगलका वक्र हो तो 'रुधिरानन' नामक वक्र होता है; उस समयमें लोगोंके मुखरोग और भय होता है और सुभिक्ष हुआ करता है ॥ ४ ॥ अस्त होते हुए नक्षत्रके सत्रहवें या अठारहवें नक्षत्रसे मंगलका अनुवक्र हो तो 'असिमुसल' नामक वक्र होता है इससे चोरभय, शस्त्रभय और अनावृष्टि होती है ॥ ५ ॥ यदि मंगलग्रह पूर्वाफाल्गुनी वा उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें उदित होकर

भयप्रदायी चरन् जगतः ॥ ७ ॥ प्राकृतविमिश्रसंक्षिप्ततीक्ष्णयोगान्तघोरा
पाख्याः । सप्त पराशरतन्त्रे नक्षत्रैः कीर्त्तिता गतयः ॥ ८ ॥ प्राकृतसंज्ञा वाय
व्ययाग्न्यपैतामहानि बहुलाश्च । मिश्रा गतिः प्रतिष्ठा शशिशिवपितृभुजग
वानि ॥ ९ ॥ संक्षिप्तायां पुष्यः पुनर्वसुः फल्गुनीद्वयं चेति । तीक्ष्णायां भद्र
दाद्वयं सशाक्राश्वयुक् पौष्णम् ॥ १० ॥ योगान्तिकेति मूलं द्वे चाषाढे गति
सुतस्येन्दोः । घोरा श्रवणस्त्वाष्ट्रं वसुदैवं वारुणं चैव ॥ ११ ॥ पापाख्
सावित्रं मैत्रं शक्राग्निदैवतं चेति । उदयप्रवासदिवसैः स एव गतिलक्षणं प्राह
॥ १२ ॥ चत्वारिंशत्त्रिंशद् द्विसमेता विंशतिर्द्विनवकं च । नव मासार्द्धं द
चैकसंयुताः प्राकृताद्यानाम् ॥ १३ ॥ प्राकृतगत्यामारोग्यवृष्टिसस्यप्रवृद्ध
क्षेमम् । संक्षिप्तमिश्रयोर्मिश्रमेतदन्यासु विपरीतम् ॥ १४ ॥ ऋज्व्यतिवक्र

इन तीन नक्षत्रोंमेंसे किसी नक्षत्रको भेद कर जो बुधग्रह विचरण करे तौ संसार
क्षुधा, शस्त्र, तस्कर, रोग और भय होता है ॥७ ॥ पराशर मुनिके रचे हुए ज्योति
षिय तंत्रशास्त्रमें नक्षत्रके द्वारा बुधकी सात प्रकारकी गति कही है, यथा–१ प्राकृ
२ विमिश्र, ३ संक्षिप्त, ४ तीक्ष्ण, ५ योगान्त, ६ घोर, ७ पाप ॥ ८ ॥ स्वाति
भरणी, रोहिणी और कृत्तिका नक्षत्रमें बुध होय तौ इस गतिको प्राकृत कहते
मृगशिरा, आर्द्रा, मघा और आश्लेषा नक्षत्रीय बुधकी गतिको मिश्रा कहते हैं ॥९
पुष्य, पुनर्वसु, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनीमें संक्षिप्ता और पूर्वाभाद्रप
उत्तराभाद्रपदा, ज्येष्ठा, अश्विनी और रेवतीमें बुधकी गतिको तीक्ष्णा कहते
॥ १० ॥ मूल, पूर्वाषाढा व उत्तराषाढा नक्षत्रमें जो बुधकी गति होती है, उस
योगान्तिका कहते हैं; और श्रवण, चित्रा, धनिष्ठा और शतभिषामें जो गति होती
उसको घोरा कहते हैं ॥ ११ ॥ जब बुध हस्त, अनुराधा या ज्येष्ठा नक्षत्र
रहता है, तब उसकी गतिका नाम पापा है; इस प्रकार पराशरमुनिने उदय
अस्तदिवसके द्वारा बुधकी गति व लक्षणोंका निरूपण किया है ॥ १२ ॥ प्रा
नगति ४० दिन, मिश्रा ३० दिन, संक्षिप्ता २२ दिन, तीक्ष्णा १८ दिन, योगा
९ दिन, घोरा १५ दिन और पापा गति ११ दिनतक रहती है ॥ १३ ॥ बुध
प्राकृत गतिमें आरोग्य, वृष्टि, धान्यकी वृद्धि और मंगल होता है, संक्षिप्ता व
मिश्रा गतिमें मिश्रफल अर्थात् न बहुत अच्छा न बहुत बुरा फल होता है व
दूसरी गतियोंमें विपरीत फल होता है ॥ १४ ॥ देवलके मतसे बुधकी गति च

वक्रा विकला च मतेन देवलस्यैताः । पञ्चचतुर्द्व्येकाहा ऋज्व्यादीनां षडभ्यस्ताः ॥ १५ ॥ ऋज्वी हिता प्रजानामतिवक्रार्थं गतिर्विनाशयति । शस्त्रभयदा च वक्रा विकला भयरोगसञ्जननी ॥ १६ ॥ पौषाषाढश्रावणवैशाखेष्विन्दुजः समाघेषु । दृष्टो भयाय जगतः शुभफलकृत् प्रोषितस्तेषु ॥१७॥ कार्त्तिकेऽश्वयुजि वा यदि मासे दृश्यते तनुभवः शिशिरांशोः । शस्त्रचौरहुतभुग्गदतोयक्षुद्भयानि च तदा विदधाति ॥ १८ ॥ रुद्धानि सौम्येऽस्तमिते पुराणि यान्युद्गते तान्युपयांति मोक्षम् । अन्ये तु पश्चादुदिते वदन्ति लाभः पुराणां भवतीति तज्ज्ञाः ॥ १९ ॥ हेमकान्तिरथवा शुकवर्णः सस्यकेन मणिना सदृशो वा । स्निग्धमूर्तिरलघुश्च हिताय व्यत्यये न शुभकृच्छशिपुत्रः ॥ २० ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां बुधचारः सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

प्रकारकी है; यथा-ऋज्वी, अतिवक्रा, वक्रा और विकला; इन सब गतियोंका यथाक्रमसे विद्यमान काल ३० दिन, २४ दिन, १२ दिन और केवल ६ दिनतक है ॥ १५ ॥ ऋज्वीगति प्रजाओंको हितकारी है; अतिवक्रा गति धनका नाश करनेवाली है, वक्रागतिमें शस्त्रभय और विकलामें भय व रोग होता है ॥ १६ ॥ पौष, आषाढ, श्रावण, वैशाख वा माघमासमें जो बुध ग्रह दिखाई दे तो संसारको भय हो, यदि इस समयमें अस्त होवे तो शुभ होता है ॥ १७ ॥ जो चंद्रमाका पुत्र बुध कार्तिक या अश्विन मासमें दिखाई दे तो शस्त्र, चोर, अग्नि, रोग, जल और क्षुधाका भय होता है ॥ १८ ॥ बुधके चारमें भलीभांति सब कुछ जाने हुए पंडित लोग कहते हैं कि, बुधके अस्तकालमें जो नगर रुक जाते हैं; फिर बुधके उदय होनेके समयमें वह सब नगर छूट जाते हैं. कोई कोई कहते हैं कि, पश्चिम दिशामें बुध उदय होय तो उस ओरके सब पुर लाभवाले होते हैं ॥ १९ ॥ जब कि चन्द्रमाके पुत्र बुधका रंग सुवर्णकी समान या तोतेपक्षीकी समान अथवा सस्यकमणिकी समान होय और जब बुध निर्मल मूर्त्ति और बडा होय तब सबकाही मंगल होता है; ऐसा न होनेपर अशुभही होता है ॥ २० ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अथाष्टमोऽध्यायः ।

बृहस्पतिचार.

नक्षत्रेण सहोदयमुपगच्छति येन देवपतिमन्त्री । तत्संज्ञं वक्तव्यं वर्षं मास-
क्रमेणैव ॥ १ ॥ वर्षाणि कार्त्तिकादीन्याग्नेयाद्भद्वयानुयोगीनि । क्रमशस्त्रिभं तु
पञ्चममुपान्त्यमन्त्यं च यद्वर्षम् ॥ २ ॥ शकटानलोपजीविकगोपीडा व्याधिश-
स्त्रकोपश्च । वृद्धिस्तु रक्तपीतककुसुमानां कार्त्तिके वर्षे ॥ ३ ॥ सौम्येऽब्देऽना-
वृष्टिर्मृगाखुशलभाण्डजैश्च सस्यवधः । व्याधिभयं मित्रैरपि भूपानां जायते वैरम्
॥ ४ ॥ शुभकृज्जगतः पौषो निवृत्तवैराः परस्परं क्षितिपाः । द्वित्रिगुणो धान्या-
र्घः पौष्टिककर्मप्रसिद्धिश्च ॥ ५ ॥ पितृपूजापरिवृद्धिर्माघे हार्दिश्च सर्वभूतानाम्
आरोग्यवृष्टिधान्यार्घसम्पदो मित्रलाभश्च ॥ ६ ॥ फाल्गुनवर्षे विद्यात् क्वचि-

---

इन्द्रके मंत्री अर्थात् बृहस्पतिजी जिस मासके जिस नक्षत्रमें उदय होवें,
नक्षत्रके अनुसारही महीनेके नामकी नांई वह वर्ष कहलाता है ॥ १
बारह मास होनेसे इस प्रकार कुल बारह वर्ष होंगे, तिनमें कृत्तिका नक्षत्रसे आ-
रके दो दो नक्षत्रोंमें कार्तिकादि वर्ष होगा. परन्तु इन बारह वर्षोंके मध्यमें प-
एकादश और द्वादश वर्ष तीन तीन नक्षत्रोंका होगा, जैसे कृत्तिका या रो-
नक्षत्रमें बृहस्पतिका उदय होनेपर कार्तिक नामक वर्ष होगा ॥ २ ॥ (१) का-
नामक वर्ष होवे तो शकटद्वारा आजीविका करनेवाले बनजारे इत्यादि, अ-
[illegible] करनेवाले लोगोंको और गायबैलोंको पीडा होती है, लोगोंके
[illegible] और शस्त्रका कोप होता है, लाल और पीले रंगके फूल बढते हैं ॥
(२) सौम्य नामक वर्ष होय तो अनावृष्टि होती है और मृग, चूहे, शलभ (टी-
ड्डी) पक्षी आदि अंडज जन्तुओंसे नाजकी हानि होती है, मनुष्योंको व्या-
होता है और मित्रोंके संगभी राजाओंकी शत्रुता हो जाती है ॥ ४ ॥ (३)
नामक वर्षमें जगत्का शुभ होता है, राजा लोग आपसका वैरभाव छोड दे-
धान्यका मूल्य द्विगुना वा तिगुना हो जाता है और पौष्टिक कार्यकी वृद्धि
है ॥ ५ ॥ (४) माघ नामक वर्षमें पितृलोगोंकी पूजा बढती है, सर्व प्राणि-
हित होता है, आरोग्य, वृष्टि, धान्यका मोल थोडा, श्रेष्ठ सम्पत्ति और मि-
होते हैं ॥ ६ ॥ (५) फाल्गुन नामवाले वर्षमें किसी स्थानके बीच मंगल
है [illegible] है, स्त्रियोंका दुर्भाग्य, चोरोंकी प्रबलता और राजाओंमें

क्वचित् क्षेमवृद्धिसस्यानि । दौर्भाग्यं प्रमदानां प्रबलाश्चौरा नृपाश्चोग्राः ॥ ७ ॥
त्रे मन्दा वृष्टिः प्रियमन्नं क्षेममवनिपा मृदवः । वृद्धिस्तु कोशधान्यस्य भवति
डा च रूपवताम् ॥ ८ ॥ वैशाखे धर्मपरा विगतभयाः प्रमुदिताः प्रजाः
नृपाः । यज्ञक्रियाप्रवृत्तिर्निष्पत्तिः सर्वसस्यानाम् ॥ ९ ॥ ज्येष्ठे जातिकुलध-
श्रेणीश्रेष्ठा नृपाः सधर्मज्ञाः । पीड्यन्ते धान्यानि च हित्वा कंगुं शमीजा-
तम् ॥ १० ॥ आषाढे जायन्ते सस्यानि क्वचिदवृष्टिरन्यत्र । योगक्षेमं मध्यं
व्यग्राश्च भवन्ति भूपालाः ॥ ११ ॥ श्रावणवर्षे क्षेमं सम्यक् सस्यानि पाकमु-
पान्ति । क्षुद्रा ये पाषण्डाः पीड्यन्ते ये च तद्भक्ताः ॥ १२ ॥ भाद्रपदे वल्लीजं
निष्पत्तिं याति पूर्वसस्यं च । न भवत्यपरं सस्यं क्वचित् सुभिक्षं क्वचिच्च
भयम् ॥ १३ ॥ आश्वयुजेऽब्देऽजस्रं पतति जलं प्रमुदिताः प्रजाः क्षेमम् ।
प्राणचयः प्राणभृतां सर्वेषामन्नबाहुल्यम् ॥ १४ ॥ उदगारोग्यसुभिक्षक्षेमकरो
जीवश्चरन् भानाम् । याम्ये तद्विपरीतो मध्येन तु मध्यफलदायी ॥ १५ ॥

ती है ॥ ७ ॥ (६) चैत्र नामक वर्षमें साधारण वृष्टि होती है, प्रिय अन्नका
लाभ होता है, राजाओंमें मीठापन, कोष और धान्यकी वृद्धि व रूपवान् आदमि-
योंको पीडा होती है ॥ ८ ॥ (७) वैशाख नामक वर्षमें राजा प्रजा दोनोंही
धर्ममें तत्पर रहते हैं, भयशून्य और हर्षित रहते हैं, यज्ञ करते हैं और समस्त
धान्य भली भांतिसे होते हैं ॥ ९ ॥ (८) ज्येष्ठ नामक वर्षमें राजालोग धर्मज्ञ
पुरुषोंके साथ जाति, कुल, धन और श्रेणीमें श्रेष्ठ मानकर गिने जाते हैं. और
कंगनी या शमीजातिके सिवाय सब धान्य पीडित होते हैं ॥ १० ॥ (९) आषाढ
नामक वर्षमें समस्त धान्य उपजते हैं. परन्तु किसी स्थानमें अनावृष्टि होती है,
योग क्षेम (अप्राप्त वस्तुका लाभ और लब्धकी रक्षा) मध्यम और राजालोग
अत्यन्त व्यग्र होते हैं ॥ ११ ॥ (१०) श्रावण नामक वर्षमें धान्य आनन्दसे
पक जाते हैं, परन्तु साधारण पाखण्डी आदमी और उनके भक्त मनुष्य अत्यन्त
पीडित होते हैं ॥ १२ ॥ (११) भाद्रपद नामक वर्षमें लताजातीय समस्त पूर्व
धान्य भलीभांति पक जाते हैं. और धान्य नहीं होते, और कहीं सुभिक्ष होता है
और कहीं भय होता है ॥ १३ ॥ (१२) आश्वयुज अर्थात् आश्विन नामक
वर्षमें अत्यन्त जल गिरता है, प्रजा हर्षित होती है, प्राणियोंके प्राण सुखमें
रहते हैं और सबके पास बहुतसा अन्न रहता है ॥ १४ ॥ जब बृहस्पति
सब नक्षत्रोंके उत्तरमें घूमता है तब सबके लिये आरोग्य, सुवृष्टि और

विचरन् मध्यमिष्टस्ततसार्धं वत्सरेण मध्यफलः । सस्यानां विध्वंसी विचरेद-
धिकं यदि कदाचित् ॥ १६ ॥ अनलभयमनलवर्णे व्याधिः पीते रणागमः
श्यामे । हरिते च तस्करेभ्यः पीडा रक्ते तु शस्त्रभयम् ॥ १७ ॥ धूमाभेऽनावृ-
ष्टिस्त्रिदशगुरौ नृपवधो दिवा दृष्टे । विपुलेऽमले सुतारे रात्रौ दृष्टे प्रजाः स्वस्थाः
॥ १८ ॥ रोहिण्योऽनलभं च वत्सरतनुर्नाभिस्त्वषाढाद्वयं सार्पं हृत्पितृदैवतं
च कुसुमं शुद्धैः शुभं तैः फलम् । देहे क्रूरनिपीडितेऽग्न्यनिलजं नाभ्यां भयं
क्षुत्कृतं पुष्पे मूलफलक्षयोऽथ हृदये सस्यस्य नाशो ध्रुवम् ॥ १९ ॥ गतानि
वर्षाणि शकेन्द्रकालाद्धतानि रुद्रैर्गुणयेच्चतुर्भिः । नवाष्टपञ्चाष्टयुतानि कृत्वा
विभाजयेच्छून्यशरागरामैः ॥ २० ॥ फलेन युक्तं शकभूपकालं संशोध्य षष्ट्या
विषयैर्विभज्य । युगानि नारायणपूर्वकाणि लब्धानि शेषाः क्रमशः समाः

मंगल होता है, दक्षिण दिशामें बृहस्पति होय तौ कहे हुए फलसे विपरीत
फल होता है, मध्यभागमें विचरण करता होय तौ मध्यम फल हुआ करता
है ॥ १५ ॥ यदि बृहस्पति एक वर्षमें दो नक्षत्रोंके मध्य विचरण करे तौ
शुभप्रद है; ढाई नक्षत्रमें विचरण करे तौ मध्यम फल होता है और यदि
संवत्सरमें तिससे अधिक नक्षत्रमें कभी विचरण करे तौ धान्यका नाश होता है
॥ १६ ॥ जो बृहस्पतिका रंग अग्निकी समान होय तौ अग्निका भय होता है, पीत-
वर्ण होय तो व्याधि, श्यामवर्ण होय तौ युद्ध होयगा, हरा होनेसे चोरोंके द्वारा
पीडा होयगी, लाल होनेसे शस्त्रभय और धूमका रंग होनेसे अनावृष्टि होती है,
दिनमें बृहस्पति दिखाई देय तौ मनुष्योंका नाश होता है, जो सुन्दर तारेकी
समान बडा और निर्म्मल रात्रिकालमें दिखाई देय तौ प्रजाको सुख होता है
॥ १७ ॥ १८ ॥ कृत्तिका और रोहिणी नक्षत्र वर्षकी देह है, पूर्वाषाढा और उत्त-
राषाढा और नक्षत्र वर्षकी नाभि है, आश्लेषा हृदय और मघा नक्षत्र वर्षका कुसुम
है; यह शुद्ध होवें तौ शुभ फल होता है. (बृहस्पतिके अवस्थाकालमें) वत्सरका
देहनक्षत्र यदि पापग्रहसे पीडित होवे तौ अग्नि और पवनसे भय होता है, नाभि-
नक्षत्र पीडित होय तौ क्षुधाका भय होता है, पुष्पनक्षत्रमें मूल अर्थात् मूली आदि
और फलोंका क्षय होता है, और हृदयनक्षत्र पापग्रहसे पीडित होय तौ निश्चयही
धान्यका नाश होता है ॥ १९ ॥ शकादित्य (शालिवाहन) राजाके समयसे
जितने वर्ष बीते हैं, उनको दो स्थानोंमें रखकर एक स्थानके अंकोंको ११ संख्यासे
गुणा करे, तदोपरान्त इस गुणनफलको फिर चार संख्यासे गुणा करे, फिर ८६

चतुर्भिर्वसुदेवताद्यान्युडूनि शेषांशकपूर्वमन्त्यम् ॥ २२ ॥ विष्णुः सुरेज्यो बल-भिद्धुताशस्त्वष्टोत्तरप्रोष्ठपदाधिपश्च । क्रमाद्युगेशाः पितृविश्वसोमाः शक्रानला-ख्याश्विभगाः प्रदिष्टाः ॥ २३ ॥ संवत्सरोऽग्निः परिवत्सरोऽर्क इदादिकः शीत-मयूखमाली । प्रजापतिश्चाप्यनुवत्सरः स्यादिद्वत्सरः शैलसुतापतिश्च ॥ २४ ॥ वृष्टिः समाद्ये प्रमुखे द्वितीये प्रभूततोया कथिता तृतीये । पश्चाज्जलं मुञ्चति

मानना जानो, परन्तु गणनाके समय २४ वें नक्षत्रसे गणना करे * अर्थात् १ लब्ध होनेसे समझना पडेगा कि २५ वां नक्षत्र अर्थात् पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्र है; २ होवे तो २६ वां उत्तराभाद्रपदा इत्यादि ॥ २२ ॥ प्रभवादि षष्टि संवत्सरमें सब समेत १२ युग होते हैं; बस पांच २ वर्षका एक एक युग होता है । इस द्वादश युगोंके यथाक्रमसे अधिपति,—१ विष्णु, २ सुरेज्य, ३ बलभित्, ४ अग्नि, ५ त्वष्टा, ६ उत्तरप्रोष्ठपद, ७ पितृगण, ८ विश्व, ९ सोम, १० शक्रानल, ११ अश्वि और १२ भग। इन युगाधिपतियोंके नामानुसारही इन युगोंका नाम होता है; यथा—नारायण, बृहस्पति, इन्द्र, अग्नि इत्यादि ॥ २३ ॥ यह युग सबके अन्तर्वर्ती पांच २ वर्षमें फिर पांच संज्ञान्तर्युक्त पांच वर्ष हैं + (यह साठ संवत्सरके अन्तर्गत नहीं है) उनके नामान्तर और उनके अधिपतियोंके नाम यथा;—१ संवत्सर, २ परिवत्सर, ३ इदावत्सर, ४ अनुवत्सर, ५ इद्वत्सर । अधिपति १ अग्नि; २ सूर्य, ३ चन्द्र, ४ प्रजापति, ५ महादेव ॥ २४ ॥ यह जो संवत्सरादि पांच वर्षका वर्णन किया

$$\bullet\ \frac{\text{षष्टचब्द} \times ९' \times (\text{षष्टचब्द} + १२)}{४} = \text{बृहस्पतिका भोग्यमान नक्षत्र ।}$$

क्रिया यथा–३६ । ६ । २२ । २१ । २१ । ३३ । बार्हस्पत्य षष्टचब्दादि ।

$$\frac{३६\times९+(३६\div१२)}{४} = ३६\times९=३२४ । ३६\div१२=३ । ३२४+३ । ३२७ । ३२७\div४=८१\tfrac{३}{४}$$

२७ नक्षत्रमें भचक्र होनेसे २७ ÷ ८१ अवशिष्ट ३ हैं बस जाना गया कि, इस समय बृहस्पति २४ वें नक्षत्रमें वर्त्तमान हैं और लब्ध ८१ होकर ३ बचे थे इस कारण २४ वें नक्षत्रके तीसरे पादमें उत्तीर्ण होकर चौथे चरणमें वर्त्तमान हैं. यह स्थूल है; कभी २ इसमें साधारण अन्तर लक्षित होगा. उसकी सूक्ष्मता पञ्चसिद्धान्तिकामें देखनी चाहिये. विस्तारभयसे यहां नहीं लिखा ॥

+ वराहमिहिरके मतसे युगारम्भसेही यह वत्सरारम्भ होता है. प्रसिद्ध स्मार्त रघुनन्दनभट्टाचार्यके मतसे वैशाखमासके प्रारम्भसेही यह वर्ष आरम्भ होता है. उनके मतसे इन वर्षोंमें तिलादिका दान करना चाहिये. " संवत्सरे तथा दानं तिलस्य तु महाफलम् । " इत्यादि मलमासतत्त्व बल्लालसेनप्रणीत दानसागर ग्रन्थकाभी यही मत है ॥

यच्चतुर्थं स्वल्पोदकं पञ्चममन्दमुक्तम् ॥ २५ ॥ चत्वारि मुख्यानि युगान्यथैषां विष्णिन्द्रजीवानलदैवतानि । चत्वारि मध्यानि च मध्यमानि चत्वारि चान्त्यान्यधमानि विद्यात् ॥२६॥ आद्यं धनिष्ठांशमभिप्रपन्नो माघे यदा यात्युदयं सुरेज्यः । षष्ट्यब्दपूर्वः प्रभवः स नाम्ना प्रवर्त्तते भूतहितस्तदाब्दः ॥ २७ ॥ क्वचित्त्ववृष्टिः पवनाग्निकोपः सन्तीतयः श्लेष्मकृताश्च रोगाः । संवत्सरेऽस्मिन् प्रभवे प्रवृत्ते न दुःखमाप्नोति जनस्तथापि ॥ २८ ॥ तस्माद्द्वितीयो विभवः प्रदिष्टः शुक्लस्तृतीयः परतः प्रमोदः । प्रजापतिश्चेति यथोत्तराणि शस्तानि वर्षाणि फलानि चैषाम् ॥ २९ ॥ निष्पन्नशालीक्षुयवादिसस्यां भयैर्विमुक्तामुपशान्तवैराम् । संहृष्टलोकां कलिदोषमुक्तां क्षत्रं तदा शास्ति च भूतधात्रीम् ॥ ३० ॥ आद्योऽङ्गिराः श्रीमुखभावसाह्वौ युवाथ धातेति युगे द्वितीये । वर्षाणि पञ्चैव यथाक्रमेण त्रीण्यत्र शस्तानि समे परे द्वे ॥ ३१ ॥ त्रिष्वङ्गिराद्येषु निकामवर्षी

गया इसके प्रथम वर्षमें वृष्टि होती है, दूसरे वर्षके आरम्भमें वृष्टि होती है, तीसरे वर्षमें अतिवृष्टि होती है, चतुर्थके शेषमें वृष्टि होती है, पञ्चम वर्षमें साधारण वृष्टि होती है ॥ २५ ॥ पहिले जो बारह युगका वर्णन कर आये हैं, इसके मध्यमें जो प्रथम चार युग हैं जिनके पति विष्णु, इन्द्र, बृहस्पति और अग्नि हैं, यह चार युग सबसे अच्छे हैं । तिसके पीछेके अर्थात् बीचके चार युग मध्यम हैं और अन्तके चार युगका मध्यम फल जानना ॥ २६ ॥ जिस समय बृहस्पति धनिष्ठा नक्षत्रके प्रथमांशमें प्राप्त होकर माघमासमें उदित होंगे तिस कालही षष्टि संवत्सरके प्रथम प्रभव नामक वर्षका आरम्भ होयगा । यह वर्ष प्राणियोंका हितकारक है ॥ २७ ॥ प्रभवनामक वर्षके वर्त्तमान होनेपर यद्यपि किसी स्थानमें अनावृष्टि होती है किसी २ स्थानमें वायु वा अग्निका कोप होता है, किसी स्थानमें ईतिभय और किसी स्थानमें श्लेष्माकी पीडा होती है, तथापि इस वर्षमें प्राणियोंको विशेष दुःख नहीं होता ॥ २८ ॥ दूसरे वर्षका नाम विभव है, तीसरा शुक्ल, चौथा प्रमोद और पञ्चम वत्सरका नाम प्रजापति है । यह समस्त वर्ष उत्तरोत्तर शुभफलके देनेवाले हैं । इन वर्षोंमें राजालोग इस प्रकारसे पृथ्वीका पालन करते हैं कि, उनके शासनके गुणसे पृथ्वी धान्य, ईख और यवादि नाजकी फलनेवाली और भयशून्य, शत्रुताहीन और हर्षित मनुष्योंसे युक्त हो कलियुगके दोषोंसे छूट जाती है ॥ २९ ॥ ३० ॥ दूसरे युगमें (बृहस्पति युगमें) जो पांच वत्सर हैं उनके नाम,–अंगिरा,

देवो निरातङ्कभयाश्च लोकाः । अब्दद्वयेऽन्त्येऽपि समा सुवृष्टिः किन्त्वत्र रोगाः समरागमश्च ॥ ३२ ॥ शाक्रे युगे पूर्वमथेश्वराख्यं वर्षं द्वितीयं बहुधान्यमाहुः । प्रमाथिनं विक्रममप्यतोऽन्यद्वृषं च विद्याद्गुरुचारयोगात् ॥ ३३ ॥ आद्यं द्वितीयं च शुभे तु वर्षे कृतानुकारं कुरुतः प्रजानाम् । पापः प्रमाथी वृषविक्रमौ तु सुभिक्षदौ रोगभयप्रदौ च ॥ ३४ ॥ श्रेष्ठं चतुर्थस्य युगस्य पूर्वं यच्चित्रभानुं कथयन्ति वर्षम् । मध्यं द्वितीयं तु सुभानुसंज्ञं रोगप्रदं मृत्युकरं न तच्च ॥३५॥ तारणं तदनु भूरिवारिदं सस्यवृद्धिमुदितं च पार्थिवम् । पञ्चमं व्ययमुशन्ति शोभनं मन्मथप्रबलमुत्सवाकुलम् ॥ ३६ ॥ त्वाष्ट्रे युगे सर्वजिदाद्य उक्तः संवत्सरोऽन्यः खलु सर्वधारी । तस्माद्विरोधी विकृतः खरश्च शस्तो द्वितीयोऽत्र भयाय शेषाः ॥ ३७ ॥ नन्दनोऽथ विजयो जयस्तथा मन्मथोऽस्य परतश्च दुर्मुखः । कान्तमत्र युग आदितस्त्रयं मन्मथः समफलोऽधमोऽपरः ॥ ३८ ॥

श्रीमुख, भाव, युवा और धाता । तिनमें प्रथमके तीन वर्ष कुछ एक अच्छे हैं और दो मध्यमभाववाले हैं ॥ ३१ ॥ अंगिरा आदि तीन वर्षोंमें देवतालोग भली भांति जल बर्षाते हैं और आदमी निरातंक व निर्भय होते हैं, पिछले दो वर्षमें यद्यपि वृष्टि समभावसे होती है परन्तु रोग और समर होता है ॥ ३२ ॥ बृहस्पतिके विचरणसे ऐन्द्रनामक जो तीसरा युग होता है उसके प्रथम वर्षका नाम ईश्वर, २ बहुधान्य, ३ प्रमाथी, ४ विक्रम और पांचवेंका नाम वृष है ॥ ३३ ॥ इसमें पहला और दूसरा वर्ष शुभदायी है; बरन प्रजाके लोगोंको तो मानो सतयुगही हो जाता है । प्रमाथी वर्ष अत्यन्त पापदायक है । विक्रम और वृष नामक दो वर्ष सुभिक्षदायक तो हैं परन्तु रोग और भयके करनेवाले हैं ॥ ३४ ॥ चतुर्थ (हुताश नामक) युगका प्रथम वर्ष जिसका नाम चित्रभानु है; अत्युत्तम फलको देनेवाला है । दूसरा वर्ष सुभानु मध्यमफलदायी है अर्थात् रोगदायी है । परन्तु मृत्युदायक नहीं है । तीसरे वर्षका नाम तारण है (किसी किसीके मतमें दारुण) इसमें अत्यन्त वृष्टि होती है । चौथे वर्षका नाम पार्थिव है, इसमें धान्य बढनेसे हर्ष होता है । पांचवें वर्षका नाम व्यय है; इस वर्षमें कामियोंको काम उद्दीप्त होता है, वह उत्सवयुक्त होकर शोभायमान होते हैं ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ त्वाष्ट्र नामक पञ्चम युगके प्रथम वर्षका नाम सर्वजित्, २ सर्वधारी, ३ विरोधी, ४ विकृत, ५ खर इन पांच वर्षोंमें दूसरा वर्ष मंगलकारी है और शेष भयके कारण हैं ॥ ३७ ॥ अहिर्बुध्न्य नामक छठे युगमें प्रथम वर्षका नाम नन्दन है, २ विजय, ३ जय, ४ मन्मथ और पांचवां दुर्मुख है । इन पांच

हेमलम्ब इति सप्तमे युगे स्याद्विलम्बि परतो विकारि च। शर्वरीति तदनु ध्रुवः स्मृतो वत्सरो गुरुवशेन पञ्चमः॥ ३९॥ ईतिभायः प्रचुरपवना वृष्टिरब्दे तु पूर्वे मन्दं सस्यं न बहुसलिलं वत्सरेऽतो द्वितीये। अत्युद्वेगः प्रचुरसलिलः स्यात्तृतीयश्चतुर्थो दुर्भिक्षाय ध्रुव इति ततः शोभनो भूरितोयः॥ ४०॥ वैश्वे युगे शोभकृदित्यथाद्यः संवत्सरोऽतः शुभकृद्द्वितीयः। क्रोधी तृतीयः परतः क्रमेण विश्वावसुश्चेति पराभवश्च॥ ४१॥ पूर्वापरौ प्रीतिकरौ प्रजानामेषां तृतीयो बहुदोषदोऽब्दः। अन्त्यौ समौ किन्तु पराभवेऽग्निः शस्त्रामयार्त्तिर्द्विजगोभयञ्च॥ ४२॥ आद्यः प्लवङ्गो नवमे युगेऽब्दः स्यात्कीलकोऽन्यः परतश्च सौम्यः। साधारणो रोधकृदित्यथाब्दः शुभप्रदौ कीलकसौम्यसंज्ञौ॥ ४३॥ कष्टः प्लवङ्गो बहुशः प्रजानां साधारणेऽल्पं जलमीतयश्च। यः पञ्चमो रोधकृदित्यथाब्दश्चित्रं जलं तत्र च सस्यसम्पत्॥ ४४॥ इन्द्राग्निदैवं दशमं युगं यत् तत्राद्यमब्दं परिधाविसंज्ञम्। प्रमाद्यथानन्दमतः परं यत् स्याद्राक्षसं चान-

---

वर्षोंमें प्रथमसे लेकर तीन मनोहर हैं; मन्मथ वत्सर समफली और पञ्चम वत्सर अत्यन्त अधम है॥ ३८॥ बृहस्पतिकी गतिके वशसे सप्तम (पितृ) युगका प्रथम वर्ष हेमलम्ब, २ विलम्बी, ३ विकारी, ४ शर्वरी, ५ ध्रुव है। इसके प्रथम वर्षमें ईतिभय और झंझावायुका भय होता है, साथमें झंझावायुके पानीभी वर्षता है तदोपरान्त दूसरे वर्षमें धान्य और वृष्टिकी अल्पता होती है। तीसरे वर्षमें अत्यन्त घबड़ाहट और अत्यन्त वर्षा होती है. चौथे वर्षमें दुर्भिक्षका भय और ध्रुव वर्षमें अत्यन्त सुवृष्टि व शुभ होता है॥ ३९॥ ४०॥ वैश्व युगमें प्रथम वर्षका नाम शोभकृत, २ शुभकृत्, ३ क्रोधी, ४ विश्वावसु, ५ पराभव. इसका प्रथम और दूसरा वर्ष प्रजाओंको प्रसन्न करनेवाला है. तीसरा वर्ष बहुत दोषोंका देनेवाला है और शेष दो संवत्सर समफली हैं; परन्तु पराभव वर्षमें अग्नि, शस्त्र, रोग, पीडा और गोब्राह्मणोंको पीडा होती है॥ ४१॥ ४२॥ नवम (सौम्य) युगमें प्रथम वर्षका नाम प्लवंग, २ कीलक, ३ सौम्य, ४ साधारण, पञ्चम रोधकृत् है. तिसमें कीलक और सौम्य वत्सर अत्यन्त शुभदाई हैं॥ ४३॥ प्लवंग वर्षमें प्रजाओंको अत्यन्त कष्ट होता है. साधारण वत्सरमें साधारण वृष्टि और ईतिभय होता है और पञ्चम वर्ष जिसका नाम रोधकृत् है, इससे सुन्दर वृष्टि और धान्यकी सम्पत्ति होती है॥ ४४॥ शक्राग्निदैवत जो दशम युग है, तिसके प्रथम वर्षका नाम परि-

लसंज्ञितं च ॥ ४५ ॥ परिधाविनि मध्यदेशनाशो नृपहानिर्जलमल्पमग्नि
अलसस्तु जनः प्रमादिसंज्ञे डमरं रक्तकपुष्पबीजनाशः ॥ ४६ ॥ तत्रा
लोकनन्दनो राक्षसः क्षयकरोऽनलस्तथा । ग्रीष्मधान्यजननोऽत्र राक्षसो
पनरकप्रदोऽनलः ॥ ४७ ॥ एकादशे पिङ्गलकालयुक्तसिद्धार्थरौद्राः
तिश्च ॥ आद्ये तु वृष्टिर्महती सचौरा श्वासो हनुकम्पयुतश्च कासः ॥
यत्कालयुक्तं तदनेकदोषं सिद्धार्थसंज्ञे बहवो गुणाश्च । रौद्रोऽतिरौद्रः
दिष्टो यो दुर्मतिर्मध्यमवृष्टिकृत्सः ॥ ४९ ॥ भाग्ये युगे दुन्दुभि
सस्यस्य वृद्धिं महतीं करोति । उद्गारिसंज्ञं तदनु क्षयाय नरेश्वराणां
वृष्टिः ॥ ५० ॥ रक्ताक्षमब्दं कथितं तृतीयं यस्मिन् भयं दंष्ट्रिकृतं
क्रोधं बहुक्रोधकरं चतुर्थं राष्ट्राणि शून्यीकुरुते विरोधैः ॥ ५१ ॥
युगस्यान्त्यस्यान्त्यं बहुक्षयकारकं जनयति भयं तद्विप्राणां कृषिवलवृ
उपचयकरं विट्शूद्राणां परस्वहृतां तथा कथितमखिलं षष्ट्यब्दे यत्तद

धावी, दूसरा प्रमादी, ३ आनन्द, ४ राक्षस, ५ अनल है. तिसमें परिधा
वत्सरमें मध्यदेशका नाश, राजाकी हानि, साधारण वृष्टि और अग्निका भ
है, प्रमादी वर्षमें लोग अत्यन्त आलसी होते हैं. उलट पुलट होता है.
फूलोंके बीजका नाश हो जाता है. आनन्दवर्ष आनन्दका देनेवाला और
अनलवत्सरमें क्षय होती है. परन्तु विशेषता यह है कि राक्षस वर्षमें ग्री
धान्य उत्पन्न होते हैं, और अनलवर्ष अग्निकोपका दाता और नरकदाई है
॥ ४६ ॥ ४७ ॥ एकादश (आश्वि) युगमें १ पिंगल, २ कालयुक्त, ३
४ रौद्र, ५ दुर्मति ये पांच वर्ष होते हैं. इनमेंसे पहिले वर्षमें अत्यन्त वर्षा,
श्वास और ठोडीको कम्पायमान करनेवाली खांसी होती है। कालयुक्त वर्ष
दोषकारी है। सिद्धार्थवर्षमें अनेकगुण होते हैं। रौद्रवर्ष अत्यन्त रौद्र और
है और दुर्मतिवर्ष मध्यम वृष्टिका करनेवाला है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ भा
बारहवें युगके प्रथम वर्षका नाम दुंदुभि है; यह धान्यका अत्यन्त बढाने
तदोपरान्त दूसरा उद्गारी नामक वर्ष (दूसरे मतसे रुधिरोद्गारी) राजा
और असमान वृष्टि होती है। तीसरे वर्षका नाम रक्ता है; इस वर्षमें दंष्ट्रि
और रोग होता है। चौथे अब्दका नाम क्रोध है। यह क्रोधकारी है
बराबर जनपदोंको शून्य कर देता है। इस बारहवें युगके पिछले वर्षका

स्तः ॥ ५२ ॥ अकलुषांशुजटिलः पृथुमूर्तिः कुमुदकुन्दकुसुमस्फटिकाभः । ग्रहहतो न यदि सत्पथवर्ती हितकरोऽमरगुरुर्मनुजानाम् ॥ ५३ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां बृहस्पतिचारोऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः ।

शुक्रचाराध्याय.

नागगजैरावतवृषगोजरद्गवमृगाजदहनाख्याः । अश्विन्याद्याः केचित् त्रिभाः क्रमाद्वीथयः कथिताः ॥ १ ॥ नागा तु पवनयाम्यानलानि पैतामहात्त्रिभास्तिस्रः । गोवीथ्यामश्विन्यः पौष्णं द्वे चापि भद्रपदे ॥ २ ॥ जारद्गव्यां श्रवणात् त्रिभं च

है; यह क्षयकारक है, ब्राह्मणोंको भयदायी, खेतीके बलको बढानेवाले, पराये धनके हरनेवाले, वैश्य और शूद्रोंकी वृद्धि करता है. इस प्रकार संक्षेपसे साठ संवत्सरका समस्त फल कहा गया ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ देवताओंके गुरु बृहस्पतिजी जो निर्मल किरणवाले हों, स्थूलमूर्ति, कुमुद, कुन्दपुष्प वा बिल्लौरे पत्थरकी समान कान्तिवाले हों किसी ग्रहसे भेदित न होकर श्रेष्ठ मार्गमें चलते हों तो मनुष्योंको हितकारी होते हैं ॥ ५३ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यपंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

कोई कोई पण्डित कहते हैं कि–अश्विनी आदि तीन तीन नक्षत्रोंमें एक एक वीथि[1] होती है. यह वीथियें नौ मार्गोंमें बांटी गई हैं; यथा,–१ नाग, २ गज, ३ ऐरावत, ४ वृषभ, ५ गो, ६ जारद्गव, ७ मृग, ८ अज और ९ दहन है॥१॥ किसीके मतसे स्वाती, भरणी और कृत्तिका नक्षत्रमें नागवीथि होती है. गज, ऐरावत और वृषभ नामक जो तीन वीथि हैं, वह रोहिणीसे उत्तराफाल्गुनी तक तीन तीन नक्षत्रमें हुआ करती हैं. और अश्विनी, रेवती, पूर्वाभाद्रपदा और उत्तराभाद्रपदा नक्षत्रमें गोवीथि हुआ करती है ॥ २ ॥ श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा नक्षत्रमें जारद्गवी वीथि होती है; अनुराधा, ज्येष्ठा और मूल नक्षत्रमें मृगवीथि होती है; हस्त, विशाखा और चित्रा नक्षत्रमें अजावीथि और पूर्वाषाढा व उत्तराषाढा

१ गतिके अनुसार पन्थाविशेषका नाम वीथि है ।

मैत्राद्यम् । हस्तविशाखात्वाष्ट्राण्यजैत्यपाददूयं दहना ॥ ३ ॥ तिस्र
स्त्रस्तासां क्रमादुदङ्‌मध्ययाम्यमार्गस्थाः । तासामप्युत्तरमध्यदक्षिणार्ग
कैका ॥ ४ ॥ वीथीमार्गानपरे कथयन्ति यथा स्थिता भमार्गस्य । नक्ष
तारा याम्योत्तरमध्यमास्तद्वत् ॥ ५ ॥ उत्तरमार्गो याम्यादि निगदितो मध्य
भाग्याद्यः । दक्षिणमार्गोऽपाढादि कैश्चिदेवं कृता मार्गाः ॥ ६ ॥ ज्योतिषमा
शास्त्रं विमतिपत्तौ न योग्यमस्माकम् । स्वयमेव विकल्पयितुं किन्तु ब
मतं वक्ष्ये ॥ ७ ॥ उत्तरवीथिषु शुक्र सुभिक्षशिवकृद्गतोऽस्तमुदयं
मध्यासु मध्यफलदः कष्टफलो दक्षिणस्थासु ॥ ८ ॥ अत्युत्तममोत्तमोनं स
ध्यन्यूनमधमकष्टफलम् । कष्टतमं सौम्याद्यासु वीथिषु यथाक्रमं ब्रूयात् ॥
भरणीपूर्वं मण्डलमृक्षचतुष्कं सुभिक्षकरमाद्यम् । वङ्गाङ्गमहिषबाह्लिककलि

नक्षत्रमें दहना वीथि हुआ करती है ॥ ३ ॥ इस प्रकार सत्ताईस नक्षत्रमें नौ
होनेपर प्रत्येक वीथिही तीन बार होती हैं; इस कारण इन सब वीथियोंमें
तीन वीथि सूर्यमार्गके उत्तर, मध्य और दक्षिणमार्गमें विराजमान हैं, फिर उ
एक एक यथाक्रमसे उत्तर, मध्य और दक्षिणपथमें विराजमान हैं. जैसे तीन न
वीथि हैं; तिनमें प्रथम उत्तरमार्गस्था, दूसरी मध्यस्था और तीसरी दक्षिणमा
स्थित है ॥ ४ ॥ कोई कोई महात्मा कहते हैं कि सब नक्षत्रोंके नक्षत्र मार्ग
योग तारागणे उत्तर, मध्य और दक्षिणभागमें जैसे विराजमान हैं, समस्त वी
मार्गभी वैसेही विराजमान हैं ॥ ५ ॥ किसी किसी पंडितके मतसे भरणीसे उ
मार्ग, पूर्वाफाल्गुनीसे मध्यममार्ग और पूर्वाषाढासे दक्षिणमार्गका आरम्भ होत
॥ ६ ॥ ज्योतिष आगमशास्त्र अर्थात् सन्देहपूर्वक किसी बातकी मीमांसा क
मेरी (मुझ सरीखे आदमीकी) सामर्थ्यसे बाहर है; इस कारण (ऋषिलो
किसीके मतको दोष देकर या किसीके मतकी पोषकता न करके) बहुतोंके मत
प्रकट करूंगा ॥ ७ ॥ जिस समय शुक्राचार्य उत्तरवीथिमें विराजमान होकर उ
या अस्त होगे तबही सुभिक्ष या मंगल होगा. मध्यवीथिमें होनेसे मध्यम
और दक्षिणवीथिमें होनेसे कष्टकारी फल होता है ॥ ८ ॥ आर्द्रा नक्षत्रसे आर
करके मृगशिरातक जो नौ वीथियें हैं तिनमें शुक्रका उदय या अस्त होनेसे य
क्रमसे अत्युत्तम, उत्तम, ऊन, सम, मध्य, न्यून, अधम, कष्ट और कष्टतम
उत्पन्न होता है ॥ ९ ॥ भरणीसे लेकर चार नक्षत्रमें जो मण्डल अर्थात् वीथि

१ किस नक्षत्रमें कितने योगतारे हैं सो नक्षत्रगुणाध्यायमें कहेंगे ।

देशेषु भयजननम् ॥ १० ॥ अत्रोदितमारोहेद्ग्रहोऽपरो यदि सितं ततो हन्यात् । मद्राश्वशूरसेनकयौधेयककोटिवर्षनृपान् ॥ ११ ॥ भचतुष्टयमाद्राद्यं द्वितीयममिताम्बुसस्यसम्पत्त्यै । विप्राणामशुभकरं विशेषतः क्रूरचेष्टानाम् ॥ १२ ॥ अन्येनात्राक्रान्ते म्लेच्छाटविकाश्वजीविगोमन्तान् । गोनर्दनीचशूद्रान् वैदेहांश्चानयः स्पृशति ॥ १३ ॥ विचरन् मघादिपञ्चकमुदितः सस्यप्रणाशकृच्छुक्रः । क्षुत्तस्करभयजननो नीचोन्नतिसङ्करकरश्च ॥ १४ ॥ पित्र्याद्येऽवष्टब्धो हन्त्यन्ये नाविकाञ्छबरशूद्रान् । पुण्ड्रापरान्त्यशूलिकवनवासिद्रविडसामुद्रान् ॥ १५ ॥ स्वात्याद्यं भत्रितयं मण्डलमेतच्चतुर्थमभयकरम् । ब्रह्मक्षत्रसुभिक्षाभिवृद्धये मित्रभेदाय ॥ १६ ॥ अत्राक्रान्ते मृत्युः किरातभर्तुः पिनष्टि चेक्ष्वाकून् ।

उसकी प्रथम वीथिमें शुक्रका उदय या अस्त होनेसे सुभिक्ष होता है; परन्तु अंग, वंग, महिष, बाह्लिक और कलिंग देशमें भय होता है ॥ १० ॥ इस प्रथम मण्डलमें उदित शुक्राचार्यके ऊपर जो कोई ग्रह होय तो मद्राश्व, शूरसेनक, यौधेयक और कोटिवर्ष देशके राजाका नाश होता है ॥ ११ ॥ आर्द्रासे लेकर जो चार नक्षत्र हैं उनको दूसरा मंडल कहते हैं. (इनमें शुक्रका उदय या अस्त होनेसे) इससे बहुतसा जल वर्षता है और यह धान्य सम्पत्तिका निमित्त है. परन्तु ब्राह्मणोंको अशुभ होता है, विशेष करके जो लोग क्रूर चेष्टावाले हैं उनकी विशेष हानि है ॥ १२ ॥ दूसरे मंडलवाले शुक्रको यदि कोई आक्रमण करे तो म्लेच्छ, आटविका, अश्वजीवी अर्थात् बनजारे इत्यादि, गोमन्त (कुत्तोंसे आजीविका रखनेवाले), बहुतसी गायें रखनेवाले, नीच, शूद्र और विदेहदेशके रहनेवालोंको अनीति स्पर्श करती है॥१३॥ मघासे लेकर चित्रातक पांच नक्षत्रमें घूमते २ यदि शुक्राचार्य्य उदय होवें तो समस्त धान्यका नाश होता है. क्षुधाभय और चोरभय होता है. नीचोंकी उन्नति और वर्णसंकरजातिकी उत्पत्ति होती है ॥ १४ ॥ इन मघादि तीसरे मंडलके दैत्यगुरु यदि और किसी ग्रहसे रुक जांय तो पेडोंके समूह, शबर, शूद्र, पुण्ड्र, पश्चिमकी सीमाका अन्न, शूलिक, वनवासी, द्रविड, सामुद्रके पुरुषोंका नाश हो जाता है ॥ १५ ॥ स्वाती, विशाखा और अनुराधा नक्षत्रमें चौथा मण्डल होता है. इसमें शुक्राचार्यके प्रयाण करनेसे अभय होता है, ब्राह्मण और क्षत्रीजातिके लिये सुभिक्ष होता है, परन्तु मित्रोंमें परस्पर भेद हो जाता है ॥ १६ ॥ यह चौथा मंडल आक्रान्त हो जाय तो किरातराजाकी मृत्यु होती है. और इक्ष्वाकुवंशवाले और प्रत्यन्त या अवन्तिदेशके रहनेवाले, पुलिन्द, तंगण और शूरसेनवासी लोग

प्रत्यन्तावन्तिपुलिन्दतङ्गणाञ्छूरसेनांश्च ॥ १७ ॥ ज्येष्ठाद्यं पञ्चर्क्षं क्षुत्तस्करो- गदं प्रबाधयते । काश्मीराश्मकमत्स्यान् सचारुदेवीनवन्तींश्च ॥ १८ ॥ आरो- हेऽत्राभीरान् द्रविडाम्बष्ठत्रिगर्तसौराष्ट्रान् । नाशयति सिन्धुसौवीरकांश्च काशीश्व- रस्य वधः ॥ १९ ॥ षष्ठं षण्नक्षत्रं शुभमेतन्मण्डलं धनिष्ठाद्यम् । भूरिधनगो- कुलाकुलमनल्पधान्यं क्वचित् सभयम् ॥ २० ॥ अत्रारोहे शूलिकगान्धारा- न्तयः प्रपीडयन्ते । वैदेहवधः प्रत्यन्तयवनशकदासपरिवृद्धिः ॥ २१ ॥ अपरस्यां स्वात्यद्यं ज्येष्ठाद्यं चापि मण्डलं शुभदम् । पित्र्याद्यं पूर्वस्यां शेषाणि यथोक्त- फलदानि ॥ २२ ॥ दृष्टोऽनस्तगतेऽर्के भयकृत् क्षुद्रोगकृत् समस्तमहः । अर्धदिवसं च सेन्दुर्नृपबलपुरभेदकृच्छुक्रः ॥ २३ ॥ भिन्दन् गतोऽनलर्क्षं कूलातिक्रा- न्तवारिवाहाभिः । अव्यक्ततुङ्गनिम्ना समा सरिद्भिर्भवति धात्री ॥ २४ ॥

पोषित होते हैं ॥ १७ ॥ ज्येष्ठासे लेकर श्रवणतक जो पांच नक्षत्र हैं तिनका पांचवां मण्डल है, इसमें क्षुधा, चोर और रोगकी बाधा होती है. जो भृगुके पु इसमें आरोहण करें तौ काश्मीर, अश्मक, मत्स्य, चारुदेवी और अवन्तीदेश रहनेवाले मनुष्य, आभीरजाति, द्रविड, अम्बष्ठ, त्रिगर्त, सौराष्ट्र, सिन्धु और सौवी रदेशके पुरुष और काश्मीरके राजाका विनाश होता है ॥ १८ ॥ १९ ॥ धनिष्ठा लेकर अश्विनीतक जो छः नक्षत्र हैं तिनको छठा मंडल कहते हैं, यह शुभकार है. इसमें समस्त लोग बहुतसे धन धान्य और गायढोरोंसे युक्त होकर अत्य सुखी होते हैं, परन्तु कोई स्थान सभय होता है. इसमें शुक्रका आरोहण होनेपर शूलिक, गान्धार और अवन्तीके रहनेवाले लोग पीडित होते हैं; विदेह नरपतिका नाश और प्रत्यन्तदेशके यवन, शक और दासलोगोंकी वृद्धि होती है ॥ २० ॥ २१ ॥ जिन छः मण्डलोंका वर्णन किया गया तिनमें स्वाती नक्षत्रादि और ज्येष्ठानक्ष- त्रादि जो दो मण्डल होते हैं, यह दोनों मण्डल पश्चिमदिशामें होनेसे शुभकारक हैं और मघानक्षत्रादि जो एक मण्डल है, वह पूर्वदिशामें होनेपर अत्यन्त शुभदायी है । शेषमण्डल यथोक्त फलके देनेवाले हैं ॥ २२ ॥ सूर्य अस्त होनेके पहिले शुक्रके दृष्टि आनेसे भय होता है, सारे दिन दिखाई देनेसे क्षुधा और रोग होता है, आधे दिन दिखाई देनेसे वा चन्द्रमाके साथ दिखाई देनेसे राजालोगोंका, सेनाका और नगरका भेद होता है ॥ २३ ॥ कृत्तिकानक्षत्र भेदकरके शुक्राचार्य गमन करें तौ कूलातिक्रान्त जलराशिवाहिनी नदियोंके द्वारा पृथ्वीके ऊंचे नीचे स्थान अव- नर्णीत होकर समान हो जाते हैं अर्थात् बडी भारी बाढ आती है ॥ २४ ॥

प्राजापत्ये शकटे भिन्ने कृत्वेव पातकं वसुधा। केशास्थिशकलशबला कापालिकमिव व्रतं धत्ते ॥२५॥ सौम्योपगतो रसशस्यसंक्षयायोशना समुद्दिष्टः। आर्द्रागतस्तु कोशलकलिङ्गहा सलिलनिकरकरः ॥ २६ ॥ अश्मकवैदर्भाणां पुनर्वसुस्थे सिते महाननयः। पुष्ये पुष्टा वृष्टिर्विद्याधरगणविमर्दश्च ॥२७॥ आश्लेषासु भुजङ्गमदारुणपीडावहश्चरञ्छुक्रः। भिन्दन् मघां महामात्रदोषकृद्भूरिवृष्टिकरः ॥ २८ ॥ भाग्ये शबरपुलिन्दप्रध्वंसकरोऽम्बुनिवहमोक्षाय। आर्यम्णे कुरुजाङ्गलपाञ्चालघ्नः सलिलवर्षी ॥ २९ ॥ कौरवचित्रकराणां हस्ते पीडा जलस्य च निरोधः। कूपकृदण्डजपीडा चित्रास्थे शोभना वृष्टिः ॥३०॥ स्वातौ प्रभूतवृष्टिर्दूतवणिङ्नाविकान् स्पृशत्यनयः। ऐन्द्राग्नेऽपि सुवृष्टिर्वणिजां च भयं विजानीयात् ॥ ३१ ॥

शुक्रसे रोहिणीनक्षत्र का शकट भिन्न होय (पापी लोग जिस प्रकार पापका प्रायश्चित्त करनेके लिये कापालिक व्रत धारण करते हैं वैसेही) तो पृथ्वी केश और अस्थियोंके टुकडोंसे अनेक रंगोंको धारण करके मानो पाप करनेके उपरान्त कपाल व्रत धारण करती अर्थात् अत्यन्त मरी पडती है ॥ २५ ॥ उशना मृगशिरानक्षत्रमें आवे तो जल और धान्यका नाश होय । आर्द्रा नक्षत्रमें गमन करे तो कोशल और कलिंग देशका नाश होता है। परन्तु वृष्टि बहुत होती है ॥ २६ ॥ पुनर्वसु नक्षत्रमें शुक्राचार्यके गमन करनेपर अश्मक और विदर्भ देशके रहनेवाले मनुष्योंमें अत्यन्त अनीति आती है। पुष्य नक्षत्रमें गमन करनेपर अनेक वृष्टि होती है। परन्तु विद्याधरोंमें विमर्द हुआ करता है ॥ २७ ॥ आश्लेषा नक्षत्रमें शुक्रके गमन करनेसे सर्पभय और अत्यन्त पीडा होती है । मघानक्षत्र भेद करनेपर हस्तिपक लोगोंको दुष्ट करता है और अत्यन्त वृष्टि होती है ॥ २८ ॥ पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र शुक्रसे भिन्न होय तो शबर पुलिन्दगण नाशको प्राप्त होते हैं। वृष्टि बहुत होती है। उत्तराफाल्गुनी भिन्न होय तो वर्षा होती है और कुरुजांगल व पांचालदेशका नाश हो जाता है ॥२९॥ यदि हस्त नक्षत्र शुक्रसे भिन्न होय तो कौरव और चित्रकारोंको पीडा होती है, जल नहीं वर्षता । चित्रा नक्षत्र शुक्रसे भिन्न होय तो कूपकारक और अण्डजोंको पीडा होती है; वृष्टि शोभनीय होती है ॥ ३० ॥ स्वाती नक्षत्रमें शुक्र आवे तो वर्षा होय और दूत, वणिक और

१ " इदं समग्रो भागे [illegible] ॥ [illegible] ॥ " [illegible] ॥

मैत्रे क्षत्रविरोधो ज्येष्ठायां क्षत्रमुख्यसन्तापः । मौलिकभिषजां मूले त्रिष्वपि चैते-
ष्वनावृष्टिः ॥ ३२ ॥ आप्ये सलिलजपीडा विश्वेशे व्याधयः प्रकुप्यन्ति । श्रव-
णे श्रवणव्याधिः पाषण्डभयं धनिष्ठासु ॥ ३३ ॥ शतभिषजि शौण्डिकानामजै-
कपे द्यूतजीविनां पीडा । कुरुपाञ्चालानामपि करोति चास्मिन् सितः सलि-
लम् ॥ ३४ ॥ अहिर्बुध्न्ये फलमूलतापकृद्यायिनां च रेवत्याम् । अश्विन्यां
हयपानां याम्ये तु किरातयवनानाम् ॥ ३५ ॥ चतुर्दशे पञ्चदशे तथाऽष्टमे
तमिस्रपक्षस्य तिथौ भृगोः सुतः । यदा व्रजेद्दर्शनमस्तमेति वा तदा महीवारि-
मयीव लक्ष्यते ॥ ३६ ॥ गुरुर्भृगुश्चापरपूर्वकाष्ठयोः परस्परं सप्तमराशिगौ यदा।
तदा प्रजा रुग्भयशोकपीडिता न वारि पश्यन्ति पुरन्दरोज्झितम् ॥ ३७ ॥
यदास्थिता जीवबुधारसूर्य्यजाः सितस्य सर्वेऽग्रपथानुवर्तिनः । नृनागवि-
विद्याधरसङ्गरास्तदा भवन्ति वाताश्च समुच्छ्रितान्तकाः ॥ ३८ ॥
न मित्रभावे सुहृदो व्यवस्थिताः क्रियासु सम्यङ् रता द्विजातयः ।
न चाल्पमप्यम्बु ददाति वासवो भिनत्ति वज्रेण शिरांसि भूभृताम् ॥ ३९ ॥

नाविक लोगोंको अत्यन्त अनीति स्पर्श करे । विशाखामें शुक्र होय तो सुवृष्टि और
वणियोंको भय होता है ॥ ३१ ॥ अनुराधामें क्षत्रीवध, ज्येष्ठामें प्रधान क्षत्रियों
सन्ताप, मूलमें प्रधान वैद्योंको पीडा होती है, और जितने दिनतक इन तीन न
त्रोंमें शुक्र रहता है तबतक अनावृष्टि होती है ॥ ३२ ॥ जो पूर्वाषाढा नक्षत्र
शुक्र गमन करे तो जलसे उत्पन्न हुए जीवोंको पीडा होती है, उत्तराषाढामें व्या
श्रवणमें कर्णपीडा और धनिष्ठामें पाखण्डियोंको भय होता है ॥ ३३ ॥ शतभि
नक्षत्रमें शुक्रका गमन होय तो कलवारलोगोंको पीडा होती है, पूर्वाभाद्रपद
जुआरियोंको, कुरुपांचालोंको पीडा और वृष्टि होती है ॥ ३४ ॥ उत्तराभाद्रपद
फल और मूल, रेवतीमें पदातिक, अश्विनीमें अश्वपालक और भरणीमें किरात
यवन लोगोंका नाश होता है ॥ ३५ ॥ कृष्णपक्षकी चतुर्दशी पञ्चदशी वा अष्ट
तिथिमें जो शुक्रका उदय वा अस्त होय तो पृथ्वीपर बहुतही जल वर्षता है ॥ ३६ ॥
यदि गुरु और शुक्र पूर्वपश्चिममें परस्पर सातवीं राशिमें गत होय तो रोग औ
भयसे प्रजागण अत्यन्त पीडित होते हैं, वृष्टि नहीं होती है ॥ ३७ ॥ बृहस्पति,
बुध, मंगल और शनि यह सब ग्रह यदि शुक्रके आगेके मार्गमें चलें तो
मनुष्य, नाग और विद्याधरोंमें युद्ध होता है, और वायुसे विनाश होता है, बन्धु

शनैश्वरे म्लेच्छबिडालकुञ्जराः खरा महिष्योऽसितधान्यशूकराः । पुलिन्दशूद्राश्च सदक्षिणापथाः क्षयं व्रजन्त्यक्षिमरुद्गदोद्भवैः ॥ ४० ॥ निहन्ति शुक्रः क्षितिजेऽग्रतः प्रजा हुताशशस्त्रक्षुदवृष्टितस्करैः । चराचरं व्यक्तमथोत्तरापथं दिशोऽग्निविद्युद्रजसा च पीडयेत् ॥ ४१ ॥ बृहस्पतौ हन्ति पुरःस्थिते सितः सितं समस्तं द्विजगोसुरालयान् । दिशं च पूर्वां करकासृजोऽम्बुदा गले गदा भूरि भवेच्च शारदम् ॥ ४२ ॥ सौम्योऽस्तोदययोः पुरो भृगुसुतस्यावस्थितस्तोयकृद् रोगान् पित्तजकामलां च कुरुते पुष्णाति च ग्रैष्मिकम् । हन्यात् प्रव्रजिताग्निहोत्रिकाभिषग्रङ्गोपजीव्यान् हयान् वैश्यान् गाः सह वाहनैर्नरपतीन् पीतानि पश्चाद्दिशम् ॥ ४३ ॥ शिखिभयमनलाभे शस्त्रकोपश्च रक्ते कनकनिकषगौरे व्याधयो दैत्यपूज्ये । हरितकपिलरूपे श्वासकासप्रकोपः पतति न सलिलं खाद्-

---

लोग परस्पर मित्रभाव नहीं रखते, द्विजाति लोग अपनी क्रियाको छोड देते हैं, इन्द्र साधारण जलभी नहीं बर्षता वरन वज्र गिराकर पर्वतोंके मस्तक फोड देता है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ जब शनैश्चर शुक्रके आगे चले तो म्लेच्छजाति, बिलावजाति, हाथी, गधा, भैंस, काले धान, शूकर, पुलिन्द जाति, शूद्रगण और दक्षिणदेश, नेत्र और वायुसे उत्पन्न हुए रोगोंसे नाशको प्राप्त हो जाते हैं ॥ ४० ॥ यदि शुक्रके आगे मंगल गमन करता होय तो अग्नि, शस्त्र, क्षुधा, अवृष्टि और तस्करोंसे समस्त प्रजाको पीडा होती है, उत्तर दिशा नाशको प्राप्त हो जाती है, और अग्नि, बिजली और धूरिसे सब दिशा पीडित होती हैं ॥ ४१ ॥ शुक्रके आगेके मार्गमें जो बृहस्पतिका गमन होय तो समस्त मधुर पदार्थ, ब्राह्मण, ढोर, देवताओंके स्थान और पूर्वदिशा नाशको प्राप्त हो जाती है, मेघ ओले बरसाते हैं, सब लोगोंके गलेमें पीडा होती है और शारदीय समस्त धान्य उत्पन्न होते हैं॥४२॥ शुक्रके उदय या अस्तकालमें शुक्रके आगेके मार्गमें जब बुध रहता है तब वर्षा और रोग होते हैं, परन्तु तिसमें पित्तसे उत्पन्न हुए रोग तथा कामला रोग अधिक होता है, ग्रीष्म ऋतुमें उत्पन्न होनेवाले सब द्रव्य अधिकाईसे उत्पन्न होते हैं, संन्यासी, अग्निहोत्री, वैद्य, नृत्यसे आजीविका करनेवाले, अश्व, वैश्य, गौ, वाहनोंके साथ राजा, पीले वर्णके पदार्थोंका और पश्चिम दिशाका नाश हो जाता है ॥ ४३ ॥ जिस समय अग्निकी समान शुक्रका वर्ण होय तब अग्निभय, रक्तवर्ण होय तो शस्त्रकोप और कसौटीपर घिसे हुए सुवर्णकी रेखाकी नांई गौरवर्ण होय तो व्याधि होती है, यदि शुक्र हरित और कपिलवर्ण होय तो दमा और खांसीका

स्मरूक्षासिताभे ॥ ४४ ॥ दधिकुमुदशशाङ्ककान्तिभृत् स्फुटविकसत्किरणो बृहत्तनुः। सुगतिरविकृतो जयान्वितः कृतयुगरूपकरः सिताह्वयः ॥ ४५ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां शुक्रचारो नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽध्यायः।

शनैश्चरचार.

श्रवणानिलहस्तार्द्राभरणीभाग्योपगः सुतोऽर्कस्य। प्रचुरसलिलोपगूढां करोति धात्रीं यदि स्निग्धः ॥ १ ॥ अहिवरुणपुरन्दरदैवतेषु सुक्षेमकृन्न चाति जलम्। क्षुच्छस्त्रावृष्टिकरो मूले प्रत्येकमपि वक्ष्ये ॥ २ ॥ तुरगतुरगोपचारककविवैद्यामात्यहार्कजोऽश्विगतः। याम्ये नर्तकवादकगेयज्ञक्षुद्रनैकृतिकान् ॥ ३ ॥ बहुलास्थे पीड्यन्ते सौरेऽग्न्युपजीविनश्चमूपाश्च। रोहिण्यां कौशलमद्रकाशिपाञ्चालशाकटिकाः ॥ ४ ॥

रोग होता है, और भस्मकी समान रूखा या काला रंग होय तो आकाशसे वर्षा नहीं होती ॥ ४४ ॥ दैत्योंके गुरु शुक्राचार्य जब दही, कुमुद या चन्द्रमाके समान कान्तिवाले हों, कांति स्वच्छरूपसे झलकती होय, किरणें फैली हुई होंय उत्तम गतिवाला, विकाररहित और जययुक्त होय तो सब प्राणियोंके लिये मानो सतयुगही आ जाता है ॥ ४५ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादनिवासि-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

जो सूर्यका पुत्र शनि श्रवण, स्वाती, हस्त, आर्द्रा, भरणी और पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रमें विराजमान होकर मनोहर वर्णवाला होय तो पृथ्वीपर बहुतही जल बरसता है ॥ १ ॥ आश्लेषा, शतभिषा वा ज्येष्ठा नक्षत्रमें शनि विचरण करे तो सुमंगल होता है, परन्तु वर्षा नहीं होती। मूल नक्षत्रमें विचरण करे तो क्षुधा, शस्त्रभय और अनावृष्टि होती है। यह तो साधारण फल कहा गया अब प्रत्येक नक्षत्रमें शनिके विचरण करनेमें जो फल होता है वह कहा जाता है ॥ २ ॥ शनि अश्विनी नक्षत्रमें विचरण करे तो अश्व, अश्वसादी, कवि, वैद्य और मंत्रियोंकी हानि होती है। भरणी नक्षत्रमें विचरण करे तो नाचनेवाले, बजानेवाले, गानेवाले और छोटी जातिके निर्दय कर्म करनेवाले पुरुषोंकी हानि होती है ॥ ३ ॥ कृत्तिका नक्षत्रमें शनि होय तो इसमें अग्निसे जीविका करनेवालोंको और सेनालोगोंको पीडा होती है।

मृगशिरसि वत्सयाजकयजमानार्यजनमध्यदेशाश्च । रौद्रस्थे पारतरामठतैलिकरजकचौराश्च ॥ ५ ॥ आदित्ये पञ्चनदमत्यन्तसुराष्ट्रसिन्धुसौवीराः । पुष्ये घाण्टिकघोषिकयवनवणिक्कितवकुसुमानि ॥ ६ ॥ सार्पे जलरुहसर्पाः पित्र्ये वाह्लीकचीनगान्धाराः । शूलिकपारतवैश्याः कोष्ठागाराणि वणिजश्च ॥ ७ ॥ भाग्ये रसविक्रयिणः पण्यास्त्री कन्यका महाराष्ट्राः । आर्य्यम्णे नृपगुडलवणाभिक्षुकाम्बूनि तक्षशिला ॥ ८ ॥ हस्ते नापितचाक्रिकचोरभिषक्सूचिकद्विपग्राहाः । बन्धक्यः कौशलका मालाकाराश्च पीड्यन्ते ॥ ९ ॥ चित्रास्थे प्रमदाजनलेखकचित्रज्ञचित्रभाण्डानि । स्वातौ मागधचरदूतसूतपोतप्लवनटाद्याः ॥ १० ॥ ऐन्द्राग्न्ये त्रैगर्तचीनकौलूतकुङ्कुमं लाक्षा । सस्यान्यथ माञ्जिष्ठं कौसुम्भं च

रोहिणी नक्षत्रमें शनि विराजमान होय तौ कोशल, मद्र, काशी, पांचालदेश और छकडोंसे जीविकाका निर्वाह करनेवाले पुरुषोंको पीडा होती है ॥ ४ ॥ मृगशिरा नक्षत्रमें शनि होय तौ वत्सदेश, याजक, यजमान आर्यपुरुष और मध्य देशके लोगोंको पीडा होती है । आर्द्रा नक्षत्रमें शनि होय तौ रामठदेश, तेली, धोबी, रंगरेज और चोर अत्यन्त पीडित होते हैं ॥ ५ ॥ पुनर्वसु नक्षत्रमें शनि होय तो पंजाब, मत्यन्त, सुराष्ट्र, सिन्धु और सौवीर देशको अत्यन्त पीडा होती है । पुष्य नक्षत्रमें शनिका सहवास होय तो घंटा बजानेवाले, घोषिक (ढंढोरा फेरनेवाले), यवन, वणिक, खल और सब पुष्पोंको पीडा होती है ॥ ६ ॥ आश्लेषा नक्षत्रमें शनि होय तो पद्म और सर्पोंको; मघा नक्षत्रमें होय तो वाह्लीक, चीन, गान्धार, शूलिक, पारत, वैश्य, धनागार और वनियोंके लिये विघ्न होता है ॥ ७ ॥ पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रमें शनि रहता होय तो रस बेचनेवाले लोग, वेश्या, कन्या और महाराष्ट्रदेशको विघ्न होता है । उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें शनि होय तो राजा, गुड, लवण, भिक्षु, जल और तक्षशिला नगरीको विघ्न होता है ॥ ८ ॥ हस्त नक्षत्रमें शनि होय तो नाई, चाक्रिक (चक्रशिल्पी), चोर, वैद्य, दर्जी, द्विपग्राह (हाथी पकडनेवाले), बन्धकी, कौशली और माला बनानेवालोंको पीडा होती है ॥ ९ ॥ यदि शनि चित्रा नक्षत्रमें होय तो स्त्री, लेखक, चित्रविद्याको जाननेवालों (मुसौविर) को और अनेक प्रकारके द्रव्य पीडाको प्राप्त होते हैं । यदि स्वाती नक्षत्रमें शनि होय तो मागध, दूत, चर, सारथि; नावपर चलनेवाले और नटादिकोंको पीडा होती है ॥ १० ॥ जो विशाखा नक्षत्रमें शनि विचरण करता होय तो त्रिगर्त्त, चीन और कुलूत देश, कुमकुम, लाख, धान्य, मजीठ और कुसुम्भ क्षयको

श्रूयताम् ॥ ७ ॥ उदये च मुनेरगस्त्यनाम्नः कुसमायोगमलप्रदूषितानि । हृदयानि सतामिव स्वभावात् पुनरम्बूनि भवन्ति निर्मलानि ॥ ८ ॥ पार्श्वद्वयाधिष्ठितचक्रवाकामापुष्णती सस्वनहंसपंक्तिम् । ताम्बूलरक्तोत्कपिताग्रदन्ती विभाति योषेव सरित्सहासा ॥ ९ ॥ इन्दीवरासन्नसितोत्पलान्विता सरिद्भ्रमत्षट्पदपंक्तिभूषिता । सभ्रूलताक्षेपकटाक्षवीक्षणा विदग्धयोषेव विभाति सस्मरा ॥ १० ॥ इन्दोः पयोदविगमोपहितां विभूतिम् । द्रष्टुं तरङ्गवलया कुमुदं निशासु । उन्मीलयत्यलिनिलीनदलं सुपक्ष्म वापीविलोचनमिवासिततारकान्तम् ॥ ११ ॥ नानाविचित्राम्बुजहंसकोककारण्डवापूर्णतडागहस्ता । रवेः प्रभूतैः कुसुमफलैश्च भूयश्चकर्त्यार्घमगस्त्यनाम्ने ॥ १२ ॥ सलिलममरपाशयोज्झितं यदुपरिवेष्टितमूर्तिभिर्भुजङ्गैः । फणिजनितविषाग्निसम्प्रदुष्टं भवति शिवं तदगस्त्यदर्शनेन ॥ १३ ॥ स्मरणादपि पापमपाकुरुते किमुत स्तुतिभिर्वरुणाङ्गरुहः ।

[illegible] ॥ ७ ॥ जिस प्रकार बुरे लोगोंके समागमरूप मलसे दूषित हृदयवाला साधु [illegible] करनेही स्वभावसेही निर्मल हो जाता है वैसेही वर्षाकालीन मट्टीके योगसे [illegible] मिला हुआ जल अगस्त्यमुनिका उदय होतेही स्वभावसेही निर्मल हो जाता है ॥ ८ ॥ जिस प्रकार सुन्दरी स्त्रीके हँसनेके समय ताम्बूलरागरंजित अतएव [illegible] मध्यभागमें श्वेतदन्तपांति विराजमान होती है, वैसेही अगस्त्य [illegible] दोनों पार्श्वमें अधिष्ठित दो लालवर्ण चक्रवाकोंके बीचमें विराजमान [illegible] हंसपंक्तिद्वारा नदियां शोभायमान होती हैं ॥ ९ ॥ अगस्त्य मुनिका उदय होनेसे नदियां नीलकमलके निकटस्थित श्वेतपद्मयुक्त और तिसके ऊपर भ्रमण [illegible] भ्रमरपंक्तिसे शोभित होनेसे मानो भावोंके साथ कटाक्षको चलाने [illegible] विदग्धस्त्रीके समान शोभायमान होती हैं ॥ १० ॥ [illegible] रात्रिकालमें [illegible] चन्द्रमाकी विभूतिको दर्शन करनेहीके लिये मानो [illegible] कुमुदरूप [illegible] पलकदार नेत्रोंको खोलती हैं ॥ ११ ॥ अनेक प्रकारके [illegible] पद्म, हंस, चक्रवाक और कारण्डवादिद्वारा परिपूर्ण, [illegible] सूर्यके [illegible] फल, पुष्प और फलोंसे मुनि अगस्त्यजीको [illegible] देती हैं ॥ १२ ॥ [illegible] बाधा हुआ जल, [illegible] मूर्तिवाले [illegible] अगस्त्यमुनिके दर्शनसे शुद्ध [illegible] ॥ १३ ॥ जिनका स्मरण करनेही पापसमूह दूर हो जाते हैं, उनकी

मुनिभिः कथितोऽस्य यथार्घविधिः कथयामि तथैव नरेन्द्रहितम् ॥ १४ ॥
संख्याविधानात् प्रतिदेशमस्य विज्ञाय सन्दर्शनमादिशेज्ज्ञः। तच्चोज्जयिन्यामग-
तस्य कन्यां भागैः स्वराख्यैः स्फुटभास्करस्य ॥ १५ ॥ ईषत्प्रभिन्नेऽरुणरश्मि-
जालैर्नैशेऽन्धकारे दिशि दक्षिणस्याम्। सांवत्सरावेदितदिग्विभागे भूपोऽर्घमुर्व्यां
प्रयतः प्रयच्छेत् ॥ १६ ॥ कालोद्भवैः सुरभिभिः कुसुमैः फलैश्च रत्नैश्च सागर-
भवैः कनकाम्बरैश्च। धेन्वा वृषेण परमान्नयुतैश्च भक्ष्यैर्दध्यक्षतैः सुरभिधूप-
विलेपनैश्च ॥ १७ ॥ नरपतिरिममर्घं श्रद्दधानो दधानः प्रविगतगददोषो निर्जि-
ताराति पक्षः। भवति यदि च दद्यात् सप्त वर्षाणि सम्यग् जलनिधिरशनायाः

एकुमार अगस्त्यजीकी स्तुति करनेका फल हम कहांतक कहें, मुनिलोगोंने उन अगस्त्यजीके अर्घकी विधि जिस प्रकारसे कही है, राजाओंकी हितकारी वह व्यवस्था अब कही जाती है ॥ १४ ॥ पण्डितलोग गणितके नियमानुसार अगस्त्य-जीका उदय गिनकर सब देशोंमें आदेश करेंगे। जब सूर्यका स्पष्ट कन्याराशिका सात अंश कम अर्थात् ४-२३ चार राशि २३ अंश होगा। (यह प्रायः भाद्रमासके २२-२३-२४ दिनतक होता है) तब उज्जयिनीनगरीमें अगस्त्यमुनिका उदय होगा ॥ १५ ॥ सूर्यनारायणकी किरणोंसे जब रात्रिका अन्धकार कुछ एक नाशको प्राप्त हो जाता है (भोरकी वेला) तब दैवज्ञके द्वारा प्रकाशित दिशाओंका विभाग ("यह दक्षिण दिशा है, इस दिशामें भगवान अगस्त्यजीको अर्घ्य दो" इस प्रकार दैवज्ञकी आज्ञा पाय) राजाको उचित है कि दक्षिणदिशामें यथाकालमें उत्पन्न हुए अर्थात् शरत्कालके पुष्प, फल, समुद्रके निकले हुए रत्न, सुवर्ण, वस्त्र, धेनु, वृषभ, परमान्नयुक्त भक्ष्य, दही, अक्षत, सुगन्धि, धूप और चन्दनादिसे विरचित अर्घ्य पृथ्वी ऊपर देय ॥ १६ ॥ १७ ॥ यदि राजा श्रद्धावान् होकर इस प्रकार अर्घ्य धारण करे तो निरोग होकर समस्त शत्रुओंको जीते। और यदि इसी प्रकारसे सात वर्षतक अर्घ्य देता रहे तो समुद्ररशना पृथ्वीका स्वामी बनके

---

१ "अशीतिभागैर्याम्यायामगस्त्यो मिथुनान्तगः।" मिथुनराशिकी स्थिति ६ अंशमें और ८० अंश दक्षिणदिशेषमें दिखाई देनेवाला तारा ही अगस्त्य है। "स्वात्यगस्त्यमृगव्याध-चित्राज्येष्ठाः पुनर्वसु। अभिजिद् ब्रह्महृदयं त्रयोदशभिरर्कैः ॥" स्वाती, अगस्त्य, मृग, व्याध, चित्रा, ज्येष्ठा, पुनर्वसु, अभिजित् और ब्रह्महृदय नामक तारागण सूर्य १३ अंशान्तरमें उदय या अस्त होते हैं। सूर्य सिद्धान्त।

स्वामितां याति भूमेः ॥ १८ ॥ द्विजो यथालाभमुपाहृतार्घः प्राप्नोति वेदान्
प्रमदाश्च पुत्रान् । वैश्यश्च गां भूरिधनं च शूद्रो रोगक्षयं धर्मफलं च सर्वे ॥१९॥
रोगान् करोति परुषः कपिलस्त्ववृष्टिं धूम्रो गवामशुभकृत् स्फुरणो भयाय।
माञ्जिष्ठरागसदृशः क्षुधमाहवांश्च कुर्यादणुश्च पुररोधमगस्त्यनामा ॥ २० ॥
शातकुम्भसदृशः स्फटिकाभस्तर्पयन्निव महीं किरणौघैः । दृश्यते यदि ततः प्रचु
रान्ना भूर्भवत्यभयरोगजनाढ्या ॥ २१ ॥ उल्कया विनिहतः शिखिना वा
क्षुद्भयं मरकमेव च धत्ते । दृश्यते स किल हस्तगतेऽर्के रोहिणीमुपगते
स्तमुपैति ॥ २२ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायामगस्त्यचारो द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

चक्रवर्ती हो जाय ॥ १८ ॥ जो ब्राह्मणलोग जितनी वस्तु मिले उससेही अगस्त्यमुनिको अर्घ्य दे तो चारों वेदोंके अधिकारी हों और सुन्दरी स्त्री व पुत्रलाभ करें। वैश्य भी यदि यथालब्ध वस्तु (अर्थात् जितनी वस्तु मिले) उससे अगस्त्यको अर्घ्य दे तो गाय ढोर और अधिक धनको प्राप्त करते हैं ॥ १९ ॥ अगस्त्य नक्षत्र यदि परुष अर्थात् रूखा दिखाई दे तो रोग होता है, कपिल वर्ण होनेसे अनावृष्टि, धूम्रवर्ण होनेसे गायढोरोंका अशुभ, स्फुरण अर्थात् कम्पनशाली होनेसे भय, मजीठके समान रंग होनेसे क्षुधा और युद्ध और सूक्ष्म होनेसे नगरका रोध (रुकना) होता है ॥ २० ॥ अगस्त्य नक्षत्र यदि शातकुम्भ अर्थात् चांदीकी समान या स्फटिक (बिल्लौर) की समान शुभ्रवर्ण होकर किरणोंसे पृथ्वीको तृप्त करे तो पृथ्वी प्रचुर अन्नशाली होकर भय और रोगरहित जनोंसे परिपूर्ण हो जाती है ॥ २१ ॥ यदि अगस्त्यतारा उल्का या केतुसे आहत होय तो क्षुधाभय और मरी पड़ती है, जब सूर्य हस्तनक्षत्रमें गमन करे तो अगस्त्य नक्षत्र सब देशोंमें दिखाई देता है और रोहिणीमें सूर्य गमन करे तो सब देशोंमें अस्त हो जाते हैं ॥ २२ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबाद-
निवासि-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

---

१. "शातकुम्भशब्दः सुवर्णेप्ययोर्द्वयोरपि वाचकः अत्र तु रूप्यवाचकः।" इति भट्टोत्पलः ॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः ।

सप्तर्षिचार.

सैकावलीव राजति ससितोत्पलमालिनी सहासेव । नाथवतीव च दिग्यैः कौबेरी सप्तभिर्मुनिभिः ॥ १ ॥ ध्रुवनायकोपदेशान्नरिनर्तीवोत्तरा भ्रमद्भिश्च । यैश्चारमहं तेषां कथयिष्ये वृद्धगर्गमतात् ॥ २ ॥ आसन्मघासु मुनयः शासति पृथ्वीं युधिष्ठिरे नृपतौ । षड्द्विकपञ्चद्वियुतः शककालस्तस्य राज्ञश्च ॥ ३ ॥ एकैकस्मिन्नृक्षे शतं शतं ते चरन्ति वर्षाणाम् । प्रागुत्तरतश्चैते सदोदयन्ते ससाध्वीकाः ॥ ४ ॥ पूर्वे भागे भगवान् मरीचिरपरे स्थितो वसिष्ठोऽस्मात् । तस्याङ्गिरास्ततोऽत्रिस्तस्यासन्नः पुलस्त्यश्च ॥ ५ ॥ पुलहः क्रतुरिति भगवाना-न्नानुक्रमेण पूर्वाद्याः । तत्र वसिष्ठं मुनिवरमुपाश्रितारुन्धती साध्वी ॥ ६ ॥ उल्काशनिधूमाद्यैर्हता विवर्णा विरश्मयो ह्रस्वाः । हन्युः स्वं स्वं वर्गं विपुलाः स्निग्धाश्च तद्वृद्ध्यै ॥ ७ ॥ गन्धर्वदेवदानवमन्त्रौषधिसिद्धयक्षनागानाम् ।

श्वेतकमलकी माला पहिरे कामिनीकी समान उत्तर दिशा, जो सप्तर्षिमण्डलसे, एक लडीकी माला पहिरनेसे शोभायमान, मन्द मुसुकानयुक्त और सनाथासी जान पडती है और ध्रुव नक्षत्ररूप नायकके उपदेशसे इधर उधर भ्रमण करनेवाले सप्तर्षियोंके साथ उत्तर दिशा मानो वारम्वार नाचती है, वृद्ध गर्गजीके मतानुसार उनकी गतिका विषय कहा जायगा ॥ १ ॥ २ ॥ जब राजा युधिष्ठिर पृथ्वीपर राज्य करते थे, तब मघानक्षत्रमें सप्तर्षि थे, शकाब्द अंकके साथ २५२६ मिलानेसे युधिष्ठिरका समय जानना ॥ ३ ॥ वह एक २ नक्षत्रमें शत २ वर्षतक विचरण करते हैं । यह उत्तर-पूर्वदिशामें सदा साध्वी अरुन्धतीके साथ उदय होते हैं ॥ ४ ॥ पूर्वभागमें भगवान् मरीचि, मरीचिकी पश्चिम दिशामें वसिष्ठ, तिनके पीछे अंगिरा, तदनन्तर अत्रि, तिनके निकट पुलस्त्य, पुलह और भगवान् क्रतु क्रमानुसार पूर्व दिशामें विराजमान हैं, तिनमें साध्वी अरुन्धती, मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजीका आश्रय लिये हुए हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥ उल्का, वज्र वा धूमादिसे हत, विवर्ण, रश्मिहीन और ह्रस्व होनेपर वह अपने २ वर्गका नाश करते और विपुल वा स्निग्ध होने पर अपने अपने वर्गको बढाते हैं ॥ ७ ॥ मरीचि किसी प्रकारसे पीडित होय तो

१ श्रीमद्भागवतटीकामें श्रीधरस्वामीके मतके सङ्ग इस सप्तर्षिमण्डलगणनाका भेद है ।

ङ्गिरसो मरीचिर्विज्ञेयो विद्याधराणां च ॥ ८ ॥ शकयवनदरदपारतकाम्बोजां-
स्तापसान् वनोपेतान् । हन्ति वसिष्ठोऽभिहतो विवृद्धिदो रश्मिसम्पन्नः ॥ ९ ॥
आङ्गिरसो ज्ञानयुता धीमन्तो ब्राह्मणाश्च निर्दिष्टाः । अत्रेः कान्तारभवा जलजा-
न्यम्भोनिधिः सरितः ॥ १० ॥ रक्षः पिशाचदानवदैत्यभुजङ्गाः स्मृ-
ताः पुलस्त्यस्य । पुलहस्य तु मूलफलं क्रतोस्तु यज्ञाः सयज्ञभृतः ॥ ११ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां सप्तर्षिचारस्त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः ।

कूर्मविभाग.

नक्षत्रत्रयवर्गैराग्नेयाद्यैर्व्यवस्थितैर्नवधा । भारतवर्षे मध्यात् प्रागादिविभाजि-
ता देशाः ॥ १ ॥ भद्रारिमेदमाण्डव्यसाल्वनीपोज्जिहानसंख्याताः । मरुवत्सघोषया-
मुनसारस्वतमत्स्यमाध्यमिकाः ॥ २ ॥ माथुरकोपज्योतिषधर्मारण्यानि शूरसेनाश्च

[illegible] नाग और विद्याधरोंको [illegible]
[illegible] हों तो [illegible], यवन, दरद, पारत, [illegible]
[illegible] परन्तु [illegible] होकर वृद्धि [illegible]
[illegible] बुद्धिमान पुरुष और ब्राह्मणोंका नाश [illegible]
[illegible] जलजात, समुद्र और नदि[illegible]
[illegible] ॥ १० ॥ पुलस्त्यके [illegible] राक्षस, पिशाच, दानव, दैत्य, [illegible]
[illegible] और [illegible] हों तो [illegible]
[illegible] ॥ ११ ॥

इति [illegible] बृहत्संहितायां [illegible]
[illegible] त्रयोदशोऽध्यायः ॥

[illegible] ॥ १
[illegible]
[illegible] ॥ २ ॥ [illegible]
[illegible]
[illegible]

गौरग्रीवोद्देहिकपाण्डुगुडाश्वत्थपाञ्चालाः ॥ ३ ॥ साकेतकङ्ककुरुकालकोटि-
कुकुराश्च पारियात्रनगः। औदुम्बरकापिष्ठलगजाह्वयाश्चेति मध्यमिदम् ॥ ४ ॥
अथ पूर्वस्यामञ्जनवृषभध्वजपद्ममाल्यवद्गिरयः। व्याघ्रमुखसुह्मकर्वटचान्द्रपुराः
शूर्पकर्णाश्च ॥ ५ ॥ खसमगधशिबिरगिरिमिथिलसमतटोड्राश्ववदनदन्तुरकाः।
प्राग्ज्योतिषलौहित्यक्षीरोदसमुद्रपुरुषादाः ॥ ६ ॥ उदयगिरिभद्रगौडकपौण्ड्रो-
त्कलकाशिमेकलाम्बष्ठाः। एकपदताम्रलिप्तिककोशलका वर्द्धमानश्च ॥ ७ ॥
आग्नेय्यां दिशि कोशलकलिङ्गवङ्गोपवङ्गजठराङ्गाः। शौलिकविदर्भवत्सान्ध्र-
चेदिकाश्चोर्ध्वकण्ठाश्च ॥ ८ ॥ वृषनालिकेरचर्म्मद्वीपा विन्ध्यान्तवासिनस्त्रि-
पुरी। श्मश्रुधरहेमकूटव्यालग्रीवा महाग्रीवाः ॥ ९ ॥ किष्किन्धकण्टकस्थल-
निषादराष्ट्राणि पुरिकदाशार्णाः। सह नग्नपर्णशबरैराश्लेषाद्ये त्रिके देशाः ॥१०॥
अथ दक्षिणेन लङ्का कालाजिनसौरिकीर्णतालिकटाः। गिरिनगरमलयदर्दुरमहे-
न्द्रमालिन्द्यभरुकच्छाः ॥ ११ ॥ कङ्कटङ्कणवनवासिशिबिकफणिकारकोङ्क-
णाभीराः। आकरवेणावन्तकदशपुरगोनर्दकेरलकाः ॥ १२ ॥ कर्णाटमहाट-

पाण्डुगुड, अश्वत्थ, पांचाल, साकेत, कंक, पुरु, कालकोटि, कुकुर, पारियात्र, नग,
औदुम्बर, कापिष्ठल और हस्तिनादेश (३)(४)(५) नक्षत्रमें विराजमान
हैं ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ अनन्तर पहिले अंजन, वृषभध्वज, पद्म, माल्यवद्गिरि, व्याघ्र
मुख, सुह्म, कर्व्वट, चान्द्रपुर, शूर्पकर्ण, खस, मगध, शिबिरगिरि, मिथिल, समतट,
ओड्र, अश्ववदन, दन्तुरक, प्राग्ज्योतिष, लौहित्य, क्षीरोद-समुद्र, पुरुषाद, उदय-
गिरि, भद्रगौडक, पौण्ड्र, उत्कल, काशी, मेकल, अम्बष्ठ, एकपद, ताम्रलिप्तिक,
कोशलक और वर्धमान ये सब देश (६)(७)(८) नक्षत्रमें विराजमान हैं
॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ अग्निकोणमें कोशल, कलिंग, वंग, उपवंग, जठर, अंग, शौलिक,
विदर्भ, वत्स, अन्ध्र, चेदिक, ऊर्ध्वकण्ठ, वृष, नालिकेर, चर्मद्वीप विन्ध्याचलके
निकट, त्रिपुरी, श्मश्रुधर, हेमकूट, व्यालग्रीव, महाग्रीव, किष्किन्धा, कण्टकस्थल,
निषादराष्ट्र, पुरिक, दशार्ण, नग्नपर्ण और शबर ये सब देश आश्लेषादि तीन
नक्षत्रोंमें (९)(१०)(११) विराजमान हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ तदनन्तर
दक्षिणमें लंका, कालाजिन, सौरिकीर्ण, तालिकट, गिरिनगर, मलय, दर्दुर, महेन्द्र,
मरुकच्छ, कंकट, टंकण, वनवासी, शिबिक, फणिकार, कोङ्कण, आभीर, आकर,
वेण, आवन्तक, दशपुर, गोनर्द, केरल, कर्णाट, महाटवी, चित्रकूट, नासिक्य

चित्रकूटनासिक्यकोल्लगिरिचोलाः । क्रौञ्चद्वीपजटाधरकावेर्यो ऋष्यमूक
॥ १३ ॥ वैडूर्यशङ्खमुक्तात्रिवारिचरधर्मपट्टनद्वीपाः । गणराज्यकृष्णवेल्लूरपि
शिकशूर्पाद्रिकुसुमनगाः ॥ १४ ॥ तुम्बवनकार्मणेयकयाम्योदधितापसाश्रम
ऋषिकाः । काञ्ची मरुचीपट्टनचेर्यार्यकसिंहला ऋषभाः ॥ १५ ॥ बलदेवपत्तन
दण्डकावनतिमिङ्गिलाशना भद्राः । कच्छोऽथ कुञ्जरदरी सताम्रपर्णीति विज्ञे
॥ १६ ॥ नैर्ऋत्यां दिशि देशाः पह्लवकाम्बोजसिन्धुसौवीराः । वडवामुखार
वाम्बष्ठकपिलनारीमुखानर्ताः ॥ १७ ॥ फेणगिरियवनमार्गरकर्णप्रावेयपारश
शूद्राः । बर्बरकिरातखण्डक्रव्यास्याभीरचञ्चूकाः ॥ १८ ॥ हेमगिरिसिन्धुका
लकरैवतकसुराष्ट्रबादरद्रविडाः । स्वात्याद्ये भत्रितये ज्ञेयश्च महार्णवोऽत्रैव ॥ १९ ॥
अपरस्यां मणिमान् मेघवान् वनौघः क्षुरार्पणोऽस्तगिरिः । अपरान्तकशान्ति
कहैहयप्रशस्ताद्रिवोक्काणाः ॥ २० ॥ पञ्चनदरमठपारततारक्षितिजृङ्गवैश्यक
नकशकाः । निर्मर्यादा म्लेच्छा ये पश्चिमदिक्स्थितास्ते च ॥ २१ ॥ दिशि पश्चि
मोत्तरस्यां माण्डव्यतुषारतालहलमद्राः । अश्मककुलूतलहडस्त्रीराज्यनृसिंह

[illegible], कोल्लगिरि, जटाधर, कावेरी, ऋष्यमूक, वैडूर्य-शंखमुक्ता [illegible]
[illegible], धर्मपट्टनद्वीप, गणराज्य, कृष्णवेल्लूर, पिशिक, शूर्पाद्रि, कुसु-
मनग, तुम्बवन, कार्मणेयक, दक्षिणसमुद्र, तापसाश्रम, ऋषिक, काञ्ची, मरुचीपट्ट-
न, चेर्य, आर्यक, सिंहल, ऋषभ, बलदेव, पत्तन, दण्डकावन, तिमिङ्गिलाशन, भ-
द्र, कच्छ, कुञ्जरदरी और ताम्रपर्णी आदि देश (१२)(१३)(१४) [illegible]
[illegible] हैं ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ नैर्ऋत्य-
[illegible] पह्लव, काम्बोज, सिन्धु, सौवीर, वडवामुख, आरव, अम्बष्ठ, कपिल, नारीमु-
ख, आनर्त, फेणगिरि, यवन, मार्गर, कर्णप्रावेय, पारशव, शूद्र, बर्बर, किरात,
खण्ड, क्रव्यास्य, आभीर, चञ्चूक, हेमगिरि, सिन्धुकालक, रैवतक, सुराष्ट्र, बादर और द्र-
विड़ [illegible] नक्षत्रमें (१७) १८) (१९) [illegible]
[illegible] १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ पश्चिमदिशामें मणिमान, मेघवान, वनौघ, क्षु-
रार्पण, अस्तगिरि, अपरान्तक, शान्तिक, हैहय, प्रशस्ताद्रि, वोक्काण, पञ्चनद, रम-
ठ, पारत, तारक्षिति, जृङ्ग, वैश्य, कनक, शक और [illegible] म्लेच्छ [illegible]
[illegible] (१८)(१९)(२०) नक्षत्रमें रहते हैं ॥ २० ॥
[illegible] पश्चिमोत्तर दिशामें माण्डव्य, तुषार, ताल, हल, मद्र, अश्मक, कु-

नरास्याः ॥ २२ ॥ वेणुमती फल्गुलुका गुरुहा मरुकुचचर्म्मरङ्गाख्याः । एकविलोचनशूलिकदीर्घग्रीवास्यकेशाश्च ॥ २३ ॥ उत्तरतः कैलासो हिमवान्वसुमान् गिरिर्धनुष्मांश्च । क्रौञ्चो मेरुः कुरवस्तथोत्तराः क्षुद्रमीनाश्च ॥२४॥ कैकयवसातियामुनभोगप्रस्थार्जुनायनाग्नीध्राः । आदर्शान्तर्द्वीपित्रिगर्त्ततुरगाननाश्वमुखाः ॥ २५ ॥ केशधरचिपिटनासिकदासेरकवाटधानशरधानाः । तक्षशिलापुष्कलावतकैलावतकण्ठधानाश्च ॥ २६ ॥ अम्बरमद्रकमालवपौरवकच्छारदण्डपिङ्गलकाः । माणहलहूणकोहलशीतकमाण्डव्यभूतपुराः ॥ २७ ॥ गान्धारयशोवतिहेमतालराजन्यखचरगव्याश्च । यौधेयदासमेयाः श्यामाकाः क्षेमधूर्त्ताश्च ॥ २८ ॥ ऐशान्यां मेरुकनष्टराज्यपशुपालकीरकाश्मीराः । अभिसारदरदतङ्गणकुलूतसैरिन्ध्रवनराष्ट्राः ॥ २९ ॥ ब्रह्मपुरदार्वडामरवनराज्यकिरातचीनकौणिन्दाः । भल्लापलोलजटासुरकुनठखसघोषकुचिकाख्याः ॥ ३० ॥ एकचरणानुविश्वाः सुवर्णभूर्वसुवनं दिविष्ठाश्च । पौरवचीरनिवसनत्रिनेत्रमुञ्जाद्रिगन्धर्वाः ॥ ३१ ॥ वर्गैराग्नेयाद्यैः क्रूरग्रहपीडितैः क्रमेण नृपाः । पाञ्चालो माग-

---

लहड, स्त्रीराज्य, नृसिंहवन, खस्त, वेणुमती, फल्गुलुका, गुरुहा, मरुकुत्स, चमरंग, एकविलोचन, शूलिक, दीर्घग्रीव और अस्यकेश ये सब देश (२१) (२२) (२३) नक्षत्रमें विद्यमान हैं उत्तरदिशामें कैलास, हिमवान्, वसुमान्, धनुष्मान्, क्रौंच, मेरुगिरि, उत्तरकुरु, क्षुद्रमीन, कैकय, वसाति, यामुन, भोगप्रस्थ, अर्जुनायन, अग्नीध्र, आदर्श, आन्तर्द्वीपी, त्रिगर्त, तुरगानन, अश्वमुख, केशधर, चिपिटनासिक, दासेरक, वाटधान, सरधान, तक्षशिल, पुष्कलावत, कैलावत, कण्ठधान, अम्बर, मद्रक, मालव, पौरव, कच्छार, दन्तपिंगलक, मान, हल, हूण, कोहल, शीतक, माण्डव्य, भूतपुर, गान्धार, यशोवति, हेमताल, राजन्य, खचर, गव्य, यौधेय, दासमेय, श्यामक और क्षेमधूर्तादि देश (२४) (२५) (२६) नक्षत्रमें विराजमान हैं ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ ईशानकोणमें मेरुक, नष्टराज्य, पशुपाल, कीर, काश्मीर, अभिसार, दरद, तंगण, कुलूत, सैरिन्ध्र, वनराष्ट्र, ब्रह्मपुर, दार्वडामर, वनराज्य, किरात, चीन, कौणिन्द, भल्लप, लोलजट, सुरकुनठ, खस, घोष, कुचिक, एकचरण, अनुविश्व, सुवर्णभू, वसुवन, दिविष्ठ, पौरव, चीरनिवसन, त्रिनेत्र, मुञ्जाद्रि और गन्धर्वादि समस्त देश (२७) (१) (२) नक्षत्रमें रहते हैं ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ आग्नेयादि

धिकः कालिंगश्च क्षयं यान्ति ॥ ३२॥ आवन्तोऽथानर्तो मृत्युं चायाति सिन्धु-सौवीरः । राजा च हारहौरो मद्रेशोऽन्यश्च कौणिन्दः ॥ ३३ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां कूर्मविभागो नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥१४॥

अथ पंचदशोऽध्यायः ।

नक्षत्रव्यूह.

आग्नेये सितकुसुमाहिताग्निमन्त्रज्ञसूत्रभाष्यज्ञाः । आकरिकनापितद्विजघटकारपुरोहिताब्दज्ञाः ॥१॥ रोहिण्यां सुव्रतपण्यनृपधनियोगयुक्तशाकटिकाः । गोवृषजलचरकर्षकशिलोच्चयैश्वर्यसम्पन्नाः ॥ २ ॥ मृगशिरसि सुरभिवस्त्राब्जकुसुमफलरत्नवनचरविहंगाः । मृगसोमपीथिगान्धर्वकामुका लेखहाराश्च ॥ ३ ॥ रौद्रे वधबन्धानृतपरदारस्तेयशाठ्यभेदरताः । तुषधान्यतीक्ष्णमन्त्राभिचारवेतालकर्मज्ञाः ॥ ४ ॥ आदित्ये सत्यौदार्यशौचकुलरूपधीयशोऽर्थयुताः । उत्तम

समस्त वर्ग पापग्रहादिसे पीडित होनेपर यथाक्रमसे पांचाल, मागधिक, कालिंग, आवन्त्य, आनर्त, सिन्धुसौवीर, हारहौर, मद्र और कौणिन्द देशके राजाओंका नाश होता है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य–पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

सफेद फूल, अग्निहोत्री, मंत्र जाननेवाले, सूत्रकी भाषा जाननेवाले, आकरिक, नाई, द्विज, कुंभार, पुरोहित और अब्दज्ञ (वर्षके फलका जाननेवाला) कृत्तिका नक्षत्रके आधीन हैं ॥ १ ॥ सुव्रत, पण्य, राजा, धनी, योगी, शाकटिक, गाय, बैल, जलचर, किसान, पर्वत और सम्पत्तिमान् पुरुष रोहिणीके अधिकारमें हैं ॥ २ ॥ सुगंधिवस्त्र, पद्म, कुसुम, फल, रत्न, वनचर, विहंग, मृग, यज्ञमें सोमरस पीनेवाले, गन्धर्व, कामी और पत्रवाहकगण (डाँकिये) मृगशिराके वश हैं ॥ ३ ॥ आर्द्रा नक्षत्रके वशमें, वध, बन्ध, मिथ्या, परदारहरण, शाठ्य और भेद करनेवाले पुरुष, भूसीधान्यमें तीक्ष्ण मंत्रकरके उच्चाटन मरणादि अभिचार और वेतालकर्म जाननेवाले वर्तमान हैं ॥ ४ ॥ पुनर्वसुमें उत्तम धान्य, सत्य, उदारता, शौच, कुलरूप, बुद्धि, यश, अर्थयुक्त, सेवानियुक्त शिल्पजनसमन्वित बनिये

चान्यं वणिजः सेवाभिरताः सशिल्पिजनाः ॥ ५ ॥ पुष्ये यवगोधूमाः शालीक्षुवनानि मन्त्रिणो भूपाः । सलिलोपजीविनः साधवश्च यज्ञेष्टिसक्ताश्च ॥ ६ ॥ अहिदेवे कृत्रिमकन्दमूलफलकीटपन्नगविषाणि । परधनहरणाभिरतास्तुषधान्यं सर्वभिषजश्च ॥ ७ ॥ पित्र्ये धनधान्याढ्याः कोष्ठागाराणि पर्वताश्रयिणः । पितृभक्तवणिक्शूराः क्रव्यादाः स्त्रीद्विषो मनुजाः ॥ ८ ॥ प्राक्फल्गुनीषु नटयुवतिसुभगगान्धर्वशिल्पिपण्यानि । कर्पासलवणमाक्षिकतैलानि कुमारकाश्चापि ॥९॥ आर्यम्णे मार्दवशौचविनयपाषण्डिदानशास्त्ररताः। शोभनधान्यमहाधनधर्मानुरताः समनुजेन्द्राः ॥१०॥ हस्ते तस्करकुञ्जररथिकमहामात्रशिल्पिपण्यानि । तुषधान्यं श्रुतयुक्ता वणिजस्तेजोयुताश्चात्र ॥११॥ त्वाष्ट्रे भूषणमणिरागलेख्यगान्धर्वगन्धयुक्तिज्ञाः । गणितपटुतन्तुवायाः शालाक्या राजधान्यानि ॥१२॥ स्वातौ खगमृगतुरगा वणिजो धान्यानि वातबहुलानि । अस्थिरसौहृदलघुसत्त्वतापसाः पण्यकुशलाश्च ॥ १३ ॥ इन्द्राग्निदैवते रक्तपुष्पफलशाखिनः

विराजमान हैं ॥ ५ ॥ जौ, गेहूं, सब प्रकारकी शाली, गन्ने, मंत्र जाननेवाले, सब राजा, जलसे आजीविका करनेवाले और यज्ञकी क्रियामें आसक्त हुए साधुलोग पुष्यनक्षत्रमें हैं ॥ ६ ॥ आश्लेषाके अधिकारमें बनाये हुए कन्द, मूल, फल, कीडे, पन्नग (सर्प), विष, तुषधान्य, पराये धनको हरण करनेवाले पुरुष और समस्त वैद्य हैं ॥ ७ ॥ मघानक्षत्रके अधिकारमें धान्यागार और समस्त ग्रह, धन धान्ययुक्त पर्वतके रहनेवाले पितृभक्त बनिये, शूर, क्रव्याद और स्त्रियोंसे द्वेष करनेवाले मनुष्यगण हैं ॥ ८ ॥ नट, युवती, सुभगगायक, शिल्पी (कारीगर), कपास, नोंन, मधु, तेल और कुमारकगण पूर्वाफाल्गुनीके वश हैं ॥ ९ ॥ उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रके अधिकारमें मृदुता, पवित्रता, विनय, नास्तिकपन, दान और शास्त्ररत पुरुष, राजा, सुन्दर धान्य और स्वधर्मानुरागी महाजन लोग विराजमान हैं ॥ १० ॥ तस्कर, कुंजर, रथी, मंत्री, शिल्पी, पण्य, तुषधान्य, वेदज्ञ और ज्योतिष जाननेवाले, वणिक हस्तनक्षत्रके वशमें हैं ॥ ११ ॥ चित्राके वशमें भूषण, मणि, अंगराग, लेख्य, गंधर्वव्यवहार, गन्धयुक्त जाननेवाले विज्ञानी, गणितमें निपुण लोग और जुलाहे वर्तमान हैं ॥ १२ ॥ स्वातीमें खग, मृग, घोडे, धान्य बहुतसी हवावाले स्थान, पण्यकुशल बनिये और जिनकी मित्रता स्थिर नहीं है ऐसे लघुस्वभाववाले तपस्वी लोग वास करते हैं ॥ १३ ॥ वि-

सतिलमुद्गाः । कर्पासमाषचणकाः पुरन्दरहुताशभक्ताश्च ॥ १४ ॥ मैत्रे शौर्य-
समेता गणनायकसाधुगोष्ठियानरताः । ये साधवश्च लोके सर्वं च शरत्समुत्-
न्नम् ॥ १५ ॥ पौरन्दरेऽतिशूराः कुलवित्तयशोऽन्विताः परस्वहृतः । विजि-
गीषवो नरेन्द्राः सेनानां चापि नेतारः ॥ १६ ॥ मूले भेषजभिषजो गणमुख्याः
कुसुममूलफलवार्ताः । बीजान्यतिधनयुक्ताः फलमूलैर्ये च वर्त्तन्ते ॥ १७ ॥
आप्ये मृदवो जलमार्गगामिनः सत्यशौचधनयुक्ताः । सेतुकरवारिजीवकफल-
कुसुमान्यम्बुजातानि ॥ १८ ॥ विश्वेश्वरे महामात्रमल्लकरितुरगदेवताभक्ताः ।
स्थावरयोधा भोगान्विताश्च ये चौजसा युक्ताः ॥ १९ ॥ श्रवणे मायापटवो नित्यो-
द्युक्ताश्च कर्मसु समर्थाः । उत्साहिनः सधर्मा भागवताः सत्यवचनाश्च ॥ २० ॥
वसुभे मानोन्मुक्ताः क्लीबाश्चलसौहृदाः स्त्रियां द्वेष्याः । दानाभिरता बहुवित्त-
युताः शमपराश्च नराः ॥ २१ ॥ वरुणेशे पाशिकमत्स्यबन्धजलजानि जलचर-
जीवाः । सौकरिकरजकशौण्डिकशाकुनिकाश्चापि वर्गेऽस्मिन् ॥ २२ ॥ आजे

फूल फलवाली शाखायें, तिल, मूंग, कपास, उर्द, चने, इन्द्र और अग्निके भक्त
(पारसी) हैं ॥ १४ ॥ अनुराधामें शूरतासम्पन्न, गणनायक, साधु समूहमें जा-
नेवाले साधुलोग वर्त्तमान हैं और शरद ऋतुके उत्पन्न हुए समस्त द्रव्य हैं ॥१५॥
ज्येष्ठानक्षत्रके अधिकारमें कुल वित्त यशवाले, पराया धन हरण करनेवाले, अति-
शूरगण, विजयकी इच्छा करनेवाले राजा और समस्त सेनापति लोग हैं ॥ १६ ॥
मूलमें औषध, वैद्य, गणमुख्य लोग, फूल, फल, मूल, पत्ते, बीज और फल मूलसे
जीविका करनेवाले और अतिधनवान् पुरुष विद्यमान हैं ॥ १७ ॥ पूर्वाषाढमें
मृदु, जलपथगामी और सत्यशौचधनयुक्त मनुष्य, पुल बनानेवाले, नहर काटने-
वाले, सेवक फल समस्त कुसुम और समस्त पद्म हैं ॥ १८ ॥ मंत्री, मल्लयोधा,
हाथी, घोडे, तुरंग और देवताके भक्त, भोगवान्, तेजयुक्त, स्थावर, वीर लोग उत्त-
राषाढामें हैं ॥ १९ ॥ श्रवणके वशमें माया जाननेमें चतुर, नित्य उद्योग करने-
वाला, कर्ममें सामर्थ्य रखनेवाला, उत्साहयुक्त, धर्मपरायण, भगवद्भक्त और सत्य-
वादी लोग हैं ॥ २० ॥ धनिष्ठामें मान छोडे हुए हीजडे, चंचल सुहृदताके,
स्त्रीद्वेषी, दानरत, बहुतसे धनवाले और शान्तिपरायण राजालोग वर्तमान हैं
॥ २१ ॥ शतभिषामें व्याधे मत्स्यबन्ध, जलज जलचरोंसे आजीविका करनेवाले,
सूअर पालनेवाले, धोबी, कल्वार और शाकुनिकगण हैं ॥ २२ ॥ पूर्वाभाद्रपदमें

तस्करपशुपालहिंस्रकीनाशनीचशठचेष्टाः । धर्मव्रतैर्विरहिता नियुद्धकुशलाश्च मनुजाः ॥ २३ ॥ आहिर्बुध्न्ये विप्राः क्रतुदानतपोयुता महाविभवाः । आश्रमिणः पाषण्डा नरेश्वराः सारधान्यं च ॥ २४ ॥ पौष्णे सलिलजफलकुसुमलवणमणिशंखमौक्तिकाब्जानि । सुरभिकुसुमानि गन्धा वणिजो नौकर्णधाराश्च ॥ २५ ॥ अश्विन्यामश्वहराः सेनापतिवैद्यसेवकास्तुरगाः । तुरगारोहाश्च वणिग्रूपोपेतास्तुरगरक्षाः ॥ २६ ॥ याम्येऽसृक्पिशितभुजः क्रूरा वधबन्धताडनासक्ताः । तुषधान्यं नीचकुलोद्भवा विहीनाश्च सत्त्वेन ॥ २७ ॥ पूर्वात्रयं सानलमग्रजानां राज्ञां तु पुष्येण सहोत्तराणि । सपौष्णमैत्रं पितृदैवतं च प्रजापतेर्भं च कृषीवलानाम् ॥ २८ ॥ आदित्यहस्ताभिजिदाश्विनानि वणिग्जनानां प्रवदन्ति भानि । मूलत्रिनेत्रानिलवारुणानि भान्युग्रजातेः प्रभविष्णुतायाम् ॥ २९ ॥ सौम्येन्द्रचित्रावसुदेवतानि सेवाजनस्वाम्यमुपागतानि । सार्पं विशाखा श्रवणो भरण्यश्चण्डालजातेरिति निर्दिशन्ति ॥ ३० ॥ रविरविसुतभोगमागतं क्षितिसुतभेदनवक्रदूषितम् । ग्रहणगतमथोल्कया हतं नियतमुषाकरपीडितं च यत् ॥ ३१ ॥

तस्कर, पशुपालक, हिंसा करनेवाले, कीनाश, नीच और शठ चेष्टावाले, धर्मव्रतहीन, मल्लयुद्ध करनेमें चतुरलोग वास करते हैं ॥ २३ ॥ उत्तराभाद्रपदानक्षत्रमें यज्ञ दान और तपवान् महाविभववाले, आश्रमी राजा लोग, ब्राह्मण, पाखण्डी और श्रेष्ठ धान्य विराजमान हैं ॥ २४ ॥ रेवतीके अधिकारमें जलसे उत्पन्न हुए फल, फूल, लवण, मणि, शंख, मुक्ता, पद्म, सर्व प्रकारके सुगन्धित फूल, गन्ध, द्रव्य, वनिये और नावके खेवट लोग हैं ॥ २५ ॥ अश्विनीमें अश्वहर लोग, सेनापति, वैद्य, सेवक, घोडे, घुडसवार, रईस, वनिये और रूपवान् पुरुष हैं ॥ २६ ॥ भरणीके वशमें तुषधान्य रक्त मांस खानेवाले, क्रूर, वध, बन्ध ताडना करनेमें आसक्त और सद्गुणहीन लोग रहते हैं ॥ २७ ॥ पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा और कृत्तिकानक्षत्र ब्राह्मणका अधिकारी है; उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा और पुष्यनक्षत्र क्षत्रियोंका है; रेवती, अनुराधा, मघा और अश्विनीनक्षत्र वनियोंका अधिकारी कहा जाता है; मूल, आर्द्रा, स्वाती और शतभिषा उग्रजातिके प्रभु हैं ॥ २८ ॥ २९ ॥ मृगशिरा, ज्येष्ठा, चित्रा और धनिष्ठा नक्षत्र सेवकोंके स्वामी हैं । आश्लेषा, विशाखा, श्रवण और भरणी चाण्डाल जातिके स्वामी हैं ॥ ३० ॥ जो नक्षत्र रवि और शनिसे मुक्त हैं, मंगलके भेदन या वक्रसे

तदुपहतमिति प्रचक्षते प्रकृतिविपर्य्ययजातमेव वा । निगदितपरिवर्गदूषणं कवि-नाविपर्य्ययगं समृद्धये ॥ ३२ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां नक्षत्रव्यूहः पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

अथ षोडशोऽध्यायः ।

प्राङ्नर्मदार्धशोणोड्रवङ्गसुह्माः कलिङ्गवाह्लीकाः । शकयवनमगधशबरप्राग्ज्योतिषचीनकाम्बोजाः ॥ १ ॥ मेकलकिरातविटका बहिरन्तःशैलजाः पुलिन्दाश्च । द्रविडानां प्रागर्द्धं दक्षिणकूलं च यमुनायाः ॥ २ ॥ चम्पोदुम्बरकौशाम्बिचेदिविन्ध्याटवीकलिङ्गाश्च । पुण्ड्रा गोलांगूलश्रीपर्वतवर्द्धमानाश्च ॥ ३ ॥ इक्षुमतीत्यथ तस्करपारतकान्तारगोपबीजानाम् । तुषधान्यकटुकतरुकनकदहनविषसमरशूराणाम् ॥ ४ ॥ भेषजभिषक्चतुष्पदकृषिकरनृपहिंस्रयायिचौराणाम् ॥ व्यालारण्ययशोयुततीक्ष्णानां भास्करः स्वामी ॥ ५ ॥ गिरिसलिलदुर्गकौशलभरुकच्छसमुद्ररोमकतुषाराः । वनवासितङ्गणहलस्त्रीराज्यमहार्ण-

---

दूषित हैं, मरणगत या उल्कासे हत हैं, अथवा सूर्यकिरणसे सदा पीडित होते हैं, वह उपहत अथवा प्रकृति विपर्ययगत या वारिवर्गदूषण अथवा विपर्ययगत क[illegible] ते हैं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबाद-[illegible]बलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

नर्मदाके पूर्वार्द्ध, शोण, ओड्र, बंग, सुह्म, वाह्लिक, शक, यवन, मगध, शबर, प्राग्ज्योतिष, चीन, काम्बोज, मेकल, किरात, विटक, पर्वतके भीतर और बाहिर पुलिन्द, द्रविडका पूर्वार्द्ध, यमुनाका दक्षिण किनारा, चम्पा, उदुम्बर, कौशाम्बी, चेदि, विन्ध्याटवी, कलिंग, पुण्ड्र, गोलांगुल, श्रीपर्वत, वर्द्धमान और इक्षुमती ये सम्पूर्ण देश और तस्कर, पारत, कान्तार, गोपबीज, तुषधान्य, कटु वृक्ष, कनक, अग्नि, विष, समरशूर, औषध, वैद्य, चतुष्पद, किसान, नृप, हिंस्र, चौर, व्याल, अरण्य, यशस्वी और तीक्ष्ण [illegible] इनका स्वामी सूर्य है ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ पर्वत, जल, दुर्ग, कौशल, भरुकच्छ, समुद्र, रोमक, तुषार, [illegible], तंगण, हल, स्त्रीराज्य, महार्णव, [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible],

द्विपाः ॥ ६ ॥ मधुररसकुसुमफलसलिललवणमणिशंखमौक्तिकाब्जानाम्। शालियवौषधिगोधूमसोमपाक्रन्दविप्राणाम् ॥ ७ ॥ सितसुभगतुरगरतिकरयुवतिचमूनाथभोज्यवस्त्राणाम्। शृङ्गिनिशाचरकर्षकयज्ञविदां चाधिपश्चन्द्रः ॥ ८ ॥ शोणस्य नर्मदाया भीमरथायाश्च पश्चिमार्द्धस्थाः। निर्विन्ध्या वेत्रवती शिप्रा गोदावरी वेणा ॥ ९ ॥ मन्दाकिनी पयोष्णी महानदी सिन्धुमालतीपाराः। उत्तरपाण्ड्यमहेन्द्राद्रिविन्ध्यमलयोपगाश्चोलाः ॥ १० ॥ द्रविडविदेहान्ध्राश्मकभासापुरकौङ्कणा समन्त्रिपिकाः। कुन्तलकेरलदण्डककान्तिपुरम्लेच्छसङ्करजाः ॥ ११ ॥ नासिक्यभोगवर्द्धनविराटविन्ध्याद्रिपार्श्वगा देशाः। ये च पिबन्ति सुतोयां तापीं ये चापि गोमतीसलिलम् ॥ १२ ॥ नागरकृषिकरपारतहुताशनाजीविशस्त्रवार्तानाम्। आटविकदुर्गकर्वटवधकनृशंसावलिप्तानाम् ॥ १३ ॥ नरपतिकुमारकुञ्जरदाम्भिकडिम्भाभिघातपशुपानाम्। रक्तफलकुसुमविद्रुमचमूपगुडमद्यतीक्ष्णानाम् ॥ १४ ॥ कोशभवनाग्निहोत्रिकधात्वाकरशाक्यभिक्षुचौराणाम्। शठदीर्घवैरबह्वाशिनां च वसुधासुतोऽधिपतिः ॥ १५ ॥ लौहित्यः सिन्धुनदः सरयूर्गम्भीरिका रथाह्वा च। गङ्गाकौशिक्याद्याः सरितो वैदेहका-

---

शंख, मुक्ता, पद्म, शालि, यव (जौ), दवा, गेहूं, यज्ञमें सोमपान करनेवाले, राजाके वश हुए ब्राह्मणगण, सितसुभग तुरंग, रतकरी युवती, सेनापति, भोज्य, वस्त्र, शृंगी, पशु, निशाचर, किसान और यज्ञ जाननेवालोंका स्वामी चन्द्रमा है ॥ ६ ॥ ७ ॥ ॥ ८ ॥ शोण, नर्मदा और भीमरथाके आधी पश्चिम दिशाके सब राजा, निर्विंध्या, वेत्रवती, गोदावरी, शिप्रा, वेणा, मन्दाकिनी, पयोष्णी, महानदी, सिन्धु, मालती, पारादिनदी, उत्तर आरण्य, महेन्द्रादि, विन्ध्य, मलयका निकटवर्ती भाग, चोल, द्रविड, विदेह, अन्ध्र, अश्मक, भासापुर, कोंकण, समन्त्रिपिक, कुंतल, केरल, दण्डक, कान्तिपुर, म्लेच्छ, संकरज, नासिक्य, भोगवर्द्धन, तर्कराट, विन्ध्याचलके निकटके देश लोग तापती और गोमती नदीका मधुर जल पीते हैं, नगरवासी, किसान, पारत अग्निसे आजीविका करनेवाले, शस्त्रसे आजीविका करनेवाले, वनचारी, दुर्ग, क्षुद्रनगर, घातक, गर्वित, नरपति, कुमार, हस्ती, दांभिक, बालक, अभियात, पशुपालक, रक्तफल और फूल, मूंगा, सेनापति, गुण, मद, तीक्ष्णकोश, भवन, अग्निहोत्री लोग, धातुओंकी आकर, जन, भिक्षु, चोर, शठ, दीर्घवैर और भोजन बहुतसा करनेवालोंका स्वामी मंगल है ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ ॥ १५ ॥ लौहित्य और सिन्धुनद, सरयू, गम्भीरिका, रथाह्वा, गंगा और कौशिकी

म्भोजाः ॥ १६ ॥ मथुरायाः पूर्वार्द्धं हिमवद्गोमन्तचित्रकूटस्थाः । सौराष्ट्र-
जलमार्गपण्यबिलपर्वताश्रयिणः ॥ १७ ॥ उदपानयन्त्रगान्धर्वलेख्यमणिराग-
गन्धयुक्तिविदः । आलेख्यशब्दगणितप्रसाधकायुष्यशिल्पज्ञाः ॥ १८ ॥ चर-
पुरुषकुहकजीवकशिशुकविशठसूचकाभिचाररताः । दूतनपुंसकहास्यज्ञभूते-
न्द्रजालज्ञाः ॥ १९ ॥ आरक्षकनटनर्तकघृततैलस्नेहबीजतिक्तानि । व्रतचा-
रिरसायनकुशलवेसराश्चन्द्रपुत्रस्य ॥ २० ॥ सिन्धुनदपूर्वभागो मथुरापश्चार्द्ध-
भरतसौवीराः । स्रुघ्नोदीच्यविपाशासरिच्छतद्रुरमठसाल्वाः ॥ २१ ॥ त्रैगर्तपौर-
वाम्बष्ठपारता वाटधानयौधेयाः । सारस्वतार्जुनायनमत्स्यार्द्धग्रामराष्ट्राणि ॥ २२ ॥
हस्त्यश्वपुरोहितभूपमन्त्रिमाङ्गल्यपौष्टिकासक्ताः । कारुण्यसत्यशौचव्रतविद्या-
दानधर्मयुताः ॥ २३ ॥ पौरमहाधनशब्दार्थवेदविदुषोऽभिचारनीतिज्ञाः । मनुजे-
श्वरोपकरणं छत्रध्वजचामराद्यं च ॥ २४ ॥ शैलेयकमांसीतगरकुष्ठरसाञ्ज-
नानि सैन्धवम् । मधुररसमधूच्छिष्टानि चोरकश्चेति जीवस्य ॥ २५ ॥ तक्ष-
शिलमार्त्तिकावतबहुगिरिगान्धारपुष्कलावतकाः । प्रस्थलमालवकैकयदाशार्णो-

---

म्लेच्छ सब जातियें, काम्बोज, वैदेह, मथुराका पूर्वार्द्ध, हिमालय, गोमन्त और चित्रकूटमें सब लोग, सेतु, जलमार्ग, पण्य, बिल और पहाड। जीवगण, कुँआ, [illegible], चित्र, शब्द और गणितका जाननेवाला, चरपुरुष, कुहकजीवक, बालक, कवि, शठ, सूचक (चुगली), अभिचाररत, दूत, हीजडा, मसखरा, भूत और इन्द्रजालका जाननेवाला, रक्षक, नट नाचनेवाला, घी, तेल, स्नेह, बीज, तिक्त, [illegible], रसायन, [illegible] और निषाद इन सबका स्वामी बुध है ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ सिन्धुनदका पूर्वभाग, मथुराका पिछला भाग, भरत, सौवीर, स्रुघ्न, उत्तर दिशा, विपाशा और शतद्रुनदी, रमठ, शाल्व, त्रैगर्त, पौरव, अम्बष्ठ, पारत, वाटधान, यौधेय, सारस्वत, आर्जुनायन और मत्स्य देशका आधा भाग और सब ग्राम, हाथी, घोडा, पुरोहित, राजा, मंत्री, मंगल और पौष्टिक कर्ममें आसक्त, जन और महाधन, शब्दार्थ, वेद जाननेवाले, अभिचार और नीतिज्ञ, छत्र, ध्वज, चामरादि राजाके उपकरणद्रव्य, शैलज ([illegible]), [illegible] ([illegible]), तगर, कूट, पारा, सेंधा, [illegible] [illegible] इन सबका स्वामी बृहस्पति है ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ तक्षशिला, मार्तिकावत, बहुगिरि, गान्धार, पुष्-

शीनराः शिबयः ॥ २६ ॥ ये च पिबन्ति वितस्तामिरावतीं चन्द्रभागसरितं च । रथरजताकरकुञ्जरतुरगमहामात्रधनयुक्ताः ॥ २७ ॥ सुरभिकुसुमानुलेपनमणिवज्रविभूषणाम्बुरुहशय्याः । वरतरुणयुवतिकामोपकरणमृष्टान्नमधुरभुजः ॥ २८ ॥ उद्यानसलिलकामुकयशःसुखौदार्यरूपसम्पन्नाः । विद्वदमात्यवणिग्जनघटकृच्चित्राण्डजास्त्रिफलाः ॥ २९ ॥ कौशेयपट्टकम्बलपत्रौर्णिकरोध्रपत्रचोचानि । जातीफलागुरुवचापिप्पल्यश्चन्दनं च भृगोः ॥ ३० ॥ आनर्तार्बुदपुष्करसौराष्ट्राभीरशूद्ररैवतकाः । नष्टा यस्मिन्देशे सरस्वती पश्चिमो देशः ॥ ३१ ॥ कुरुभूमिजाः प्रभासं विदिशा वेदस्मृती महीतटजाः । खलमलिननीचतैलिकविहीनसत्त्वोपहतपुंस्त्वाः ॥ ३२ ॥ बन्धनशाकुनिकाशुचिकैवर्तविरूपवृद्धसौकरिकाः । गणपूज्यस्खलितव्रतशबरपुलिन्दार्थपरिहीनाः ॥ ३३ ॥ कटुतिक्तरसायनविधवयोषितो भुजगतस्करमहिष्यः । खरकरभचणकवातुलनिष्पावाश्चार्कपुत्रस्य ॥ ३४ ॥ गिरिशिखरकन्दरदरीविनिविष्टा म्लेच्छजातयः शूद्राः । गोमायुभक्षशूलिकवोक्काणाश्वमुखविकलाङ्गाः ॥ ३५ ॥ कुलपांसनहि-

---

खसत, मरुथल, मालव, कैकय, दाशार्ण, उशीनर और शिबिदेश, जो लोग वितस्ता, इरावती और चन्द्रभागा नदियोंका जल पीते हैं, रथ, चांदी, खानि, कुंजर, घोडा, महावत, धनयुक्त सुगंधित फूल, उबटन, मणिवज्रादि विभूषण, पद्म, सेज, उत्तम नवीन युवती, कामके सामान, शोधित अन्न, मधुर द्रव्य खानेवाले पुरुष, बगीचे, जल, कामी लोग, यश सुख उदारता और रूपवान् विद्वान्, मंत्री, बनियां, कुंभार, चित्राण्डज, त्रिफला (हर, बहेडा, आमला), रेशमीन कपडे, कम्बल, शण, पत्र, ऊन, लोधके पत्ते, चोच, जायफल, अगर, वच और चन्दन यह सब शुक्रके आधीन हैं ॥२६॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ आनर्त, अर्बुद, पुष्कर, सौराष्ट्र, आभीर शूद्र, रैवतक, जिस देशमें सरस्वती नदी दिखाई नहीं देती, पश्चिमदेश, कुरुक्षेत्र, प्रभास, विदिशा, वेदस्मृती, महीके किनारेवाले, खल, दुष्ट, मलीन, नीच, तेली, सत्त्वहीन, जिसका पुरुषपन नष्ट हो गया है, बन्धक, व्याध, अपवित्र, केवट, कुरूप वृद्ध, सूअरपाल, गणपूज्य, जिनका व्रत छूट गया है, शबर, पुलिन्द, दरिद्र, कटु, तिक्त, रसायन, विधवा स्त्री, सर्प, तस्कर, भैंस, गधा, करभ, चना, मटर और कठंगर (भुसी) ये सब वस्तुयें शनिके स्वाधीन हैं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ पर्वतके शिखर, कन्दर, दरियोंमें रहनेवाले म्लेच्छजातियां, शूद्र, गीदड, भक्ष, शूली, वोक्काण, अश्वमुख, विकलांग, कुलांगार, हिंसक, [illegible]

सकृतघ्नचौरनिःसत्यशौचदानाश्च । खरचरनियुद्धवित्तीव्ररोषगर्भाशया नीचाः
॥ ३६॥ उपहतदाम्भिकराक्षसनिद्राबहुलाश्च जन्तवः सर्वे । धर्मेण च सन्त्यक्ता
माषतिलाश्चार्कशशिशत्रोः ॥ ३७ ॥ गिरिदुर्गपह्लवश्वेतहूणचोलावगाणमरु
चीनाः । प्रत्यन्तधनिमहेच्छव्यवसायपराक्रमोपेताः ॥ ३८ ॥ परदारविवादरताः
पररन्ध्रकुतूहला मदोत्सिक्ताः । मूर्खा धार्मिकाविजिगीषवश्च केतोः समाख्याताः
॥ ३९ ॥ उदयसमये यः स्निग्धांशुर्महान् प्रकृतिस्थितो यदि च न हतो निर्घा
तोल्कारजोग्रहमर्दनैः । स्वभवनगतः स्वोच्चप्राप्तः शुभग्रहवीक्षितः स भवति
शिवस्तेषां येषां प्रभुः परिकीर्तितः ॥ ४० ॥ अभिहितविपरीतलक्षणैः क्षयमु
पगच्छति तत्परिग्रहः । डमरभयगदातुरा जना नरपतयश्च भवन्ति दुःखिताः
॥ ४१ ॥ यदि न रिपुकृतं भयं नृपाणां स्वसुतकृतं नियमादमात्यजं वा । भवति
जनपदस्य चाप्यवृष्ट्या गमनमपूर्वपुराद्रिनिम्नगासु ॥ ४२ ॥
इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां ग्रहभक्तयो नाम षोडशोऽध्यायः॥१६

और दानरहित, खचर, मल्लयुद्ध जाननेवाले, तीव्रदोष युक्त, नीच, उपहत, दंभी,
राक्षस, बहुत सोनेवाले और धर्महीन जन्तु, उर्द और तिल राहुके वश हैं ॥ ३५ ।
॥ ३६ ॥ ३७ ॥ पहाडी किला, श्वेत, हूण, चोल, अवगान, मरु, चीन, प्रत्यन्त
देश, धनी, महेच्छका व्यापार करनेवाले, पराक्रमयुक्त, पराई स्त्रीमें रत, झगडाल,
पराण्डक, कुतूहली, मदगर्वित, मूर्ख और धार्मिक, विजयकी इच्छा करनेवाले
केतुकी आधीन हैं ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ जो ग्रह स्वाभाविक महान्, स्निग्धांशु और
निर्घात, उल्का, धूरि या ग्रहमर्दनसे हत नहीं है, स्वभवनगत, स्वोच्चप्राप्त और शुभग्र
हसे देख जाकर उदय होते हैं, वह जिनके स्वामी कहलाते हैं उनका मंगल करते हैं
॥ ४० ॥ उक्त विपरीत लक्षणों करके ग्रहोंके अधिकार किये सब द्रव्य क्षयको
प्राप्त होते हैं, और तिस कालमें आक्रमण करनेमें डरपोक गदातुर जन और राजा
अत्यन्त दुःखित होते हैं ॥ ४१ ॥ यदि राजाओंका शत्रुका अपने पुत्रका य
मंत्रीका किया हुआ अभय न हो; अथवा पृथ्वीमें अनावृष्टि न हो तो नियमके
वशसे अपूर्व पुर पर्वत और नदियोंमें गमन करना उचित है ॥ ४२ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवा-
स्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

याम्याकन्दो नागरयायिग्रहाश्चैव ॥ ८ ॥ दक्षिणदिक्स्थः परुषो वेपथुरप्रा सन्निवृत्तोऽणुः । अधिरूढो विकृतो निष्प्रभो विवर्णश्च यः स जितः ॥९॥ उक्तविपरीतलक्षणसम्पन्नो जयगतो विनिर्दिष्टः । विपुलः स्निग्धो द्युतिमा दक्षिणदिक्स्थोऽपि जययुक्तः ॥ १० ॥ द्वावपि मयूखयुक्तौ विपुलौ स्नि समागमे भवतः । तत्रान्योऽन्यप्रीतिर्विपरीतावात्मपक्षघ्नौ ॥ ११ ॥ युद्धं स गमो वा यद्यव्यक्तौ तु लक्षणैर्भवतः । भुवि भूभृतामपि तथा फलमव्यक्तं वि र्देश्यम् ॥ १२ ॥ गुरुणा जितेऽवनिसुते बाह्लीका यायिनोऽग्निवार्ताश्च शशिजेन शूरसेनाः कलिङ्गसाल्वाश्च पीड्यन्ते ॥ १३ ॥ सौरेणारे विजि जयन्ति पौराः प्रजाश्च सीदन्ति । कोष्ठागारम्लेच्छक्षत्रियतापाश्च शुक्र जिते ॥ १४ ॥ भौमेन हते शशिजे वृक्षसरित्तापसाश्मकनरेन्द्राः

अपने २ अधिकारियोंको नष्ट करते हैं ॥ ८ ॥ जो ग्रह दक्षिणदिशामें रूखा, कम्पायमान, अप्राप्त होकर भलीभांतिसे निवृत्त अर्थात् टेढा, क्षुद्र और किसी ग्रहसे दबा हुआ, विकराल, प्रभाहीन और विवर्ण जान पडे वह ग्रह पराजित होगा और इसके विपरीत लक्षणवाला ग्रह जयी कहाता है; परन्तु वडे मंडलवाला चिकना और द्युतिमान् होकर दक्षिणदिशामें भी हो तो उसको जययुक्त कहा जाता है ॥९॥१०॥ ग्रहयुद्धकालमें यदि : अन्योन्य प्रीति कहा ... होगी, इसके विपरीत होनेसे आत्मपक्षका नाश होगा ॥११॥ जो युद्ध या समागम लक्षणमें जाना जाय तो पृथ्वीमें राजालोगोंका फलभी वैसाही जाना जायगा ॥१२॥ बृहस्पतिजी मंगलको जीत लें तो बाह्लीक, यायी और अग्निसे आजीविका करनेवाले पीडाको पाते हैं । बुध मंगलको जीते तो शूरसेन, कलिंग और शाल्वदेशमें पीडा होती है ॥ १३ ॥ शनिके द्वारा मंगल जीता जाय तो पुरवासियोंकी जय होती है; प्रजा व्याकुल होकर नष्ट हो जाती है । शुक्र मंगलको जीत ले तो कोष्ठागार, म्लेच्छ और क्षत्रियोंको ताप होता है ॥ १४ ॥ मंगलके द्वारा बुध हत हो

१ यह लक्षण केवल शुक्रके लिये है क्योंकि युद्धप्रकरणमें लिखा है कि शुक्रके सिवाय कोई ग्रह जयी होकर दक्षिण दिशामें नहीं जाता और इसका जानना उचित है कि शुक्र उत्तरमें हो या दक्षिणमेंही, बहुधा युद्धमें जयी होगा " उदक्स्थो दक्षिणास्थो वा भार्गवः प्रायशो जयी ॥ " २ ग्रहोंके परस्पर मिलनेको युद्ध समागम और अस्तमन कहते हैं। ... मंगलादि पञ्च ग्रहोंके साथ मंगलादि पञ्च ग्रहोंके मिलनेको ..., चन्द्रमाके साथ योगको समागम और सूर्यके साथ योग होनेको अस्तमन कहते हैं।

याम्याक्रन्दौ नागरयायिग्रहाश्चैव ॥ ८ ॥ दक्षिणदिक्स्थः परुषो वेपथुराप्य
सन्निवृत्तोऽणुः । अधिगूढो विकृतो निष्प्रभो विवर्णश्च यः स जितः ॥ ९
उक्तविपरीतलक्षणसम्पन्नो जयगतो विनिर्दिष्टः । विपुलः स्निग्धो द्युतिमा
दक्षिणदिक्स्थोऽपि जययुक्तः ॥ १० ॥ द्वावपि मयूखयुक्तौ विपुलौ स्नि
समागमे भवतः । तत्रान्योऽन्यप्रीतिर्विपरीतावात्मपक्षघ्नौ ॥ ११ ॥ युद्धं स
गमो वा यद्यव्यक्तौ तु लक्षणैर्भवतः । भुवि भूभृतामपि तथा फलमव्यक्तं वि
र्देश्यम् ॥ १२ ॥ गुरुणा जितेऽवनिसुते वाह्लीका यायिनोऽग्निवार्ताश्च
शशिजेन शूरसेनाः कलिङ्गसाल्वाश्च पीड्यन्ते ॥ १३ ॥ सौरेणारे विजि
जयन्ति पौराः प्रजाश्च सीदन्ति । कोष्ठागारम्लेच्छक्षत्रियतापाश्च शु
जिते ॥ १४ ॥ भौमेन हते शशिजे वृक्षसरित्तापसाश्मकनरेन्द्राः

अपने २ अधिकारियोंको नष्ट करते हैं ॥ ८ ॥ जो ग्रह दक्षिणदिशामें रू
कम्पायमान, अप्राप्त होकर भलीभांतिसे निवृत्त अर्थात् टेढा, क्षुद्र और किसी ग्र
दबा हुआ, विकराल, प्रभाहीन और विवर्ण जान पडे वह ग्रह पराजित होगा
इसके विपरीत लक्षणवाला ग्रह जयी कहाता है; परन्तु बडे मंडलवाला चिकना
द्युतिमान् होकर दक्षिणदिशामें भी हो तो उसको जययुक्त कहा जाता है ॥९॥१०
ग्रहयुद्धकालमें यदि दो ग्रह किरणयुक्त बडे मंडलवाले और चिकने हों तो इ
अन्योन्य प्रीति कहा जायगा. ऐसा हो तो पृथ्वीमें राजालोगोंकीभी युद्धकालमें पर
होगी, इसके विपरीत होनेसे आत्मपक्षका नाश होगा ॥११॥ जो युद्ध या सम
लक्षणमें जाना जाय तो पृथ्वीमें राजालोगोंका फलभी वैसाही जाना जायगा ॥१
बृहस्पतिजी मंगलको जीत लें तो बाह्लीक, यायी और अग्निसे आजीविका क
वाले पीडाको पाते हैं । बुध मंगलको जीते तो शूरसेन, कलिंग और शाल्वदेश
पीडा होती है ॥ १३ ॥ शनिके द्वारा मंगल जीता जाय तो पुरवासियोंकी ज
होती है; प्रजा व्याकुल होकर नष्ट हो जाती है । शुक्र मंगलको जीत ले तो को
गार, म्लेच्छ और क्षत्रियोंको ताप होता है ॥ १४ ॥ मंगलके द्वारा बुध हत

१ यह लक्षण केवल शुक्रके लिये है क्योंकि युद्धप्रकरणमें लिखा है कि शुक्रके लि
कोई ग्रह जयी होकर दक्षिण दिशामें नहीं जाता और इसका जानना उचित है कि शु
उत्तरमें हो या दक्षिणमें हो, सर्वथा युद्धमें जयी होगा " उदक्स्थो दक्षिणस्थो वा भा
... जयी " २ ग्रहोंके परस्पर मिलनेको युद्ध समागम और आगमन क
हैं. ... मंगलादि पंच ग्रहोंके साथ मंगलादि पंच ग्रहोंके मिल
... के साथ ... समागम और सूर्यके साथ योग होनेको अस्तमन कहते हैं

रविजेन सिते विजिते गणमुख्याः शस्त्रजीविनः क्षत्रम् । जलजाश्च निपीड्यन्ते सामान्यं भक्तिफलमन्यत् ॥२४॥ असिते सितेन निहतेऽर्घवृद्धिरहिविहगमानिनां पीडा । सितिजेन टङ्कणान्ध्रोड्रकाशिबाह्लीकदेशानाम् ॥ २५ ॥ सौम्येन पराभूते मन्देऽङ्गवणिग्विहङ्गपशुनागाः । सन्ताप्यन्ते गुरुणा स्त्रीबहुला माहिषकशकाश्च ॥ २६ ॥ अयं विशेषोऽभिहितो हतानां कुजज्ञवागीशसितासितानाम् । फलं तु वाच्यं ग्रहभक्तितोऽन्यद् यथा तथा घ्नन्ति हताः स्वभक्तीः ॥ २७ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां ग्रहयुद्धं सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अथाष्टादशोऽध्यायः ।

चन्द्रग्रहसमागम.

भानां यथासम्भवमुत्तरेण यातो ग्रहाणां यदि वा शशाङ्कः । प्रदक्षिणं तच्छुभकृन्नराणां याम्येन यातो न शिवः शशाङ्कः ॥ १ ॥ चन्द्रमा यदि कुजमें

[illegible] ॥ २३ ॥ शनिसे शुक्र जित हो जाय तो गणश्रेष्ठ शस्त्रजीवी, [illegible] और [illegible] होते हैं और अन्न साधारण होता है, यह ग्रहभक्तिका फल [illegible] शनि यह निहत हो तो महंगी, सर्प, पक्षी और मानियोंको पीड़ा [illegible] शनि [illegible] होवे तो टंकण, अन्ध्र, ओड्र, काशी और बाह्लीक [illegible] होता है ॥२५॥ बुध करके शनि पराजित हो तो अंगदेश, [illegible] और [illegible] संतापित होते हैं और बृहस्पतिके द्वारा हत होनेसे [illegible] सन्तापित होते हैं ॥ २६ ॥ मंगल, बुध, बृहस्पति, [illegible] यह विशेष फल कहा गया और [illegible] भान तो ग्रहोंका युद्ध होगा वह [illegible] अनुसार कहना चाहिये [illegible] विजित पदार्थोंका नाश करते हैं ॥ २७ ॥

[illegible] बृहत्संहितायां पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रकृतायां [illegible] भाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

[illegible]

रविजेन सिते विजिते गणमुख्याः शस्त्रजीविनः क्षत्रम् । जलजाश्च निपीड्यन्ते सामान्यं भक्तिफलमन्यत् ॥२४॥ असिते सितेन निहतेऽर्घविवृद्धिरहिविहङ्गमानां पीडा । क्षितिजेन टङ्कणान्ध्रोड्रकाशिबाह्लीकदेशानाम् ॥ २५ ॥ सौम्येन पराभूते मन्देऽङ्गवणिग्विहङ्गपशुनागाः । सन्ताप्यन्ते गुरुणा स्त्रीबहुला माहिषकशकाश्च ॥ २६ ॥ अयं विशेषोऽभिहितो हतानां कुजज्ञवागीशसितासितानाम् । फलं तु वाच्यं ग्रहभक्तितोऽन्यद् यथा तथा घ्नन्ति हताः स्वभक्तीः ॥ २७ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां ग्रहयुद्धं सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अथाष्टादशोऽध्यायः ।

चन्द्रग्रहसमागम.

भानां यथासम्भवमुत्तरेण यातो ग्रहाणां यदि वा शशाङ्कः । प्रदक्षिणं तत्स्य भकृन्नराणां याम्येन यातो न शिवः शशाङ्कः ॥ १ ॥ चन्द्रमा यदि कुजस्य

होती है ॥ २३ ॥ शनिसे शुक्र विजित हो जाय तो गणश्रेष्ठ शस्त्रजीवी, क्षत्रिय और जलज पीडित होते हैं और अन्न साधारण होता है, यह ग्रहभक्तका फल ॥ २४ ॥ शुक्रसे शनि ग्रह निहत हो तो महंगी, सर्प, पक्षी और म[illegible] होती है । मंगलसे शनि निहत होवे तो टंकण, अन्ध्र, ओड्र, काशी [illegible] देशवालोंको पीडा होती है ॥२५॥ बुध कर[illegible] विहंग, पशु और सर्पगण संतापित होते हैं [illegible] महिष और शकजातिके पुरुष सन्तापित [illegible] गुरु और शनि इन ग्रहोंके परस्पर हननका [illegible] अर्थात् साधारण नक्षत्रादिके साथ जो ग्रह [illegible] अध्यायमें उनका जो फल कहा है तिसके [illegible] स्थानोंमें हत होकर अपने २ नियत पदार्थोंका नाश करते हैं ॥ २[illegible]

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीय-[illegible]-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७

यदि चन्द्रमा नक्षत्रोंके या ग्रहोंके यथासम्भव उत्तरमें गमन करे तो उस [illegible] "प्रदक्षिण" कहते हैं यह मनुष्योंको शुभकारी है, परन्तु उसका दक्षिणमें गमन [illegible] चन्द्रमा मनुष्योंको शुभदायी नहीं है ॥ १ ॥ जो चन्द्रमा मण्डल ग्रहके उत्तरमें ग[illegible]

ऽङ्कतं कुशास्तृतं स्थण्डिलमावसेद्द्विजः ॥ ७ ॥ आलभ्य मन्त्रेण महाव्रतेन
जानि सर्वाणि निधाय कुम्भे । प्लाव्यानि चामीकरदर्भतोयैर्होमो मरुद्वारुण-
म्यमन्त्रैः ॥ ८ ॥ श्लक्ष्णां पताकामसितां विदध्याद्दण्डप्रमाणां त्रिगुणोच्छ्रितां
। आदौ कृते दिग्ग्रहणे नभस्वान् ग्राह्यस्तया योगमते शशाङ्के ॥ ९ ॥ तत्रा-
मासाः प्रहरैर्विकल्प्या वर्षानिमित्तं दिवसास्तदंशैः । सव्येन गच्छञ्छुभदः
देव यस्मिन्प्रतिष्ठा बलवान् स वायुः ॥ १० ॥ बृत्ते तु योगेऽङ्कुरितानि यानि
न्त्यहि बीजानि धृतानि कुम्भे । येषां तु योंऽशोऽङ्कुरितस्तदंशस्तेषां विवृद्धि
मुपैति नान्यः ॥ ११ ॥ शान्तपक्षिमृगराविता दिशो निर्मलं वियदनिन्दितो-
निलः । शस्यते शशिनि रोहिणीयुते मेघमारुतफलानि वच्म्यतः ॥ १२ ॥
चिदसितासितैः सितैः क्वचिच्च क्वचिदसितैर्भुजगैरिवाम्बुवाहैः । वलितजठरप्र-

---

स्थलमें बैठना चाहिये ॥ ७ ॥ महाव्रत नामके मंत्रोंसे अभिमंत्रित कर सब
करके बीज घडेमें डालकर सुवर्ण और दर्भयुक्त जलसे उसको प्लावित करे और
रुत, वरुण और सौम्य मंत्रसे होम करे ॥ ८ ॥ चन्द्रमाका योग होनेपर दंडके
मान बारह हाथ ऊंचे बांसपर ४ हाथ लम्बी असित पताका धारण करे । पहले
न निर्णय करके उस पताकासे कितने क्षणतक कौन दिशामें हवा चलती है सो
जाने ॥ ९ ॥ एक प्रहरतक एक दिशामें हवा चले तो १५ दिनतक वर्षा होगी फिर
स प्रकार वायु बहनेके कालमें दिशाके अंशको निर्णय करे (श्रावणसे कार्तिकतक
न चार मासके आठ पक्षका एक २ पक्ष एक २ अंशसे निर्देश करना चाहिये)
दो दिशामें वायु गमन करे तो शीघ्रही शुभदायी होती है और जो एक निया-
इससे अर्थात् एक दिशामेंही गमन करे तो वह वायु प्रतिष्ठावान् और
बलवान् होता है ॥ १० ॥ इस योगके चले जानेपर घडेमें धरे हुए बीजोंमेंसे जो
जो अंकुरित हों, उनका वही २ अंशकी वृद्धिको प्राप्त होगा; और अंश नहीं ॥ ११ ॥
रोहिणीके साथ चन्द्रमाका योग होनेपर यदि सब दिशायें शान्त हो जांय, पक्षिगण
व मृगगण उनमें मनोहर शब्द करें, आकाश निर्मल और वायु आनंदित हो तो
[illegible] होता है । इसके उपरान्त मेघ मारुतके फल क्रमानुसार कहे
जाते हैं ॥ १२ ॥ आकाशमें कहीं कृष्ण, कहीं श्वेत, कहीं कृष्ण वर्ण, कहीं
[illegible], कृष्ण, [illegible] सर्पके [illegible] बादलोंसे जैसे जिनके

ष्ठभागदृश्यैः स्फुरिततडिद्रसनैर्वृत विशालैः ॥ १३ ॥ विकसितकमलोदरावदातै-
रुणकरद्युतिरञ्जितोपकण्ठैः । छुरितमिव वियद्वनैर्विचित्रैर्मधुककुंकुमकिंशु-
कावदातैः ॥ १४ ॥ असितघननिरुद्धमेव वा चलिततडित्सुरचापचित्रितम् ।
द्विपमहिषकुलाकुलीकृतं वनमिव दावपरीतमम्बरम् ॥ १५ ॥ अथवाञ्जनशैल-
शिलानिचयप्रतिरूपधरैः स्थगितं गगनम् । हिममौक्तिकशंखशशाङ्ककरद्युतिहा-
रिभिरम्बुधरैरथवा ॥ १६ ॥ तडिद्धेमकक्षैर्बलाकाग्रदन्तैः स्रवद्वारिदानैश्चलत्प्रा-
न्तहस्तैः विचित्रेन्द्रचापध्वजोच्छ्रायशोभैस्तमालालिनीलैर्वृतं चाब्दनागैः ॥१७॥
सन्ध्यानुरक्ते नभसि स्थितानामिन्दीवरश्यामरुचां घनानाम् । वृन्दानि पीताम्बरवे-
ष्टितस्य कान्तिं हरेश्चोरयतां यदा वा ॥ १८ ॥ सशिखिचातकदर्दुरनिस्वनै-
र्यदि विमिश्रितमन्द्रपटुस्वनाः । समवतत्य दिगन्तविलम्बिनः सलिलदाः सलि-
लौघमुचः क्षितौ ॥ १९॥ निगदितरूपैर्जलधरजालैर्त्र्यहमवरुद्धं द्व्यहमथवाहः ।
यदि वियदेवं भवति सुभिक्षं मुदितजना च प्रचुरजला भूः ॥ २० ॥

पीठ और पेट दीख पडती हो, चमकती हुई बिजलीकी समान जीभवाले और शब्दयुक्त विशाल भुजंगाकार मेघोंके द्वारा जो आकाश घिर जाय, खिले हुए कमलकी समान निर्मल व अरुण है समीपभाग जिनका, मधुकर, कुंकुम, टेसूके फूलकी समान निर्मल विचित्र मेघोंसे रंगनेकी समान जो आकाश शोभायमान हो, काले मेघोंसे रंगनेकी समान जो आकाश शोभायमान हो, काले मेघोंसे ढका हुआ हो या चमकती हुई बिजली और इन्द्रधनुषके द्वारा चित्रित आकाश मानो हाथी और भैंसोंके द्वारा आकुल किया हुआ दावानलयुक्त वनकी समान दिखलाई दे या अञ्जन पहाडके काले पत्थरोंकी समान मेघोंसे आकाश छा जाय, अथवा हिम, मुक्ता, शंख और चन्द्रकिरणोंकी ज्योति हरण करनेवाले बादलोंसे जो आकाशमण्डल ढक जाय या बिजलीरूप हैमकक्षासम्पन्न वायुका रूप अग्रदन्तरूप जलरूप मद चुआता मान्तरूप कर चलानेवाला, विचित्र इन्द्रका रूप ऊंची ध्वजासे शोभायमान और तमाल वा भ्रमरकी समान नीलवर्ण हाथीरूप बादलसे सब आकाश छा जाय; जो सांझके रागसे रंगे हुए आकाशमें स्थित नीले पद्मकी समान मेघवृंद पीतांबर पहरे हुए हरिकी कान्तिको हरण करे और मोर चातक व मेंढकोंके शब्दके साथ यदि मेघका गंभीर शब्द मिल जाय तो दिशाओंमें फैले हुए आकाशव्यापी बादल पृथ्वीपर बहुतसा जल वर्षाते हैं ॥१३॥१४॥१५॥१६॥१७॥१८॥१९ ॥
इस उक्त प्रकारके बादलोंसे आकाश दो या तीन दिन घिरे रहे तो सुभिक्ष होवे,

रूक्षैरल्पैर्मारुताक्षिप्तदेहैरुष्ट्रध्वाङ्क्षप्रेतशाखामृगाभैः । अन्येषां वा निन्दितानां सरूपै-
र्मूकैश्चाब्दैर्नो शिवं नापि वृष्टिः ॥ २१ ॥ विगतघने वा वियति विवस्वानमृदुमयूखः
सलिलकृदेवम् । सर इव फुल्लं निशि कुमुदाढ्यं खमुडुविशुद्धं यदि च सुवृष्ट्यै
॥ २२ ॥ पूर्वोद्भूतैः सस्यनिष्पत्तिरब्दैराग्नेयाशासम्भवैरग्निकोपः । याम्ये सस्यं
क्षीयते नैर्ऋतेऽर्धं पश्चाज्जातैः शोभना वृष्टिरब्दैः ॥ २३ ॥ वायव्योत्थैर्वातवृष्टिः
क्वचिच्च पुष्टा वृष्टिः सौम्यकाष्ठासमुत्थैः । श्रेष्ठं सस्यं स्थाणुदिक्सम्प्रवृद्धैर्वायुश्चैवं
दिक्षु धत्ते फलानि ॥ २४ ॥ उल्कानिपातास्तडितोऽशनिश्च दिग्दाहनिर्घातमही-
प्रकम्पाः । नादा मृगाणां सपतत्रिणां च ग्राह्या यथैवाम्बुधरास्तथैव ॥ २५ ॥
नामाङ्कितैस्तैरुदगादिकुम्भैः प्रदक्षिणं श्रावणमासपूर्वैः । पूर्णैः स मासः सलिलस्य
दाता स्रुतैरवृष्टिः परिकल्प्यमूनैः ॥ २६ ॥ अन्यैश्च कुम्भैर्नृपनामचिह्नैर्देशाङ्कि-

---

मनुष्य प्रसन्न हों और पृथ्वीपर बहुतसा जल वर्षे ॥ २० ॥ रूखे और अल्प प-
नसे जिनका देह फैल गया है, ऊंट, काग, प्रेत किंवा वानरोंकी समान या अन्य
निन्दित आकारवाले शब्दरहित मेघ जो उदय होवें तो शुभ नहीं होता, न वर्षा
होती है ॥ २१ ॥ अथवा आकाश मेघशून्य हो, यदि सूर्यकी किरणें तीक्ष्ण हों
तो जल वर्षेगा और रात्रिकालमें आकाश निर्मल नक्षत्रोंके साथ कुमुद सरोवरके
समान प्रफुल्ल हो तो वृष्टि अच्छी होती है ॥ २२ ॥ पूर्वदिशाके उत्पन्न हुए मेघोंसे
धान्य भली भांति पक जाती है; आग्नेयकोणके उठे हुए मेघोंसे अग्निका कोप
होता है; दक्षिणदिशाके उत्पन्न मेघोंसे धान्यका क्षय होता है; नैर्ऋतसे उठे बादलों
करके मध्यमे होती है और पश्चिमके उठे हुए मेघोंसे सुन्दर वर्षा होती है ॥ २३ ॥
वायुकोणके उठे हुए मेघोंसे वायु और कहींभी वर्षा होती है; उत्तर दिशाके उत्पन्न
हुए मेघोंसे पुष्ट वर्षा होती है और ईशानकोणके उठे हुए मेघोंसे श्रेष्ठ धान्य होता
है; ऐसे ही दिशाओंमें वायुसेभी ऐसाही फल होता है ॥ २४ ॥ जो रोहिणीयोगके दिन
उल्कापात, बिजली, वज्रपात, दिग्दाह, निर्घात, पृथ्वीका कम्पायमान होना और
मृग व पक्षियोंका शब्द हो तो बादलके लक्षणकी समान फल प्राप्त
किया जाता है ॥ २५ ॥ रोहिणीयोगके दिन वृष्टि गिरनेके समय उत्तरादि चा
दिशाओंमें श्रावण, भादों, क्वार, कार्तिक इन मासोंके नामके चार घडे प्रदक्षिणा
क्रमसे स्थापित करे जो जो घडा जलसे पूर्ण होगा वही श्रावणादि मास क्रम-
से जलदाता होगा. जिस घडेका जल टपक जाय तो अवृष्टि होगी, घट जाय
तो न्यून वर्षा होगी ॥ २६ ॥ इसी भांतिसे और घडे राजाओंके नामके और

तैश्चाप्यपरैस्तथैव । भग्नैः स्रुतैर्न्यूनजलैः सुपूर्णैर्भाग्यानि वाच्यानि यथानुरूपम् ॥ २७ ॥ दूरगो निकटगोऽथवा शशी दक्षिणे पथि यथातथा स्थितः । रोहिणीं यदि युनक्ति सर्वथा कष्टमेव जगतो विनिर्दिशेत् ॥ २८ ॥ स्पृशन्नुदग्याति यदा शशाङ्कस्तदा सुवृष्टिर्बहुलोपसर्गाः । असंस्पृशन्योगमुदक्समेतः करोति वृष्टिं विपुलां शिवं च ॥ २९ ॥ रोहिणीशकटमध्यसंस्थिते चन्द्रमस्यशरणीकृता जनाः । क्वापि यान्ति शिशुयाचिताशनाः सूर्यतप्तपिठराम्बुपायिनः ॥ ३० ॥ उदितं यदि शीतदीधितिं प्रथमं पृष्ठत एति रोहिणी । शुभमेव तदा स्मरातुराः प्रमदाः कामिवशे च संस्थिताः ॥ ३१ ॥ अनुगच्छति पृष्ठतः शशी कामी वनितामिव प्रियाम् । मकरध्वजबाणखेदिताः प्रमदानां वशगास्तदा नराः ॥ ३२ ॥ आग्नेय्यां दिशि चन्द्रमा यदि भवेत्तत्रोपसर्गो महान् नैर्ऋत्यां समुपद्रुतानि निधनं सस्यानि यान्तीतिभिः । प्राजेशानि-

---

देशोंके नामके प्रदक्षिणाके भावसे स्थापन करे, फिर दूसरे दिन उनको देखे. जो फूट जाय, टपक जाय, जिसका जल कम हो जाय या जो पूर्ण रहे, उसका तैसाही भाग्य निर्णय करना चाहिये ॥ २७ ॥ चन्द्रमा दूर स्थित होकर रहे या निकट स्थित रहे, पर दक्षिणमार्गमें यदि रोहिणीयुक्त होवे तो सर्व प्रकारसे संसारको कष्टदायी होता है ॥ २८ ॥ जब चन्द्रमा रोहिणीके उत्तरदिशावाले नक्षत्रको स्पर्श करता हुआ हो तो बहुतसे उपद्रवोंके साथ अच्छी वर्षा होती है और विना योग-स्पर्श किये उत्तरदिशाके नक्षत्रमें जाय तौभी बहुतसी वर्षा होती है और मंगल होता है ॥ २९ ॥ जो चन्द्रमा रोहिणीके शकटमें (आकाशमें शकटके आकारके पांच तारे हैं) विराजमान हो तो आदमी शरणरहित, क्षुधातुर, बालकयुक्त और सूर्य करके तपाई हुई हांडीके जलको पीते हुए समय विताते हैं ॥ ३० ॥ पहले चंद्रमा उदय हो और तिसके पीछेही रोहिणी उदय हो तो कामदेवसे व्याकुल हुई स्त्रियां कामी पुरुषके वश हो जाती हैं ॥ ३१ ॥ प्यारी भार्याके पीछे कामी जनकी समान यदि चन्द्रमा रोहिणीके पीछे चले तो मनुष्यगण पञ्चबाणके बाणोंसे पीडित होकर औरतोंके वशमें हो जाते हैं ॥ ३२ ॥ जो अग्निकोणमें चन्द्रमा विराजमान हो तो बडे २ उपद्रव होते हैं; नैर्ऋतकोणमें हो तो समस्त धान्य ईतिसे ग्रसित होकर नष्ट हो जाते हैं; पश्चिम और वायुकोणमें चन्द्रमा हो तो खेतोंका मध्यम संग्रह होता है; ईशानकोणमें हो तो अनेक गुण होते

उदग्दिशिस्थिते हिमकरे सस्यस्य मध्यम्यो याते स्यागुदिगं गुणाः सुवहः सस्यार्धवृद्धचादयः ॥ ३३ ॥ ताडयेद्यदि च योगतारकामावृणोति वपुषा यदापिवा । ताडने भयमुशन्ति दारुणं छादने नृपवधोऽङ्गनाकृतः ॥ ३४ ॥ गोप्रवेशसमयेऽग्रतो वृषो याति कृष्णपशुरेव वा पुरः । भूरि वारि शबले तु मध्यमं नो सितेऽम्बु परिकल्पनापरैः ॥ ३५ ॥ दृश्यते न यदि रोहिणीयुतश्चन्द्रमा नभसि तोयदावृते । रुग्भयं महदुपस्थितं तदा भूश्च भूरिजलसस्यसंयुता ॥३६॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्सं० रोहिणीयोगो नाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥२४॥

अथ पंचविंशोऽध्यायः ।

स्वातियोग ।

यद्रोहिणीयोगफलं तदेव स्वातावषाढासहिते च चन्द्रे । आषाढशुक्ले निखिलं विचिन्त्यं योऽस्मिन् विशेषस्तमहं प्रवक्ष्ये ॥ १ ॥ स्वातौ निशांशे प्रथमेऽभिवृष्टे सस्यानि सर्वाण्युपयान्ति वृद्धिम् । भागे द्वितीये तिलमुद्गमाषा ग्रैष्मं तृती-

है और धान्यका मूल्यभी बढ जाता है इत्यादि ॥ ३३ ॥ जो चन्द्रमा योगतारेको ताडना करे या शरीरसे ढकले तो क्रमानुसार दारुण भय और स्त्रीके द्वारा राजाका वध होता है ॥ ३४ ॥ संध्याके समय जब गायें वनसे चरकर आवें (और उस समय चन्द्रमाके प्रवेशका समय हो) और तिस समय उनके आगे बैल या काला पशु आवे तो बहुतसी वर्षा होती है । शुक्ल पशुके आगे आनेसे मध्यम वर्षा होती है । जो अनेक रंगवाला पशु आगे हो तो वर्षाऊ बादलभी मेघ नहीं वर्षाते ॥३५॥ यदि मेघसे ढके हुए आकाशमें चन्द्रमा रोहिणीसे युक्त न दिखलाई पडे तो रोगका बडा भारी भय आता है और पृथ्वीपर बहुतसा जल और धान्य होते हैं ॥ ३६॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां चतुर्विंशोऽध्यायः॥२४॥

जैसे चन्द्रमाके साथ रोहिणीयोगका फल है स्वाती और आषाढ नक्षत्रके साथ चन्द्रमाके योगका फलभी वैसाही है । आषाढमासके शुक्लपक्षमें इसका भलीभांति विचार करे इसमें जो विशेषता है सो कही जाती है ॥ १ ॥ स्वाति नक्षत्रमें रात्रिके पहले अंशमें वर्षा हो तो सर्व प्रकारके धान्य बढते हैं, दूसरे भागमें तिल मूंग और

येऽस्ति न शारदानि ॥ २ ॥ वृष्टेऽह्नि भागे प्रथमे सुवृष्टिस्तद्वद्द्वितीये तु सकीटसर्पा। वृष्टिस्तु मध्यापरभागवृष्टे निश्छिद्रवृष्टिर्द्युनिशं प्रवृष्टे ॥ ३ ॥ समभुत्तरेण तारा चित्रायाः कीर्त्यते ह्यपांवत्सः। तस्यासन्ने चन्द्रे स्वातेर्योगः शिवो भवति ॥ ४ ॥ तमस्यां स्वातियोगे यदि पतति हिमं माघमासान्धकारे वायुर्वा चण्डवेगः सजलजलधरो वापि गर्जत्यजस्रम्। विद्युन्मालाकुलं वा यदि भवति नभो नष्टचन्द्रार्कतारं विज्ञेया प्रावृडेषा मुदितजनपदा सर्वसस्यैरुपेता ॥ ५ ॥ तद्वेव फाल्गुने चैत्रे वैशाखस्यासितेऽपि वा। स्वातियोगं विजानीयादाषाढे च विशेषतः ॥ ६ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्सं० स्वातियोगो नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥

उर्द और तीसरे भागमें ग्रीष्मकालका धान्य होता है। परन्तु शरदऋतुकी खेती नहीं होती ॥ २ ॥ दिनके पहले भागमें वृष्टि होनेसे सुवृष्टि होती है; दूसरे भागमें होनेसे सर्प और कीडे होते हैं; मध्य और अपरभागमें वृष्टि हो तो सुवृष्टि और रातदिन वर्षनेसे उस वर्षमें बहुतसी वृष्टि होती है ॥ ३ ॥ चित्राके उत्तर ओरका तारा अपांवत्स[1] कहा जाता है; उसके निकट हुए चन्द्रमाके साथ स्वातीका योग होनेपर मंगल होता है ॥ ४ ॥ यदि माघ मासकी कृष्णपक्षीय सप्तमी तिथिमें स्वातियोगसे हिम गिरे या प्रचंड वेगसे पवन चले, जलयुक्त बादल गर्जता रहे और आकाश यदि बिजलीकी रेखाओंसे युक्त हो, चन्द्रमा सूर्य और ताराओंकी ज्योति जाती रहे तो वर्षाकालमें जनपद आनंदित और सब धान्योंसे युक्त होते हैं ॥ ५ ॥ फाल्गुन, चैत्र या वैशाखको कृष्णपक्षमेंभी ऐसाही स्वातीका योग होता है परन्तु आषाढमासमें स्वातियोगको विशेषरूपसे जानना ॥ ६ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य–पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां पंचविंशोऽध्यायः॥२५॥

---

१ "अपांवत्सस्तु चित्रायामुत्तरेंऽशैस्तु पञ्चभिः" चित्रानक्षत्रके पांच अंश उत्तरविक्षेपमें अर्थात् तीन अंश स्फुट होनेके बाद विक्षेपमें जो एक बडा तारा दिखाई देता है सोई "अपांवत्स" है। सूर्यसिद्धांत नक्षत्रग्रहयुत्यधिकार ॥

अथ षड्विंशोऽध्यायः ।

आषाढीयोग.

आषाढ्यां समतुलिताधिवासितानामन्येद्युर्यदधिकतामुपैति बीजम् । वृद्धिर्भवति न जायते यदूनं मन्त्रोऽस्मिन् भवति तुलाभिमन्त्रणाय ॥ १ ॥ स्तोतव्या मन्त्रयोगेन सत्या देवी सरस्वती । दर्शयिष्यसि यत्सत्यं सत्ये सत्यव्रता ह्यसि ॥ २ ॥ येन सत्येन चन्द्रार्कौ ग्रहा ज्योतिर्गणास्तथा । उत्तिष्ठन्तीह पूर्वेण पश्चादस्तं व्रजन्ति च ॥ ३ ॥ यत्सत्यं सर्ववेदेषु यत् सत्यं ब्रह्मवादिषु । यत् सत्यं त्रिषु लोकेषु तत् सत्यमिह दृश्यताम् ॥ ४ ॥ ब्रह्मणो दुहितासि त्वमादित्येति प्रकीर्तिता । काश्यपी गोत्रतश्चैव नामतो विश्रुता तुला ॥ ५ ॥ क्षौमं चतुःसूत्रकसन्निबद्धं षडङ्गुलं शिक्यकवत्प्रमस्याः सूत्रप्रमाणं च दशांगुलानि षडेव कक्षोभयशिक्यमध्ये ॥ ६ ॥ पूर्वे शिक्ये काञ्चनं सन्निवेश्यं शेषद्रव्याण्युत्तरेऽम्बूनि चैवम् । तोयैः कौपैः

आषाढी पूनमके दिन जब उत्तराषाढामें चन्द्रमा चलाजाय तब सभी अन्न धान (बीहन) बराबर तौलकर रखदे और दूसरे दिन जिस धान्यका वजन बढ़ाजावे भारी हो अर्थात् बढ़ जाय उसकी वृद्धि होती है, जो धान्य कमी हो उसकी उत्पत्ति नहीं होना; इसमें तुला अभिमंत्रणका मंत्र पढ़ना चाहिये ॥ १ ॥ सत्यस्वरूप देवी सरस्वतीकी इस मंत्रसे इस प्रकार स्तुति करनी चाहिये, हे सरस्वति ! आप सत्यसम्बन्धमें सत्यव्रतवाली हैं, इसलिये जो सत्य है, सो आप दिखा दे ॥ २ ॥ इस संसारमें जिस सत्यके बलसे चन्द्रमा, सूर्य, ग्रह और ज्योतिर्गण पूर्वमें उदित होते और पश्चिममें अस्त हो जाते हैं, सर्व वेदमें जो सत्य है और त्रिलोकमें जो सत्य है वह सत्य यहांपर आप दिखा दें, क्योंकि आप ब्रह्माकी पुत्री आदित्या नामसे विख्यात हैं, आप गोत्रमें काश्यपी और तुलानामसे विख्यात हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ सनकी बनी हुई चार डोरियोंमें बंधी हुई छः अंगुल छाब सिक्केकी तरही है, उसकी चारों डोरियोंका प्रमाण दश २ अंगुल होने चाहिये. इस प्रकार दोनों पल्डोंके बीचमें छः अंगुलके परिमाणकी कक्षा होनी चाहिये (जिस सूतसे पल्डा उठाते हैं उसे कक्षा कहते हैं) ॥ ६ ॥ पूर्वके पल्डेमें कांचन रखना चाहिये, उत्तरके पल्डेमें शेष द्रव्य और जल [illegible]

स्यान्दिभिः सारसैश्च वृष्टिर्हीना मध्यमा चोत्तमा च ॥ ७ ॥ दन्तैर्नागा गोहयाद्याश्च लोम्ना हेम्ना भूपाः सिक्थकेन द्विजाद्याः । तद्वद्देशा वर्षमासा दिशश्च शेषद्रव्याण्यात्मरूपस्थितानि ॥ ८ ॥ हैमी प्रधाना रजतेन मध्या तयोरलाभे खादिरेण कार्या । विद्धः पुमान्येन शरेण सा वा तुला प्रमाणेन भवेद्वितस्तिः ॥ ९ ॥ हीनस्य नाशोऽभ्यधिकस्य वृद्धिस्तुल्येन तुल्यं तुलितं तुलायाम् । एतत्तुलाकोशरहस्यमुक्तं प्राजेशयोगेऽपि नरो विदध्यात् ॥ १० ॥ स्वातावषाढास्वथ रोहिणीषु पापग्रहा योगगता न शस्ताः । ग्राह्यं तु योगद्वयमप्युपोष्य यदाधिमासो द्विगुणीकरोति ॥ ११ ॥ त्रयोऽपि योगाः सदृशाः फलेन यदा तदा वाच्यमसंशयेन । विपर्यये यत्त्विह रोहिणीजं फलं तदेवाभ्यधिकं

चाहिये. कूप, सरोवर या नदीके जलसे यह कार्य करनेसे क्रमानुसार हीन, मध्यम और उत्तम वर्षा होती है; अर्थात् कूपका जल यदि पहले दिनकी अपेक्षा दूसरे दिन कुछ अधिक भारी हो जाय तो वर्षा न होगी. यदि वृष्टिका जल अधिक भारी हो जाय तो मध्यम वर्षा होगी और नदी या कुण्डका जल अधिक भारी हो जाय तो उचित जल वर्षता है सब जल बढे तो अतिवृष्टि और सब जल घटे तो अनावृष्टि होता है ॥ ७ ॥ दन्तसे नागगण, लोमसे अश्वादि पशुगण, स्वर्णसे राजालोग, सिक्थ अर्थात् एक ग्रास प्रमाण मोमसे द्विजातिलोगोंकी वृद्धिहानि जानी जाती है, तथा मध्यदेश, वर्ष, मास और दिग्मंडल तथा शेष द्रव्य (धान्यादि) आत्मरूपसे अर्थात् जिस वस्तुकी हानि वृद्धि जाननी हो उसीको मापकर फल कहना. सुवर्णका बना हुआ तुलादण्डही अच्छा है, चांदीका मध्यम है, यह न हो तो खैरकी लकडीकी दण्डी बनानी चाहिये किंवा जिस शरसे पुरुष विद्ध हो जाते हैं वैसेही आकारकी और वितस्तिके प्रमाणकी दण्डी बनानी चाहिये ॥ ८ ॥ ९ ॥ तराजूके साथ तोल करनेमें हीनकी उच्चता और अधिककी वृद्धि (नीचता) होती है; यह तुलाकोशरहस्य कहा गया । मनुष्य रोहिणीयोगमेंभी इसको धारण करते हैं ॥ १० ॥ स्वाति, रोहिणी और आषाढनक्षत्रमें पापग्रहयोग अच्छा नहीं है; परन्तु जिस वर्ष अधिमास हो अर्थात् आषाढमास मलमास हो, उस वर्षमें पहले कहे हुए दोनों योग ग्रहण किये जायंगे ॥ ११ ॥ यदि तीनों (रोहिणी, स्वाती और अषाढा) योगोंका फल समान हो तो निसन्देह होकर शुभ या अशुभ फल

१ जिस चन्द्रमासमें रविसंक्रमण नहीं होता तिसको अधिमास या मलमास कहते हैं "असंक्रान्तिमासोऽधिमासः स्फुटं स्यात् ।" (सिद्धान्तशिरोमणि) ॥

निगद्यम् ॥ १२ ॥ निष्पत्तिरग्निकोपो वृष्टिर्मन्दाथ मध्यमा श्रेष्ठा । बहुजला वना पुष्टा शुभा च पूर्वादिभिः पवनैः ॥ १३ ॥ वृत्तायामाषाढ्यां कृष्णचतुर्थ्यामजैकपादर्क्षे । यदि वर्षति पर्जन्यः प्रावृट् शस्ता न चेन्न ततः ॥ १४ ॥ आषाढ्यां पौर्णमास्यां तु यदीशानोऽनिलो भवेत् । अस्तं गच्छति तीक्ष्णांशौ सस्यसम्पत्तिरुत्तमा ॥ १५ ॥

इति श्रीवराहमिहि० बृहत्संहितायामाषाढीयोगो नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

अथ सप्तविंशोऽध्यायः ।

वातचक्र ।

पूर्वः पूर्वसमुद्रवीचिशिखरप्रस्फालनाघूर्णितश्चन्द्रार्कांशुसटाभिघातकलितो वायुर्यदाकाशतः । नैकान्तस्थितनीलमेघपटलां शारद्यसंवर्धितां वासन्तोत्कटसस्य

जैसा हो सो कहना और अदलबदल होनेपर रोहिणीसे उत्पन्न हुआ जो फल है वही अधिक कहा जाता है ॥ १२ ॥ यदि पूर्वाई हवा चले तौ धान्य भलीभांति निबट जाता है, अग्निकोणकी हवा चलनेपर अग्निका कोप होता है, ऐसेही यदि दक्षिणादिकी प्रदक्षिणानुसार मन्दवृष्टि, मध्यवृष्टि, उत्तमवृष्टि, झंझावृष्टि, पुष्टि और शुभवृष्टि होती है ॥ १३ ॥ आषाढी पूर्णिमाके पीछे कृष्णचतुर्थीमें और पूर्वाषाढानक्षत्रमें जो बादल वर्षा करे तौ वर्षा अच्छी है, नहीं तौ नहीं ॥ १४ ॥ आषाढी पौर्णमासीको सूर्य अस्त होनेके समय यदि ईशानकोणकी पवन चले तौ पृथ्वीपर धान्य उत्तम होता है ॥ १५ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

आषाढीयोगके दिन जब सूर्य अस्त होवे तब आकाशसे पूर्वाई पवन पूर्वसमुद्रके तरंग शिखरको स्पर्श करता हुआ घूमता और चन्द्रमा सूर्यके किरणरूप जटाके अभिघातसे बन्ध जाता है तब समस्त पृथ्वी एकान्तमें स्थित नीले बादलों

१ अत्र "केचिद्वातचक्रं" (अध्यायं) पठन्ति तद्वराहमिहिरकृतं न भवति । दा
'निर [illegible]
नैः [illegible]
इति प्रकाशता भट्टोत्पलेनोक्तम् ।

ण्डिततलां विधाचदा मेदिनीम् ॥ १ ॥ यदाग्नेयो वायुर्मलयशिखरास्फालन-
पटुः प्रुवत्यस्मिन् योगे भगवति पतङ्गे भवसति । तदा नित्योद्दीप्ता ज्वलनशि-
खरालिङ्गिततला स्वगात्रोष्मोच्छ्वासैर्वमति वसुधा भस्मनिकरम् ॥ २ ॥ ताली-
पत्रलतावितानतरुभिः शाखामृगान्नर्तयन् योगेऽस्मिन् प्रुवति ध्वनन् सुपरुषो
वायुर्यदा दक्षिणः। सर्वोद्योगसमुन्नताश्च गजवत्तालाङ्कुशैर्घट्टिताः कीनाशा
इव मन्दवारिकणिकान्मुञ्चन्ति मेघास्तदा ॥ ३ ॥ सूक्ष्मैलालवलीलवङ्गनिच-
यान् व्याघूर्णयन् सागरे भानोरस्तमये प्रुवत्यविरतो वायुर्यदा नैर्ऋतः । क्षुत्-
क्षामामृतमानुषास्थिशकलप्रस्तारभारच्छदा मत्ता प्रेतवधूरिवोग्रचपला भूमिस्तदा
लक्ष्यते ॥ ४ ॥ यदा रेणूत्पातैः प्रविकटसटाटोपचपलः प्रवातः पश्चार्धे दिनक-
रकरापातसमये । तदा सस्योपेता प्रवरनृपराबद्धसमरा धरा स्थाने स्थाने प्यवि-
रतवसामांसरुधिरा ॥ ५ ॥ आषाढीपर्वकाले यदि किरणपतेरस्तकालोपपत्तौ

समूहोंसे और वृद्धिको प्राप्त हुए शरदृतुके फल धान्यसे युक्त होकर समस्त
वसन्ती धान्यसे शोभायमान हो जाती है ॥ १ ॥ भगवान् सूर्यके अस्ताचलपर
गमन करनेपर जब मलयपर्वतके शिखरपर अखंडित आग्नेय वायु वहन करे तो
पृथ्वी नित्य उद्दीप्त होती है, और भस्मराशके शिखासे तलमें आलिंगन पानेपर
अपने गात्रके तापसे उत्पन्न हुए श्वासोंसे मानो भस्मको वमन करती है ॥ २ ॥
जब इस योगमें निठुर दक्षिणी पवन शब्द करते २ तालवृक्ष लताओंके समूहग्र-
हित वानरोंको नचाता रहता है, तब सर्व प्रकारके उद्योग करके ऊंचे गजकी समान
ताल व अंकुशसे ताडित हाथीकी समान मेघ कृपण मनुष्यकी समान थोडी वर्षा
करते हैं ॥ ३ ॥ सूर्यके अस्तगमनकालमें जब नैर्ऋतवायु छोटी इलायची और

समान उग्र व चपल दिखाया करता है ॥ ४ ॥ संध्याके समय जब कि धूरे बर्षेने
करके केशरके आक्षेपद्वारा चञ्चल और गर्वके हेतुसे चञ्चल हो पश्चिममें बहता है,
तब पृथ्वी धान्ययुक्त और प्रधान राजाओंकी समरभूमि होकर स्थान २ में चर्बी
मांस व रुधिरसे बराबर हरी रहती है ॥ ५ ॥ आषाढी पूर्णिमाको जब सूर्यके
अस्त होनेका समय आवे, उस समय यदि मेघवत शत्रु वारंवार पवन मद्दसे
चालकर चलनेवाला होकर गमन करता है, तब पृथ्वी जलकी धारासे मग्न, नेह-

न चिराचन्द्रपन्मार्गवोऽपि ॥ १ ॥ आर्द्रं द्रव्यं स्पृशति यदि वा वारि तत्सं
वा तोयासन्नो भवति यदि वा तोयकार्योन्मुखो वा। प्रष्टा वाच्यः सलिलम
राद्यस्ति निःसंशयेन पृच्छाकाले सलिलमिति वा श्रूयते यत्र शब्दः ॥ २
उदयशिखरिसंस्थो दुर्निरीक्ष्योऽतिदीप्त्या द्रुतकनकनिकाशः स्निग्धवैदूर्यकान्तिः
तदहनि कुरुतेऽम्भस्तोयकाले विवस्वान् प्रतपति यदि वोच्चैः खं गतोऽतीवती
क्ष्णम् ॥ ३ ॥ विरसमुदकं गोनेत्राभं वियद्विमला दिशो लवणविकृतिः
काकाण्डाभं यदा च भवेन्नभः। पवनविगमः पोप्लूयन्ते झषाः स्थलगामिनो
रसनमसकृन्मण्डूकानां जलागमहेतवः ॥ ४ ॥ मार्जारा भृशमवनिं नखैर्लिखन्तो
लोहानां मलनिचयः सविस्रगन्धः। रथ्यायां शिशुनिचिताश्च सेतुबन्धाः
स्यातं जलमचिरान्निवेदयन्ति ॥५॥ गिरयोऽञ्जनपुञ्जसन्निभा यदि वा वाष्पनि-
रुद्धकन्दराः। कृकवाकुविलोचनोपमाः परिवेषा शशिनश्च वृष्टिदाः ॥ ६ ॥

हो और शुभ ग्रहसे देखा जाय तो बहुतसा जल वर्षता है, पापग्रहसे देखा जाय तो
थोडा जल वर्षता है और बहुत कालतक वर्षा नहीं होती। शुक्रभी चन्द्रमाकी समान
फलदाता है॥१॥जो प्रश्न करनेके समय प्रश्नका करनेवाला गीला द्रव्य वा जल अथवा
जलपर जिसका नाम हो ऐसे किसी द्रव्यको छुए अथवा जलके निकटवाले या जल-
सम्बन्धी किसी कार्यमें रत हो या प्रश्न करनेके कालमें जल या जलवाचक शब्द
हो तो प्रश्नकर्तासे निःसन्देह कहा जा सकता है कि बहुत शीघ्र वर्षा होगी ॥ २ ॥
र्षाकालमें जिस दिन उदयपर्वतपर स्थापित सूर्य भगवान् अपनी कांतिसे दृष्टिको
ताप पहुँचानेवाले हों; पिघले हुए सुवर्णकी समान या वैडूर्यमणिकी समान
िकनी कांतिवाले हो उस दिन जल वर्षेगा और यदि आकाशके ऊंचे स्थानमें
कर तीक्ष्ण किरणोंसे तपे तो तिस समय जल वर्षेगा ॥ ३ ॥ जलका स्वाद
उड जाना गायकी आंखके समान आकाशका रंग हो जाना, दिशाओंका विमल
ा, सांभरका पसीज जाना, कागके अंडोंके रंगकी समान रंगवाले मेघोंका उदय
, पवनके बहनेसे थँम जाना, मछलियोंका जलमेंसे वारंवार उछलना और मेंड-
ाका वारंवार शब्द करना, जलकी अगाईका चिह्न है ॥ ४ ॥ बिल्लियोंका अपने
ोंसे पृथ्वीको कुरेदना, लोहेपर मैल जम जानेसे उसमें कचे मांसकी समान गंध
ना, बालकोंका मार्गमें रेते आदिका पुल बांधना शीघ्रही जल वर्षनेके लक्षणको
ार करता है ॥ ५ ॥ समस्त पर्वत अंजनराशिकी समान रंगवाले हो जांय,
ी कंदराओंमें बाफ भर जाय और चन्द्रमाका परिवेष कुकुटके नेत्रकी समान

विनोपघातेन पिपीलिकानामण्डोपसंक्रान्तिरहिव्यवायः । द्रुमाधिरोहश्च भुजङ्-
मानां वृष्टेर्निमित्तानि गवां प्लुतं च ॥ ७ ॥ तरुशिखरोपगताः कृकलासा गगन-
तलस्थितदृष्टिनिपाताः । यदि च गवां रविवीक्षणमूर्द्ध्वं निपतति वारि तदा न
चिरेण ॥ ८ ॥ नेच्छन्ति विनिर्गमं गृहाद्धुन्वंति श्रवणान् खुरानपि । पश-
पशुवच्च कुक्कुरा यद्यम्भः पततीति निर्दिशेत् ॥ ९ ॥ यदा स्थिता गृहपटले
कुक्कुरा भवन्ति वा यदि विततं दिवोन्मुखाः । दिवा तडिद्यदि च दिशाऽथ
गभवा तदा क्षमा भवति समाप्लवारिणा ॥ १० ॥ शुककपोतविलोचनसन्निभे
मधुनिभश्च यदा हिमदीधितिः । प्रतिशशी च यदा दिवि राजते पतति वारि
तदा न चिराद्दिवः ॥ ११ ॥ स्तनितं निशि विद्युतो दिवा रुधिरनिभा यदि
दण्डवत् स्थिताः । पवनः पुरतश्च शीतलो यदि सलिलस्य तदागमो भवेत् ॥ १२ ॥
वल्लीनां गगनतलोन्मुखाः प्रवालाः स्नायन्ते यदि जलपांशुभिर्विहङ्गाः । सेवन्ते
यदि च सरीसृपास्तृणाग्राण्यासन्नो भवति तदा जलस्य पातः ॥ १३ ॥

[illegible] भी वर्षा होगी ॥ ६ ॥ विना किसी उपद्रवके चींटियोंका अपने अण्डोंको [illegible] दूसरे स्थानपर ले जाना, सर्पोंका मैथुन करना, [illegible] और गायोंका उछलना कूदना वर्षाका लानेवाला है ॥ ७ ॥ जो [illegible] आकाशकी ओर देखे, गायेंभी ऊपरको दृष्टि उठाय, [illegible] ॥ ८ ॥ जो पशु गृहसे बाहर जानेकी इच्छा [illegible] और कुत्तेभी इन पशुओंकी [illegible] कि जल बरसेगा ॥ ९ ॥ [illegible] और जब दिनके समय ईशानकोणमें बिजली [illegible] पृथ्वी [illegible] हो जायगी ॥ १० ॥ [illegible] समान चन्द्रमाका लाल रंग होवे या [illegible] चन्द्रमा दिखाई [illegible], तब आकाशसे [illegible] ॥ ११ ॥ [illegible] बिजलीकी [illegible] समान [illegible] ॥ १२ ॥ [illegible]

मयूरशुकचापचातकसमानवर्णा यदा जपाकुसुमपङ्कजद्युतिमुषश्च सन्ध्याघनाः।
जलोर्मिनगनक्रकच्छपवराहमीनोपमाः प्रभूतपुटसञ्चया न तु चिरेण यच्छ-
न्त्यपः॥ १४॥ पर्यन्तेषु सुधाशशाङ्कधवला मध्येऽञ्जनालित्विषः स्निग्धा
नेकपुटाः क्षरज्जलकणाः सोपानविच्छेदिनः। माहेन्द्रीप्रभवाः प्रयान्त्यपरतः प्रा-
क्चाम्बुपाशोद्भवा ये ते वारिमुचस्त्यजन्ति न चिरादम्भः प्रभूतं भुवि॥ १५॥
शक्रचापपरिघप्रतिसूर्या रोहितोऽथ तडितः परिवेषाः। उद्गमास्तसमये यदि
भानोरादिशेत् प्रचुरमम्बु तदाशु॥ १६॥ यदि तित्तिरपत्रनिभं गगनं मुदिताः
प्रवदन्ति च पक्षिगणाः। उदयास्तसमये सवितुर्द्युनिशं विसृजन्ति घना न चिरेण
जलम्॥ १७॥ यद्यमोघकिरणाः सहस्रगोरस्तभूधरकरा इवोच्छ्रिताः। भूसमं
च रसते यदाम्बुदस्तन्महद्भवति वृष्टिलक्षणम्॥ १८॥ प्रावृषि शीतकरो
भृगुपुत्रात् सप्तमराशिगतः शुभदृष्टः। सूर्यसुतान्नवपञ्चमगो वा सप्तमगश्च
जलागमनाय॥ १९॥ प्रायो ग्रहाणामुदयास्तकाले समागमे मण्डलसंक्रमे च।

जब संध्याकालके आकाशमें मेघगण मोर, शुक, नीलकण्ठ या चातकपक्षीकी समान रंगवाले या जपाकुसुम वा कमलकी कांतिको हरण करें और जलकी तरंग, पर्वत, नाका, कछुआ, शूकर या मछलीकी समान आकारवाले हों तो शीघ्र जल वर्षेगा॥ १४॥ चारों किनारोंपर सीधा और चन्द्रमाकी समान श्वेतवर्ण हो, मध्यमें अंजन और भ्रमरकी समान दीप्तिवाला हो, चिकने जलकी बूंदें टपकाता हो, पैरी-योंकी समान एकके ऊपर एक चढे रहैं, पूर्वदिशासे आकर पश्चिम दिशाको जांय वे बादल शीघ्रही पृथ्वीमें बहुतसा जल वर्षाते हैं॥ १५॥ सूर्यके उदय या अस्तके समय जो इन्द्रधनुष, परिघ, दूसरा सूर्य, दण्डाकार इन्द्रधनुष या बिजलीकी समान परिवेष प्रकाशित होय तो शीघ्रही बहुतसा जल वर्षता है॥ १६॥ सूर्यके उदय अस्तके समय यदि आकाशका रंग तीतरके पंखोंकी समान हो जाय और पक्षिगण आनन्दित होकर कलरव करते हैं तो मेघ शीघ्रही दिनरात जल वर्षाते हैं॥ १७॥ यदि हजार किरणवाले सूर्यके अस्तकालमें अस्ताचलकी किरणोंके समान ऊंची और अमोघ किरणें विराजमान हैं और यदि मेघगण पृथ्वीके निकट शब्द करें तो इन बातोंको वर्षा होनेका बडा भारी लक्षण कहा जा सकता है॥ १८॥ जो वर्षा-कालमें चन्द्रमा शुभ ग्रहों करके देखा जाय तो शुक्रसे सप्तम राशिमें या शनिसे नवम, पञ्चम वा सप्तम राशिमें हो तो यह जलागमका कारण है॥ १९॥ ग्रहोंके उदयास्तकालमें मण्डल संक्रमण और समागम होनेपर और पक्षक्षयमें, अयनके

पक्षक्षये तीक्ष्णकरायनान्ते वृष्टिर्गतेऽर्के नियमेन चार्द्राम् ॥ २० ॥ समेते
पतति जलं ज्ञशुक्रयोर्ज्ञजीवयोर्गुरुसितयोश्च सङ्गमे । यमारयोः पवनहुताशजं
भयं न दृष्टयोरसहितयोश्च सद्ग्रहैः ॥ २१ ॥ अग्रतः पृष्ठतो वापि ग्रहाः
सूर्यावलम्बिनः । यदा तदा प्रकुर्वन्ति महीमेकार्णवामिव ॥ २२ ॥
इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां सद्योवृष्टिलक्षणं नामाष्टाविंशोऽध्यायः॥२८॥

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः ।

कुसुमलता.

फलकुसुमसम्प्रवृद्धिं वनस्पतीनां विलोक्य विज्ञेयम् । सुलभत्वं द्रव्या
णां निष्पत्तिश्चापि सस्यानाम् ॥ १ ॥ शालेन कलमशाली रक्ताशोकेन रक्त
शालिश्च । पाण्डूकः क्षीरिकया नीलाशोकेन सूकरकः ॥ २ ॥ न्यग्रोधेन तु य
वकस्तिन्दुकवृद्ध्या च षष्टिको भवति । अश्वत्थेन ज्ञेया निष्पत्तिः सर्वस
स्यानाम् ॥ ३ ॥ जम्बूभिस्तिलमाषाः शिरीषवृद्ध्या च कङ्गुनिष्पत्तिः । गोधूम

[illegible] और सूर्यके आर्द्रामें जानेपर प्रायः नियमानुसार वर्षा होती है ॥ २० ॥
[illegible] समागमसे, बुध बृहस्पतिके समागमसे, बृहस्पति और शुक्रके [illegible]
[illegible] है । जो अच्छे ग्रहसे न देखा जाकर या न मिलकर [illegible]
[illegible] हो तो अधिक भय होता है ॥ २१ ॥ जब सूर्यका [illegible]
[illegible] सूर्यके पीछे या आगेमें रहें तो वे पृथ्वीको समुद्रकी समान
[illegible] ॥ २२ ॥

[illegible] बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबाद
[illegible] भाषाटीकायामष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

[illegible]

मधूकैर्यववृद्धिः सप्तपर्णेन ॥ ४ ॥ अतिमुक्तककुन्दाभ्यां कर्पासं सर्षपान्वदेद-शनैः। बदरीभिश्च कुलत्थांश्चिरबिल्वेनादिशेन्मुद्गान् ॥ ५ ॥ अतसी वेतसपुष्पैः पलाशकुसुमैश्च कोद्रवा ज्ञेयाः। तिलकेन शङ्खमौक्तिकरजतान्यथ चेंगुदेन शणः ॥ ६ ॥ करिणश्च हस्तिकर्णैरादेश्या वाजिनोऽश्वकर्णेन। गावश्च पाटलाभिः कदलीभिरजाविकं भवति ॥ ७ ॥ चम्पककुसुमैः कनकं विद्रुमसम्पच्च बन्धुजीवेन। कुरुबकवृद्ध्या वज्रं वैदूर्यं नन्दिकावर्तैः ॥ ८ ॥ विद्याच्च सिन्दुवारेण मौक्तिकं कुंकुमं कुसुम्भेन। रक्तोत्पलेन राजा मन्त्री नीलोत्पलेनोक्तः ॥ ९ ॥ श्रेष्ठी सुवर्णपुष्पैः पद्मैर्विप्राः पुरोहिताः कुमुदैः। सौगन्धिकेन बलपतिरर्केण हिरण्यपरिवृद्धिः ॥ १० ॥ आम्रैः क्षेमं भल्लातकैर्भयं पीलुभिस्तथारोग्यम्। खदिरशमीभ्यां दुर्भिक्षमर्जुनैः शोभना वृष्टिः ॥ ११ ॥ पिचुमन्दनागकुसुमैः सुभिक्षमथ मारुतः कपित्थेन। निचुलेनावृष्टिभयं व्याधिभयं भवति कुटजेन ॥ १२ ॥ दूर्वाकुशकुसुमाभ्यामिक्षुर्वह्निश्च कोविदारेण। श्यामालताभिवृद्ध्या बन्धक्यो वृद्धिमायान्ति ॥ १३ ॥ यस्मिन्देशे स्निग्धनिश्छिद्रपत्राः संदृश्यन्ते

महुएसे गेहूं और सप्तपर्णसे जौकी वृद्धि जानना चाहिये ॥ ४ ॥ अतिमुक्तक और कुन्द इन दोनों पुष्पवृक्षकी वृद्धिसे कपास, असनासे सरसों, बेरसे कुलथी और सदाबेलसे मूंगको जानना चाहिये ॥ ५ ॥ वेतससे अलसी, पलाशसे कोदोंकी वृद्धि, तिलकसे शंख, मोती और चांदीकी वृद्धि और इंगुदीकी वृद्धिसे सनकी उत्पत्ति होती है ॥ ६ ॥ हस्तिकर्णसे हाथियोंकी, अश्वकर्णसे घोडोंकी, पाटलकी वृद्धिसे गायोंकी और कदलीसे बकरी व भेडोंकी वृद्धि होती है ॥ ७ ॥ चम्पाके फूलसे सुवर्ण, दुपहरियाके फूलसे मूंगा, कुरबककी वृद्धिसे वज्र, नन्दिकावर्तसे वैदूर्य, सिन्धुवारकी वृद्धिसे रत्नोंकी वृद्धि, कुसुम्भसे केशर, लालकमलसे राजा और नील कमलसे मंत्री कहा जाता है ॥ ८ ॥ ९ ॥ सुवर्णपुष्पसे वणिक, पद्मसे विप्र, कुमुदसे पुरोहित, सुगन्धद्रव्यसे सेनापति, आकके वृक्षसे सुवर्ण, आमसे कल्याण, भिलावेसे भय, पीलुसे आरोग्य, खैर और शमीसे दुर्भिक्ष, अर्जुनसे शुभवर्षा वृष्टि, नीम और नागकुसुमसे सुभिक्ष, कैथसे पवन, निचुलसे अनावृष्टिका भय और कुटजसे व्याधिभयका ज्ञान होता है ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ दूब और कुशके बढनेसे ईख, कचनारसे आग और श्यामालताकी वृद्धिसे व्यभिचारिणी स्त्रियें बढती हैं ॥ १३ ॥ जिस देशमें वृक्ष और गुल्म और लताओंके पत्ते चिकने और छेदसे

वृक्षगुल्मा लताश्च । तस्मिन् वृष्टिः शोभना सम्प्रदिष्टा [illegible]
[illegible]म् ॥ १४ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां कुसुमलताध्याय एकोनत्रिंशोऽध्यायः २९

अथ त्रिंशोऽध्यायः ।

संध्यालक्षण.

अर्धास्तमितादुदितात् सूर्यादस्पष्टभं नभो यावत् । तावत् सन्ध्याका[illegible]
[illegible]रेतैः फलं चास्मिन् ॥ १ ॥ [illegible]
[illegible]रैः । गन्धर्वनगररविकरदण्डरजः[illegible] ॥ २ ॥ [illegible]
[illegible] भानवानमाचष्टे । रविदीप्तो दक्षिणतो महास्वनः सैन्यघातकरः ॥ ३ ॥
[illegible] संग्रामः मध्ये सेनासमागमः शान्ते । मृगचक्रे पवने वा [illegible]
[illegible] वृष्टिः ॥ ४ ॥ दीप्तमृगाण्डजविरुता प्राक् सन्ध्या देशनाशमाख्याति ।
[illegible] विरुता ग्रहणाय पुरस्य दीप्तास्यैः ॥ ५ ॥

[illegible] उस देशमें शुभ वर्षा होगी और जिस देशमें वृक्षोंके पत्ते [illegible]
[illegible] होंय वहां थोड़ा २ जल बरसता है ॥ १४ ॥

इति श्री[illegible]विरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीय[illegible]
[illegible]मिश्रविरचितायां भाषाटीकाया-
मेकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

[illegible] सूर्यके अर्द्धास्त [illegible] समयसे जबतक आकाशमें नक्षत्र [illegible]
[illegible] है [illegible] संध्याकाल रहता है [illegible] अर्द्धोदित सूर्य [illegible]
[illegible] है ॥ १ ॥ मृग, शकुन, पवन, परिवेष, परिघ, [illegible]
[illegible], गन्धर्वनगर, सूर्यकिरण, दण्ड, धूलि, [illegible] और वर्ण [illegible]
[illegible] जाता है ॥ २ ॥ [illegible]
[illegible] सूचना करता है । सेनाके दक्षिणभागमें [illegible]
[illegible] तो सेनाका नाश होता है ॥ ३ ॥ [illegible]
[illegible] और शान्तमें होनेसे सेनाका समागम होता है, [illegible]
[illegible] दिशा [illegible]
[illegible]
[illegible] करता है [illegible]
[illegible]

गृहतरुतोरणमथने सपांशुलोष्टोत्करेऽनिले प्रबले । भैरवरावे रूक्षे खगपातिनि चाशुभा सन्ध्या ॥ ६ ॥ मन्दपवनावघट्टितचलित पलाशद्रुमा विपवना वा । मधुरस्वरशान्तविहङ्गमृगरुता . पूजिता सन्ध्या ॥ ७ ॥ सन्ध्याकाले स्निग्धा दण्डतडिन्मत्स्यपरिधिपरिवेषाः । सुरपतिचापैरावतरविकिरणाश्चाशु वृष्टिकराः ॥ ८ ॥ विच्छिन्नविषमविध्वस्तविकलकुटिलापसव्यपरिवृत्ताः । तनुह्रस्वविकल-कलुषाश्च विग्रहावृष्टिदाः किरणाः ॥ ९ ॥ उद्योतिनः प्रसन्ना ऋजवो दीर्घाः प्रदक्षिणावर्ताः । किरणाः शिवाय जगतो वितमस्के नभसि भानुमतः ॥ १० ॥ शुक्लाः करा दिनकृतो दिवादिमध्यान्तगामिनः स्निग्धाः । अव्युच्छिन्ना ऋजवो वृष्टिकरास्ते ह्यमोघाख्याः ॥ ११ ॥ कल्मा-षपिङ्गुकपिला विचित्रमाञ्जिष्ठहरितशबलाभाः । त्रिदिवानुबन्धिनो वृष्टयेऽल्प-भयदास्तु सप्ताहात् ॥ १२ ॥ ताम्रा बलपतिमृत्युं पीतारुणसन्निभाश्च

कर लिया जाता है ॥ ५ ॥ गृह, वृक्ष, तोरणमथन और धूरिके साथ मट्टीके ढेलोंको उडानेवाला पवन, प्रबल वेग और भयङ्कर रूखे शब्दसे पक्षियोंको गिरावे तौ अशुभकारी सन्ध्या होती है ॥ ६ ॥ सन्ध्याकालमें मन्द पवनके प्रवाहसे हिलते हुए पलाश अथवा वायुरहित हो और मधुर स्वरसे शान्त दिशामें विहङ्ग और मृगोंके नाद करनेसे सन्ध्या पूजित होती है ॥ ७ ॥ संध्याकालमें दण्ड, तडित, मत्स्य, मंडल, परिवेष, इन्द्रधनु, ऐरावत और सूर्यकी किरण इन सबका स्निग्ध होना शीघ्र वर्षाको लाता है ॥ ८ ॥ टूटी फूटी, टेढी मेडी, विध्वस्त, विकराल, कुटिल, वाईं ओरको झुकी हुई, छोटी २ विकल और मलीन सूर्यकी किरणें संध्या-कालमें हों तो युद्ध होवे वर्षा नहीं हो ॥ ९ ॥ अन्धकारहीन आकाशमें सूर्यकी किरणोंका निर्मल, प्रसन्न, सीधा, दीर्घताका प्राप्त होना और प्रदक्षिणाके आकारमें घूमना संसारके मंगलका कारण होता है ॥ १० ॥ सूर्यके किरण दिनके आदि मध्य और अन्तगामी होकर, चिकने अखंडित, सीधे और श्वेत हों तो वर्षा होती है और इनका नाम अमोघ है ॥ ११ ॥ वही काले, पीले, कपिल, लाल, हरे अनेक प्रकारके होकर आकाशमें फैल जांय तो वर्षाके कारणरूप हैं, परन्तु एक सप्ताहतक कुछ एक भयदायी हैं ॥ १२ ॥ इनके ताम्ररंग होनेमें सेनापतिकी मृत्यु होती है, पीले और लालरंगकी समान हों तो सेनापतिको दुःख होता है, हरे रंगके होनेसे पशु और धान्यका नाश होता है, धूम्रवर्णसे गोनाश, मजीठकी आभाके समान रंगदार होनेसे शस्त्र व अग्निका भय.

तद्व्यसनम् ॥ हरिताः पशुसस्यवधं धूम्रसवर्णा गवां नाशम् ॥ १३ ॥
माञ्जिष्ठाभाः शस्त्राग्निसम्भ्रमं बभ्रवः पवनवृष्टिम् । भस्मसदृशास्त्ववृष्टिं तनुत्वं
शबलकल्माषाः ॥ १४ ॥ बन्धूकपुष्पाञ्जनचूर्णसन्निभं सान्ध्यं रजोऽभ्येति
यदा दिवाकरम् । लोकस्तदा रोगशतैर्निपीड्यते शुक्लं रजो लोकविवृद्धिशा
ये ॥ १५ ॥ रविकिरणजलदमरुतां सङ्घातो दण्डवत् स्थितो दण्डः । स वि
क्स्थितो नृपाणामशुभो दिक्षु द्विजातीनाम् ॥ १६ ॥ शस्त्रभयातङ्ककरो
प्राङ्मध्यसन्धिषु दिनस्य । शुक्लाद्यो विप्रादीन् यदभिमुखस्तां निहन्ति दि
॥ १७ ॥ दधिसदृशाभो नीलो भानुच्छादी खमध्यगोऽभ्रतरुः । पीतच्छुरित
घना घनमूला भूरिवृष्टिकराः ॥ १८ ॥ अनुलोमगेऽभ्रवृक्षे सद्गते पार्थि
नृपस्य वधः । बालतरुप्रतिरूपिणि युवराजामात्ययोर्मृत्युः ॥ १९ ॥ कुवल
वैदूर्याम्बुजकिञ्जल्काभा प्रभञ्जनोन्मुक्ता । सन्ध्या करोति वृष्टिं रविकिरणो
सिता तद्वः ॥ २० ॥ अशुभाकृतिघनगन्धर्वनगरनीहारपांशुधूमयुता । भा

होता है, पीले हो तो पवनके साथ वर्षा होती है, भस्म समान होनेसे अनावृष्टि
शबल और कल्माष रंगके होनेसे वृष्टिका क्षीणभाव हो जाता है ॥ १३ ॥ १४
संध्याकालकी धूरि दुपहरियाके फूल और अंजनचूर्णके समान काली होकर
सूर्यके सामनेको जाती है तब मनुष्य सैकडों प्रकारके रोगोंसे पीडित होते
इसका श्वेत होना मनुष्योंकी वृद्धि और शान्तिका कारण होता है ॥ १५
सूर्यकी किरण जल और पवनसे मिलकर दंडकी समान हो जाय तो यही
होता है, वह विदिक्में स्थित हो तो राजाओंको और दिक्में स्थिर होकर द्विजातियोंको
अशुभकारी होता है ॥ १६ ॥ दिन निकलनेसे पहले और मध्य सन्धिमें जो
दिखाई दे तो शस्त्रभय और रोगभयका करनेवाला होता है, शुक्लादि वर्णका हो
ब्राह्मणोंको और जिनके सन्मुख स्थित होवे उन दिशाओंको हनन करता है ॥ १७
आकाशमें सूर्यके ढकनेवाले दहीकी समान किनारेदार नीले मेघको अभ्रतरु क
हैं. वह और पीले रंगका मेघ जो घनमूल अर्थात् उसके नीचे मुख युक्त हो
बहुतसा जल वर्षता है ॥ १८ ॥ अभ्रतरु शत्रुके ऊपर चढ जानेवाले राजाके पीछे
चलकर अकस्मात् शान्त होजाय तो युवराज और मंत्रीका नाश हो जाता
॥ १९ ॥ नीलकमल, वैदूर्य और पद्मकेशरके समान कांतियुक्त, पवनहीन सन्ध्या
यदि सूर्यकी किरणोंसे प्रकाशित हो तो वर्षा करती है ॥ २० ॥ अशुभाकार मेघ

करोत्यवग्रहमन्यर्तौ शस्त्रकोपकरी ॥ २१ ॥ शिशिरादिषु वर्णाः शोणपीतसितचित्रपद्मरुधिरनिभाः । प्रकृतिभवाः सन्ध्यायां स्वर्तौ शस्ता विकृतिरन्या ॥२२॥ आयुधभृन्नररूपं छिन्नाभ्रं परभयाय रविगामि । सितखपुरेऽर्काक्रान्ते पुरलाभो भेदने नाशः ॥ २३ ॥ सितनितान्तघनावरणं रवेर्भवति वृष्टिकरं यदि सव्यतः । यदि च वीरणगुल्मनिभैर्घनैर्दिवसभर्तुरदीप्तदिगुद्भवैः ॥ २४ ॥ नृपविपत्तिकरः परिघः सितः क्षतजतुल्यवपुर्बलकोपकृत् । कनकरूपधरो बलवृद्धिदः सवितुरुद्गमकालसमुत्थितः ॥ २५ ॥ उभयपार्श्वगतौ परिघौ रवेः प्रचुरतोयकृतौ वपुषान्वितौ । अथ समस्तककुप्परिवारिणः परिघयोऽस्ति कणोऽपि न वारिणः॥२६॥ ध्वजातपत्रपर्वतद्विपाश्वरूपधारिणः । जयाय सन्ध्ययोर्घना रणाय रक्तसन्निभाः ॥ २७ ॥ पलालधूमसञ्चयस्थितोपमा बलाहकाः । बलान्यरूक्षमूर्तयो विवर्द्ध-

---

गंधर्वनगरी, हिम, धूरि और धूम (कुहर) युक्त संध्या वर्षाकालमें वर्षाकी कमी करती है व और ऋतुमें हो तो शस्त्रका कोप करनेवाली होती है ॥ २१ ॥ शिशिरादिऋतुमें संध्याका स्वभावसे उत्पन्न हुआ रंग जो लाल, पीला, श्वेत, चित्रविचित्र पद्म और रुधिरकी समान होता है जैसी ऋतु हो वैसाही वर्ण हो तो कल्याणदायी है, दूसरा रंग हो तो विकार होता है ॥ २२ ॥ शस्त्र धारण किये नररूपधारी सूर्यके सन्मुखके मेघ जो छिन्नभिन्न हों तो शत्रुभय होता है, श्वेत आकाशमें गंधर्वनगर जो सूर्यको ढक लेवे तो आक्रमणकारी राजाको घेरा हुआ नगर प्राप्त हो जाता है, सूर्यनगर गंधर्वनगरका भेदन करे तो नगरका शत्रुसे नाश हो जाता है ॥ २३ ॥ शुक्लवर्ण और शुक्ल किनारेवाले मेघ जो बांई ओरसे सूर्यको ढके अथवा उशीर (खस) गुल्मकी समान अदीप्त दिशासे उत्पन्न हुए बादलसे जो सूर्य ढक जाय तो वर्षा करनेवाला होगा ॥ २४ ॥ सूर्यके उदयकालमें जो शुक्लवर्णका परिघ दिखाई दे तो राजाको विपद होती है, रक्तवर्णसे सेनाका कोप होता है और कनकरूपधारीसे बलकी वृद्धि होती है ॥ २५ ॥ सूर्यके दोनों ओरकी परिधि जो शरीरवाली हो जाय तो बहुतसा जल वर्षता है, सब परिधि दिशाओंको घेर ले तो जलका एक कणभी नहीं गिरता ॥ २६ ॥ सन्ध्याकालके मेघ ध्वज, छत्र, पर्वत, हस्ती और घोडेका रूप धारण करे तो जयका कारण है और रक्तकी समान लाल होवें तो रणके कारण होते हैं ॥ २७ ॥ पलालके धुएकी समान स्निग्ध

च्यन्ति भूभृताम् ॥ २८ ॥ विलम्बिनो द्रुमोपमाः खरारुणप्रकाशिनः । घना शिवाय सन्ध्ययोः पुरोपमाः शुभावहाः ॥ २९ ॥ दीप्तविहङ्गशिवामृगघुष्टा दण्डरजःपरिघादियुता च । प्रत्यहमर्कविकारयुता वा देशनरेशसुभिक्षविनाशे ॥ ३० ॥ प्राची तत्क्षणमेव नक्तमपरा सन्ध्या त्र्यहाद्वा फलं सप्ताहात्परिवेषरेणुपरिघाः कुर्वन्ति सद्यो न चेत् । तद्वत्सूर्य्यकरेन्द्रकार्मुकतडित्प्रत्यर्कमेघानिलास्तस्मिन्नेव दिनेऽष्टमेऽथ विहगाः सप्ताहशाका मृगाः ॥ ३१ ॥ एकं दीप्त्या योजनं भाति सन्ध्या विद्युद्भासा षट् प्रकाशीकरोति । पञ्चाब्दानां गर्जितं याति शब्दो नास्तीयत्ता काचिदुल्कानिपाते ॥ ३२ ॥ प्रत्यर्कसंज्ञः परिधिस्तु तस्य त्रियोजना भा परिघस्य पञ्च । षट् पञ्च दृश्यं परिवेषचक्रं दशामरेशस्य धनुर्विभाति ॥ ३३ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां सन्ध्यालक्षणं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

शर्नधारी मेघ राजालोगोंके बलको बढाते हैं ॥ २८ ॥ मेघ संध्याकालमें तीक्ष्ण स्पर्शके मध्यमक वृक्षाकार होवें या झुक जायें तो मंगल होता है, इसी समयमें नगरके समान मेघ होवें तो शुभ होता है ॥ २९ ॥ सूर्यके सन्मुख होकर पक्षी, गीदड और मृग शब्दायमान और दंड, धूरि और परिघयुक्त वा प्रतिदिन सूर्यको विकारवाली संध्या देश, राजा और सुभिक्षके नाशकी कारण है ॥ ३० ॥ पूर्वसंध्या तत्काल फलको देती है, रात्रि वा सायंसन्ध्या तीन दिनमें और परिवेष, रज और परिघ उसी दिनमें फल न दें तो एक सप्ताहमें फल देते हैं, ऐसेही सूर्याकिरण, इन्द्रधनुष, बिजली, प्रतिसूर्य, मेघ और वायु आठ दिनमें और पक्षी व मृग सप्ताहमें फलके देनेवाले हैं. सन्ध्या अपनी दीप्तिसे एक योजन और बिजली अपनी दीप्तिसे छः योजनतक प्रकाश किया करती है मेघका गर्जना पांच योजनतक जाता है और उल्काके गिरनेके योजनका कुछ परिमाण नहीं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ प्रत्यर्क नामवाली परिधिकी दीप्ति तीन योजन, परिघकी दीप्ति पांच योजन, परिवेषचक्रके दर्शन पांच या छः योजनतक देखी जाती है और इंद्रधनुष दश योजनतक प्रकाश करता है ॥ ३३ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतायां पण्डितमाधवप्रसादविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबाद-निवासि-पण्डितबलदेवप्रसादात्मजपण्डितविरचितायां भाषाटीकायां त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

अथैकत्रिंशोऽध्यायः ।

दिग्दाहलक्षण.

दाहो दिशां राजभयाय पीतो देशस्य नाशाय हुताशवर्णः । यश्चारुणः पादपसव्यवायुः सस्यस्य नाशं स करोति दृष्टः ॥ १ ॥ योऽतीवदीप्त्या कुरुते प्रकाशं छायामपि व्यञ्जयतेऽर्कवच्चः । राज्ञो महद्वेदयते भयं स शस्त्रप्रकोपं क्षतजानुरूपः ॥ २ ॥ प्राक्क्षत्रियाणां सनरेश्वराणां प्राग्दक्षिणे शिल्पिकुमारपीडा । याम्ये सहोग्रैः पुरुषैस्तु वैश्या दूताः पुनर्भूप्रमदाश्च कोणे ॥ ३ ॥ पश्चात्तु शूद्राः कृषिजीविनश्च चौरास्तुरङ्गैः सह वायुदिक्स्थे । पीडां व्रजन्त्युत्तरतश्च विप्राः पाषण्डिनो वाणिजकाश्च शार्व्याम् ॥ ४ ॥ नभः प्रसन्नं विमलानि भानि प्रदक्षिणं वाति सदागतिश्च । दिशां च दाहः कनकावदातो हिताय लोकस्य सपार्थिवस्य ॥ ५ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां दिग्दाहलक्षणं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ३१

पीले वर्णका दिग्दाह राजभयका कारण, हुताशनके वर्णका दिग्दाह देश नाशका कारण होता है और लालरंगका हुआ दक्षिणी पवन धान्यको नष्ट करता है ॥ १ ॥ जिस दिग्दाहमें अत्यन्त दीप्ति हो, और सूर्यकी समान छायाको (अंतर्गतज्योतिको) प्रकाशित करता है वह रुधिरकी समान दाह राजाको महाभय देता है और शस्त्रका कोप प्रकाशित करता है ॥ २ ॥ पूर्व दिशामें दिग्दाह हो तो राजा और क्षत्रियोंको पीडा होती है, अग्निकोणमें कुमारगण और शिल्पयोगी पीडा पाता है, दक्षिणमें उग्रपुरुष, वैश्य, दूतगण और दूसरी बार व्याही हुई स्त्रियोंको पीडादायक होता है ॥ ३ ॥ पश्चिमदिशामें शूद्र और किसान, वायुकोणमें तुरंगसहित चोर लोग और उत्तर दिशामें ब्राह्मण लोग और ईशान कोणमें पाषण्डी और बनियोंको पीडा होती है ॥ ४ ॥ जो आकाश प्रसन्न हो, नक्षत्र निर्मल हो, पवन घूमता हुआ चले, तो सुवर्णके रंगका दिग्दाह लोगोंके और राजाके हितका निमित्त होता है ॥ ५ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायामेकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः ।

भूमि कांपनेके लक्षण.

क्षितिकम्पमाहुरेके बृहदन्तर्जलनिवासिसत्त्वकृतम् । भूभारखिन्नदिग्गज-
विश्रामसमुद्भवं चान्ये ॥ १ ॥ अनिलोऽनिलेन निहतः क्षितौ पतन् सस्वनं
करोत्येके । केचित्त्वदृष्टकारितमिदमन्ये प्राहुराचार्याः ॥ २ ॥ गिरिभिः पु-
रा सपक्षैर्वसुधा प्रपतद्भिरुत्पतद्भिश्च । आकम्पिता पितामहमाहामरसदसि सव्रीडं
॥ ३ ॥ भगवन्नाम ममैतत्त्वया कृतं यदचलेति तन्न तथा । क्रियतेऽचलैश्चलद्भिः
शक्ताहं नास्य खेदस्य ॥ ४ ॥ तस्याः सगद्गदगिरं किञ्चित्स्फुरिताधरं वि-
नतमास्यं । साश्रुविलोचनमाननमवलोक्य पितामहः प्राह ॥ ५ ॥ मन्युं हरेन्द्र
धात्र्याः क्षिप कुलिशं शैलपक्षभङ्गाय । शक्रः कृतमित्युक्त्वा मा भैरिति व-
सुमतीमाह ॥ ६ ॥ किन्त्वनिलदहनसुरपतिवरुणाः सदसत्फलावबोधार्थं ।
प्राग्द्वित्रिभागेषु दिननिशोः कम्पयिष्यन्ति ॥ ७ ॥ चत्वार्यार्यम्णाद्ये-

[illegible] भूमिकम्पको जलमें रहनेवाले बड़े प्राणियोंका किया [illegible] कहते हैं और कोई २ कहते हैं-पृथ्वीके भारको धारण करनेसे थके हुए दिग्ग[illegible] [illegible] इसका कारण है ॥ १ ॥ और कोई २ कहते हैं कि [illegible] [illegible], तब वही शब्दके साथ भूमिकम्पको करता है [illegible] [illegible] कारण कहते हैं. किसी किसी आचार्यका मत [illegible] पृथ्वी [illegible] आकाशसे नीचे गिरते हुए और पृथ्वीपर [illegible] [illegible] कम्पायमान हो देवताओंकी [illegible] ब्रह्माजीसे [illegible],-हे भगवन् ! आपने मेरा " अचला " नाम [illegible] [illegible] चलायमान पर्वतोंके कारणसे मैं चलती (कम्पायुक्त) [illegible] [illegible] नहीं सह सकती ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ पृथ्वीके [illegible] [illegible] ब्रह्माजी [illegible]-हे इन्द्र ! पृथ्वीका शोक [illegible] [illegible] इन्द्रने " तथास्तु " कहकर पृथ्वीसे [illegible] [illegible] इन्द्र और वरुण [illegible] [illegible]

चलिताचलवर्ष्माणो गम्भीरविराविणस्तडित्वन्तः । गवलालिकुलाहिनिभा विसृजन्ति पयः पयोवाहाः ॥ १७ ॥ ऐन्द्रं श्रुतिकुलजातिख्यातावनिपालगणविध्वंसि । अतिसारगलग्रहवदनरोगकृच्छर्दिकोपाय ॥ १८ ॥ काशियुगन्धरपौरवकिरातकीराभिसारहलमद्राः । अर्बुदसुवास्तुमालवपीडाकरमिष्टवृष्टिकरम् ॥ १९ ॥ पौष्णाप्यार्द्राश्लेषामूलाहिर्बुध्न्यवरुणदेवानि । मण्डलमेतद्वारुणमस्याभवन्ति रूपाणि ॥ २० ॥ नीलोत्पलालिभिन्नाञ्जनत्विषो मधुररावाविणो बहुलाः तडिदुद्भासितदेहा धारांकुशवर्षिणो जलदाः ॥ २१ ॥ वारुणमर्णवसरिदाश्रितघ्नमतिवृष्टिदं विगतवैरम् । गोनर्दचेदिकुकुरान् किरातवैदेहकान् हन्ति ॥ २२ ॥ षड्भिर्मासैः कम्पो द्वाभ्यां पाकं च याति निर्घातः । अन्यानप्युत्पातान् जगुरन्ये मण्डलैरेतैः ॥ २३ ॥ उल्का हरिश्चन्द्रपुरं रजश्च निर्घातभूकम्पककुब्दाहाः । वातोऽतिचण्डो ग्रहणं रवीन्द्वोर्नक्षत्रतारागणवैकृतानि ॥ २४ ॥ व्यभ्रे वृष्टिर्वैकृतं वातवृष्टिर्धूमोऽनग्नेर्विस्फुलिङ्गार्चिषो वा । वन्यं सत्त्वं ग्राममध्ये विशेद्

ऐसा है, चलते हुए पर्वतकी समान रूपधारी, गंभीर शब्दकारी, तडिद्युक्त, वन, भैंस, भ्रमर और सांपकी समान काले मेघ जलको वर्षाते हैं. इन्द्रवर्गमें भूमिकम्प होनेसे समुद्र और नदियोंमें रहनेवाले राजा और गणपतियोंका विध्वंस होता है और अतिसार, गलग्रह, वदनरोग और वमनकोप होता है ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ काशी, युगंधर, पौरव, किरात, कीर, अभिसार, हल, मद्र, अर्बुद, सुवास्तु और मालव देशमें पीडा होती है और अभिलाषाके अनुसार वर्षा होती है ॥ १९ ॥ रेवती, पूर्वाषाढा, आर्द्रा, आश्लेषा, मूल, उत्तराभाद्रपदा, शतभिषा ये सात नक्षत्र वरुणमण्डलके हैं. इनका स्वरूप इस प्रकार है नीला कमल, भ्रमर और अञ्जनकी समान प्रतिफलित द्युतिमान्, बिजलीकरके उद्भासित देह बहुतसे बादल मधुर शब्द करते २ जलधारारूप अंकुरोंसे वर्षते हैं ॥ २० ॥ २१ ॥ इस वारुणमंडलमें भूमिकम्प हो तौ समुद्र और नदियोंके आश्रयमें रहनेवालोंका नाश होता है, मह वृष्टिकारक, द्वेषहीन और गोनर्द, चेदी, कुकुर, किरात और विदेहवासियोंका नाश करता है ॥ २२ ॥ भूमिकंपका फल छः मासमें पकता है, निर्घातका फल दो मासमें होता है; इन मंडलोंमें और उत्पात हों वेभी इन दो महीनोंमेंही फल देंगे ॥ २३ ॥ उल्का, गंधर्वपुर, धूरि, उपद्रव, भूकंप, दिग्दाह, प्रचंडपवन और सूर्य चंद्रमाका ग्रहण, नक्षत्र और तारोंके विकारके लिये कहा गया ॥ २४ ॥ विना बादलके वर्षाका

रात्रावैन्द्रं कार्मुकं दृश्यते वा ॥ २५ ॥ सन्ध्याविकाराः परिवेषखण्डा नद्यः प्रतीपा दिवि तूर्यनादाः । अन्यच्च यत्स्यात् प्रकृतः प्रतीपं तन्मण्डलैरेव फलं निगाद्यम् ॥ २६ ॥ हन्त्यैन्द्रो वायव्यं वायुश्चाप्यैन्द्रमेवमन्योऽन्यम् । वारुणहौतभुजावपि वेलानक्षत्रजाः कम्पाः ॥ २७ ॥ प्रथितनरेश्वरमरणव्यसनान्याग्नेयवायुमण्डलयोः । क्षुद्भयमरकावृष्टिभिरुपताप्यन्ते जनाश्चापि ॥ २८ ॥ वारुणपौरन्दरयोः सुभिक्षशिववृष्टिहार्दयो लोके । गावोऽतिभूरिपयसो निवृत्तवैराश्च भूपालाः ॥ २९ ॥ पक्षैश्चतुर्भिरनिलस्त्रिभिराग्निर्दैवराट् च सप्ताहात् । सद्यः फलति च वरुणो येषु न कालोऽद्भुतेपक्तः ॥ ३० ॥ चलयति पवनः शतद्वयं शतमनलो दशयोजनान्वितम् । सलिलपतिरशीतिसंयुतं कुलिशधरोऽप्यधिकं च षष्टिकम् ॥ ३१ ॥ त्रिचतुर्थसप्तमदिने मासे पक्षे तथा त्रिपक्षे च । यदि भवति भूमिकम्पः प्रधाननृपनाशनो भवति ॥ ३२ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्सं० भूमिकम्पलक्षणं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥

होना, विकार, अग्निकी चिनगारीदार लपट, पवनके साथ वर्षाका होना, धूम, घनेके प्राणियोंका ग्राममें आना, रात्रिमें इन्द्रधनुषका दिखाई देना, संध्याका विकार, परिवेषखंड, नदियोंकी गतिका विपरीत होना, आकाशमें तुरहीका बजना. औरभी जो कुछ संसारमें विपरीतता हो इस वर्गसेही उसका फल कहा जाता है ॥२५॥ २६ ॥ जो इन्द्रमंडल वायव्यमंडलको निहत करे या वायव्यमंडल इन्द्रवर्गका नाश करे, जो ऐसेही वारुण और आग्नेयमंडल परस्पर एक दूसरेको हनन करे तो उसको वेलानक्षत्रजात कम्प कहते हैं ॥ २७ ॥ आग्नेय और वायव्यमंडलके परस्पर टकरानेसे विख्यात राजाकी मृत्यु होती है या वह विपत्तिमें पडता है. और मनुष्य क्षुधाभय, मरी और वर्षाके न होनेसे सन्तापित होते हैं; वरुण और पौरन्दर मंडलके अभिपातसे सुभिक्ष, कल्याणी वर्षा और प्रीति होती है; गायें बहुतसा दूध देने लगती हैं, राजा लोग आपसका वैर छोड देते हैं ॥२८॥२९॥ अंग फडकना आदि जिन उपद्रवोंके फलका समय नहीं कहा; उनके वायव्यमंडलमें होनेसे दो मासके मध्यमें फल होता है; अग्निवर्ग तीन पक्षमें, इन्द्रवर्ग सप्ताहके पीछे और वरुणवर्ग शीघ्र फलवान् होता है ॥ ३० ॥ पवनवर्ग दो सत योजन, अनलवर्ग एक सत दस योजन, वरुणवर्ग एक शत अस्सी योजन और इन्द्रवर्ग साठ योजनसे कुछ अधिक भूमिको कंपायमान करता है ॥ ३१ ॥ भूमिकंपके बाद तीसरे,

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ।

उल्कालक्षण.

दिवि भुक्तशुभफलानां पततां रूपाणि यानि तान्युल्काः । धिष्ण्योल्काशनिविद्युत्तारा इति पञ्चधा भिन्नाः ॥ १ ॥ उल्का पक्षेण फलं तद्वद्धिष्ण्याशनिस्त्रिभिः पक्षैः । विद्युदहोभिः षड्भिस्तद्वत्तारा विपाचयति ॥ २ ॥ तारा फलपादकरी फलार्धदात्री प्रकीर्तिता धिष्ण्या । तिस्रः सम्पूर्णफला विद्युदथोल्काशनिश्चेति ॥ ३॥ अशनिः स्वनेन महता नृगजाश्वमृगाश्मवेश्मतरुपशुषु । निपतति विदारयन्ती धरातलं चक्रसंस्थाना ॥ ४ ॥ विद्युत्सत्त्वत्रासं जनयन्ती तटतटस्वना सहसा । कुटिलविशाला निपतति जीवेन्धनराशिषु ज्वलिता ॥५॥ धिष्ण्या कृशाल्पपुच्छा धनूंषि दश दृश्यतेऽन्तराण्यधिकम् । ज्वलिताङ्गारनिकाशा द्वौ हस्तौ सा प्रमाणेन ॥ ६ ॥ तारा हस्तं दीर्घा शुक्ला ताम्राब्जतन्तुरूपा वा । तिर्यगधश्चोर्ध्वं

चौथे और सातवें दिनमें या महीनेमें वा पक्षमें अथवा तीन पक्षमें जो फिर भूमिकंप हो तौ मुख्यराजाका नाश होता है ॥ ३२ ॥

स्वर्गमें फल भोगे हुए पुरुषोंका गिरनेके समय जो रूप होता वही उल्का है. धिष्ण्या, उल्का, अशनि, बिजली और तारा यह पांच भाग उल्काके हैं ॥ १ ॥ उल्का १५ दिनमें वैसेही धिष्ण्या और अशनि तीन पक्षमें अर्थात् ४५ दिनमें और तारा वा बिजलीका फल छः दिनमें होता है ॥ २ ॥ तारा एक चौथाई फलका करनेवाली है, धिष्ण्या आधे फलको देनेवाली और बिजली, उल्का, वज्र इन तीनोंका सम्पूर्ण फल होता है ॥ ३ ॥ अशनिका आकार चक्रकी समान है; यह बडे शब्दके साथ पृथ्वीको फाडती हुई मनुष्य, गज, अश्व, मृग, पत्थर, गृह, वृक्ष और पशुओंके ऊपर गिरती है ॥ ४ ॥ तड २ शब्द करती हुई विद्युत् अचानक प्राणियोंको त्रास उपजाती हुई कुटिल और विशाल होकर जलती, हुई जीवोंके ऊपर और ईधनके ढेरपर गिरती है ॥ ५ ॥ पतली, छोटी, पूंछवाली धिष्ण्या जलते हुए अंगारेकी समान दश धनुषसे कुछ अधिक स्थानतक दिखाई देती है इसका परिमाण दो हाथका है ॥६॥ तारा तांबा, कमल, तारूप वा शुक्ल होती है;

वा याति वियत्युत्समानेव ॥ ७ ॥ उल्का शिरसि विशाला निपत
मतनुपुच्छा । दीर्घा भवति च पुरुषं भेदा बहवो भवन्त्यस्याः ॥८॥ प्रे
खरकरभनक्रकपिदंष्ट्रिलाङ्गलमृगाभाः । गोधाहिधूमरूपाः पापा या चं
रस्का ॥९॥ ध्वजझषकरिगिरिकमलेन्दुतुरगसन्तप्तरजतहंसाभाः । श्रीव
शङ्खस्वस्तिकरूपाः शिवसुभिक्षाः ॥ १० ॥ अम्बरमध्याद्बह्वयो निप
राजराष्ट्रनाशाय । बम्भ्रमती गगनोपरि विभ्रममाख्याति लोकस्य ॥ १
संस्पृशती चन्द्रार्कौ तद्विसृता वा सभूप्रकम्पा च । परचक्रागमनृपवधदुर्भि
वृष्टिभयजननी ॥ १२ ॥ पौरेतरघ्नमुल्कापसव्यकरणं दिवाकरहिमांश्वो
उल्का शुभदा पुरतो दिवाकरनिःसृता यातुः ॥ १३ ॥ शुक्ला रक्ता पीता कृ
चोल्का द्विजादिवर्णघ्नी । क्रमशश्चैतान् हन्युर्मूर्धोरःपार्श्वपुच्छस्थाः ॥ १४
त्तरदिगाद्यपतिता विप्रादीनामनिष्टदा रूक्षा । ऋज्वी स्निग्धाखण्डा नीचोपगत

का विस्तार एक हाथका है, खींचते हुएकी समान आकाशमें तिरछी या आधी
ी हुई गमन करती है ॥७॥ मतनुपुच्छा विशाला उल्का गिरते २ बढती है; परन्तु
की पूंछ छोटी होती जाती है. इसकी दीर्घता पुरुषकी समान होती है, इसके
अनेक भेद हैं ॥ ८ ॥ कभी यह प्रेत, शस्त्र, खर, करभ, नाका, बन्दर, डाढवाले
जीव और मृगकी समान आकारवाली हो जाती है. कभी गोह सांप और धूमरूप
हो जाती है और कभी दो शिरके रूपवाली होती है. यह पापमयी है ॥ ९ ॥
कभी ध्वज, मत्स्य, हाथी, पर्वत, कमल, चन्द्रमा, अश्व, तपी हुई धूल और हंसकी
समान, कभी श्रीवत्स, वज्र, शंख और स्वस्तिक रूपसे प्रकाशित होती है परन्तु
यह सब कल्याण और सुभिक्षकारी है ॥ १० ॥ परन्तु अनेक प्रकारकी रूपवाली
ल्कायें निरन्तर आकाशमें घूमते २ आकाशमेंसे गिरती हैं ॥ ११ ॥ चंद्र और
र्यको स्पर्श करके उनमेंसे गिरे अथवा भूमि कम्पयुक्त हो तो नगरपर पराये
ाका अधिकार होगा, नृपवध, दुर्भिक्ष, अवृष्टि और भयकारी होती है ॥ १२ ॥
ं चंद्रमाके दांई ओर उल्का गिरे तो वनवासियोंका नाश करता है. दिवाकरसे
नकली हुई उल्का सन्मुख आवे तो गमनकारीको शुभ है ॥ १३ ॥ शुक्ल, रक्त,
पीत और काले रंगकी उल्का क्रमानुसार द्विजातिवर्गोका नाश करनेवाली है और
उसका मस्तक, छाती, बगल और पूंछमें यह सब वर्ण स्थापित हों तौभी यह
क्रमानुसार ब्राह्मणादि चार वर्णोंकी नाश करनेवाली है ॥ १४ ॥ प्रदक्षिणाके
क्रमसे उत्तर आदि दिशाओंमें उल्का रूखे भावसे गिरे तो क्रमानुसार ब्राह्मण

च तद्वृद्धये ॥ १५ ॥ श्यामा वारुणनीलासृग्दहनासितभस्मनिभा रूक्षा।
सन्ध्यादिनजा वक्रा दलिता च परागमभयाय ॥ १६ ॥ नक्षत्रग्रहघाते तद्भक्तीनां
क्षयाय निर्दिष्टा। उदये घ्नती रवीन्दू पौरेतरमृत्यवेऽस्ते वा ॥ १७ ॥ भाग्या-
दित्यधनिष्ठामूलेषूल्काहतेषु युवतीनाम् । विप्रक्षत्रियपीडा पुष्यानिलविष्णु-
देवेषु ॥ १८ ॥ ध्रुवसौम्येषु नृपाणामुग्रेषु सदारुणेषु चौराणाम्। क्षिप्रेषु
कलाविदुषां पीडा साधारणे च हते ॥ १९ ॥ कुर्वन्त्येताः पतिता देवप्रतिमासु
राजराष्ट्रभयम्। शक्रोपरि नृपतीनां गृहेषु तत्स्वामिनां पीडाम् ॥ २०
आशाग्रहोपघाते तद्देश्यानां खले कृषिरतानाम्। चैत्यतरौ सम्पतिता सत्कृतपी
करोत्युल्का ॥ २१ ॥ द्वारि पुरस्य पुरक्षयमथेन्द्रकीले जनक्षयोऽभिहिता

क्षत्री, वैश्य और शूद्रोंका नाश करती है. सीधी, चिकनी, अखंड और आकाश
नीचे भागमें जानेवाली हो तौ उपरोक्त वर्णोंकी वृद्धि करती है ॥ १५ ॥ श्याम,
अरुण, नील, रक्त, दहन, असित और भस्मकी समान रूखी संध्यासे उत्पन्न हुई
दिनसे उत्पन्न हुई, टेढी और दलित हुई उल्काका गिरना शत्रुके भयका कार
है ॥ १६ ॥ उल्कासे नक्षत्रघात या ग्रहघात हो तौ पीछे कही हुई भक्तिका ना
होता है और तिस २ वस्तुका क्षय होता है, उदय या अस्तकालमें उल्का सू
या चंद्रमाको हनन करे तौ वनवासियोंका वध होता है ॥ १७ ॥ पूर्वाफाल्गुनी
पुनर्वसु, धनिष्ठा और मूल नक्षत्रके योगतारेको उल्का हनन करे तौ युवतियोंक
पीडा होती है, और पुष्य, स्वाति व श्रवणको उल्का हत करे तौ ब्राह्मण औ
क्षत्रियोंको पीडा होती है ॥ १८ ॥ रोहिणी, तीनों उत्तरा, मृगशिरा, चित्रा, अनु
राधा और रेवतीको उल्का पीडित करे तो राजाओंको पीडा होती है, तीनों पूर्वा
भरणी, मघा, आर्द्रा, आश्लेषा, ज्येष्ठा और मूलनक्षत्रको उल्का ताडन करे तौ
चोरोंको पीडा होती है, अश्विनी, पुष्य, अभिजित्, कृत्तिका और विशाखाका
उल्कासे भेद हो तौ गीत नृत्य आदि कला जाननेवालोंको पीडा होती है ॥ १९ ॥
देवताकी मूर्तिपर उल्का गिरे तौ राजा और राज्यको भयदायक है. इन्द्रध्वजपर
गिरे तौ राजाओंको और घरमें गिरे तौ गृहस्वामियोंको पीडा उत्पन्न करती है ॥ २० ॥
दिशाके स्वामी गृहके ऊपर उल्का गिरे तौ तिस दिशाके रहवासियोंका, खलिहानमें
गिरनेसे किसानोंको, छोटे मंदिरके निकट वृक्ष लगा हो उसपर उल्का गिरे तौ
साधुओंको पीडा होती है ॥ २१ ॥ पुरद्वारपर उल्का गिरे तौ पुरका क्षय, इन्द्रकी-

बलापतने विप्रान् विनिहन्याद्रोमिनो गोष्ठे ॥ २२ ॥ क्ष्वेडास्फोटितवादितगं
स्कुटस्वना भवन्ति यदा। उल्कानिपातसमये भयाय राष्ट्रस्य सनृपस्य ॥ २
यस्याश्चिरं तिष्ठति खेऽनुषङ्गो दण्डाकृतिः सा नृपतेर्भयाय । या चो
तन्तुधृतेव खस्था या वा महेन्द्रध्वजतुल्यरूपा ॥ २४ ॥ श्रेष्ठिनः प्रतीप
तिर्यगा नृपाङ्गनाः। हन्त्यधोमुखी नृपान् ब्राह्मणानथोर्ध्वगा ॥ २५
बर्हिपुच्छरूपिणी लोकसंक्षयावहा। सर्पवत् प्रसर्पिणी योषितामनिष्टदा ॥ २६
हन्ति मण्डला पुरं छत्रवत् पुरोहितम् । वंशगुल्मवत् स्थिता राष्ट्रदोषका
रिणी ॥ २७ ॥ व्यालसूकरोपमा विस्फुलिङ्गमालिनी । खण्डशोऽथवा गत
सस्वना च पापदा ॥ २८ ॥ सुरपतिचापप्रतिमा राज्यं नभसि विलीना जलदान्
हन्ति । पवनविलोमा कुटिलं याता न भवति शस्ता विनिवृत्ता वा ॥ २९ ॥

ष्के ऊपर गिरे तो मनुष्योंका क्षय कहा है, ब्रह्माके मंदिरपर गिरे तौ ब्राह्मणोंको
और गोष्ठमें गिरे तौ बहुतसे गोसम्पन्न मनुष्योंको हनन करती है ॥ २२ ॥ जो
ल्का गिरनेके समय क्ष्वेड (समरके समय वीरका सिंहनाद करना), आस्फोटित,
ादित गीत और रोनेका ऊंचा शब्द हो तो नृत्ययुक्त राज्यको भय होता है
२३ ॥ जिसका आकार दंडके आकारकी समान होकर आकाशमें बहुत
रतक रहे वह उल्का राजाओंके भयका कारण होती है और जो आकाशमें ठहर-
र डोरीसे बंधी हुईकी समान प्रकाशित या इन्द्रकी ध्वजाके समान हो तौ
जाको भयदायी है ॥ २४ ॥ जो उल्का विपरीत चले अर्थात् जहांसे निकली हो
वहांको फिर लौट चले तौ शेठलोगोंको भय करती है, टेढी चलनेवाली उल्का रानि-
योंका, नीचेको मुखवाली उल्का राजाओंका और ऊपरको चलनेवाली उल्का ब्राह्म-
णोंका नाश करती है ॥ २५ ॥ मोरपूंछके समान आकारवाली उल्का लोकक्षय-
कारी और सर्पकी समान चलनेवाली उल्का स्त्रियोंका अनभल करती है ॥ २६ ॥
मंडलरूपवाली उल्का नगरको, छत्ररूप उल्का पुरोहितको नाश करती है और
बांसकी बीडके समान उल्का देशमें दोष उत्पन्न करती है ॥ २७ ॥ व्याल (काले
सांप) और सूकरकी समान आकारयुक्त वा चिनगारीदार अथवा पिण्डाकार या
शब्दसहित उल्का चले तौ पापदायिनी है ॥ २८ ॥ इन्द्रधनुषकी समान होवे तौ
राज्यका नाश करे, आकाशमें लीन हो जाय तौ बादलोंका नाश करे और पवनकी
प्रतिकूल दिशामें कुटिलभावसे गमन करे और फिर लौट आवे तौ शुभदायी नहीं

च तद्वृद्धये ॥ १५ ॥ श्यामा वारुणनीलासृग्दहनासितभस्मनिभा रूक्षा । सन्ध्यादिनजा वक्रा दलिता च परागमभयाय ॥ १६ ॥ नक्षत्रग्रहघाते तद्भक्तीनां क्षयाय निर्दिष्टा । उदये घ्नती रवीन्दू पौरेतरमृत्यवेऽस्ते वा ॥ १७ ॥ भाग्यादित्यधनिष्ठामूलेषूल्काहतेषु युवतीनाम् । विप्रक्षत्रियपीडा पुष्यानिलविष्णुदेवेषु ॥ १८ ॥ ध्रुवसौम्येषु नृपाणामुग्रेषु सदारुणेषु चौराणाम् । क्षिप्रेषु कलाविदुषां पीडा साधारणे च हते ॥ १९ ॥ कुर्वन्त्येताः पतिता देवप्रतिमासु राजराष्ट्रभयम् । शक्रोपरि नृपतीनां गृहेषु तत्स्वामिनां पीडाम् ॥ २० ॥ आशाग्रहोपघाते तद्देश्यानां खले कृषिरतानाम् । चैत्यतरौ सम्पतिता सत्कृतपीडां करोत्युल्का ॥ २१ ॥ द्वारे पुरस्य पुरक्षयमथेन्द्रकीले जनक्षयोऽभिहितः

क्षत्री, वैश्य और शूद्रोंका नाश करती है. सीधी, चिकनी, अखंड और आकाशसे नीचे भागमें जानेवाली हो तौ उपरोक्त वर्णोंकी वृद्धि करती है ॥ १५ ॥ श्याम, अरुण, नील, रक्त, दहन, असित और भस्मकी समान रूखी संध्यासे उत्पन्न हुई, दिनसे उत्पन्न हुई, टेढी और दलित हुई उल्काका गिरना शत्रुके भयका कारण है ॥ १६ ॥ उल्कासे नक्षत्रघात या ग्रहघात हो तौ पीछे कही हुई भक्तिका नाश होता है और तिस २ वस्तुका क्षय होता है, उदय या अस्तकालमें उल्का सूर्य या चंद्रमाको हनन करे तौ वनवासियोंका वध होता है ॥ १७ ॥ पूर्वाफाल्गुनी, पुनर्वसु, धनिष्ठा और मूल नक्षत्रके योगतारेको उल्का हनन करे तौ युवतियोंको पीडा होती है, और पुष्य, स्वाति व श्रवणको उल्का हत करे तौ ब्राह्मण और क्षत्रियोंको पीडा होती है ॥ १८ ॥ रोहिणी, तीनों उत्तरा, मृगशिरा, चित्रा, अनुराधा और रेवतीको उल्का पीडित करे तो राजाओंको पीडा होती है, तीनों पूर्वा, भरणी, मघा, आर्द्रा, आश्लेषा, ज्येष्ठा और मूलनक्षत्रको उल्का ताडन करे तौ चोरोंको पीडा होती है, अश्विनी, पुष्य, अभिजित्, कृत्तिका और विशाखाका उल्कासे भेद हो तौ गीत नृत्य आदि कला जाननेवालोंको पीडा होती है ॥१९॥ देवताकी मूर्तिपर उल्का गिरे तौ राजा और राज्यको भयदायक है. इन्द्रध्वजपर गिरे तौ राजाओंको और घरमें गिरे तौ गृहस्वामियोंको पीडा उत्पन्न करती है ॥२०॥ दिशाके स्वामी ग्रहके ऊपर उल्का गिरे तौ तिस दिशाके रहवासियोंका, खलिहानमें गिरनेसे किसानोंको, छोटे मंदिरके निकट वृक्ष लगा हो उसपर उल्का गिरे तौ साधुओंको पीडा होती है ॥ २१ ॥ पुरद्वारपर उल्का गिरे तौ पुरका क्षय, इन्द्र

ब्रह्मायतने विप्रान् विनिहन्याद्गोमिनो गोष्ठे ॥ २२ ॥ क्ष्वेडास्फोटितवादितगीतो-
त्कुष्टस्वना भवन्ति यदा । उल्कानिपातसमये भयाय राष्ट्रस्य सनृपस्य ॥ २३ ॥
यस्याश्चिरं तिष्ठति खेऽनुषङ्गो दण्डाकृतिः सा नृपतेर्भयाय । या चोह्यते
तन्तुधृतेव खस्था या वा महेन्द्रध्वजतुल्यरूपा ॥ २४ ॥ श्रेष्ठिनः प्रतीपगा
तिर्यगा नृपाङ्गनाः । हन्त्यधोमुखी नृपान् ब्राह्मणानथोर्ध्वगा ॥ २५ ॥
बर्हिपुच्छरूपिणी लोकसंक्षयावहा । सर्पवत् प्रसर्पिणी योषितामनिष्टदा ॥ २६ ॥
हन्ति मण्डला पुरं छत्रवत् पुरोहितम् । वंशगुल्मवत् स्थिता राष्ट्रदोषका-
रिणी ॥ २७ ॥ व्यालसूकरोपमा विस्फुलिङ्गमालिनी । खण्डशोऽथवा गता
सस्वना च पापदा ॥ २८ ॥ सुरपतिचापप्रतिमा राज्यं नभसि विलीना जलदान्
हन्ति । पवनविलोमा कुटिलं याता न भवति शस्ता विनिवृत्ता वा ॥ २९ ॥

इके ऊपर गिरे तो मनुष्योंका क्षय कहा है, ब्रह्माके मंदिरपर गिरे तो ब्राह्मणोंको और गोठमें गिरे तो बहुतसे गोसम्पन्न मनुष्योंको हनन करती है ॥ २२ ॥ जो उल्का गिरनेके समय क्ष्वेड (समरके समय वीरका सिंहनाद करना), आस्फोटित, वादित गीत और रोनेका ऊंचा शब्द हो तो नृपयुक्त राज्यको भय होता है ॥ २३ ॥ जिसका आकार दंडके आकारकी समान होकर आकाशमें बहुत देरतक रहे वह उल्का राजाओंके भयका कारण होती है और जो आकाशमें ठहर-कर डोरीसे बंधी हुईकी समान प्रवाहित या इन्द्रकी ध्वजाके समान हो तो राजाको भयदायी है ॥ २४ ॥ जो उल्का विपरीत चले अर्थात् जहांसे निकली हो वहांको फिर लौट चले तो सेठलोगोंको भय करती है, टेढी चलनेवाली उल्का रानि-योंका, नीचेको मुखवाली उल्का राजाओंका और ऊपरको चलनेवाली उल्का ब्राह्म-णोंका नाश करती है ॥ २५ ॥ मोरपूंछके समान आकारवाली उल्का लोकक्षय-कारी और सर्पकी समान चलनेवाली उल्का स्त्रियोंका अनभल करती है ॥ २६ ॥ मंडलरूपवाली उल्का नगरको, छत्ररूप उल्का पुरोहितको नाश करती है और बांसकी बीडके समान उल्का देशमें दोष उत्पन्न करती है ॥ २७ ॥ व्याल(सांप) और सूकरकी समान आकारयुक्त वा चिनगारीदार अथवा [illegible]
शब्दसहित उल्का चले तो पापदायिनी है ॥ २८ ॥ इन्द्रधनुषकी [illegible]
राज्यका नाश करे, आकाश [illegible] हो जाय तो बादलोंका नाश
प्रतिकूल दिशामें कु[illegible] [illegible]रे और फिर लौट [illegible]

अभिभवति यतः पुरं बलं वा भवति भयं तत एव पार्थिवस्य । निपतति
यथा दिशा प्रदीप्ता जयति रिपूनचिरात्तया प्रयातः ॥ ३० ॥
इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायामुल्कालक्षणं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ३३

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ।

परिवेषलक्षण.

सम्मूर्छिता रवीन्द्वोः किरणाः पवनेन मण्डलीभूताः । नानावर्णाकृतयस्त
न्वभ्रे व्योम्नि परिवेषाः ॥ १ ॥ ते रक्तनीलपाण्डुरकापोताभाभ्रशबलहरितशुक्लाः ।
इन्द्रयमवरुणनिर्ऋतिश्वसनेशपितामहाग्निकृताः ॥ २ ॥ धनदः करोति मेचक
मन्योऽन्यगुणाश्रयेण चाप्यन्ये । प्रविलीयते मुहुर्मुहुरल्पफलः सोऽपि वायु
कृतः ॥ ३ ॥ चापशिखिरजततैलक्षीरजलाभः स्वकालसम्भूतः । अविकलवृत्तः
स्निग्धः परिवेषः शिवसुभिक्षकरः ॥ ४ ॥ सकलगगनानुचारी नैकाभः क्षतजा

है ॥ २९ ॥ जिस ओरसे उल्का आकर पुर या सेनाके ऊपर गिरे उस दिशासे
राजाको भय होता है और जिस दिशामें प्रकाश करके गिरे राजा उस दिशामें
जाय तौ शीघ्र शत्रुओंको जीतनेके लिये समर्थ होता है ॥ ३० ॥
इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवा-
स्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥

सूर्य या चंद्रमाके किरण पर्वतके ऊपर प्रतिबिम्बित और पवनके द्वारा
मंडलाकार होकर थोडेसे मेघवाले आकाशमें अनेक रंग और आकारके
दिखलाई देते हैं उनको परिवेष कहते हैं ॥ १ ॥ रक्त, नील, थोडासा
श्वेत, कबूतरके रंगका, मेघके रंगका, शबल (अनेक प्रकारके रंगोंसे युक्त),
हरिद्वर्ण और शुक्लवर्णके परिवेष क्रमानुसार इन्द्र, यम, वरुण, निर्ऋति, वायु,
महादेव, ब्रह्मा और अग्निसे उत्पन्न हुए ॥ २ ॥ धनदाता कुबेरजी काले रंगका
परिवेष करते हैं और परस्पर गुण आश्रयके हेतु जो बारंबार लीन होता है वह
अल्प फल देनेवाला परिवेष वायुका है ॥ ३ ॥ जो परिवेष नीलकंठ, मोर चांदी,
तेल, दूध और जलकी समान आभावाला हो, स्वकालसम्भूत हो जिसका वृत्त
खंडित न हो, जो स्निग्ध हो वह सुभिक्ष और मंगलका करनेवाला है ॥ ४ ॥ जो
परिवेष सारे आकाशमें गमन करे, अनेक आभादार हो, रुधिरकी समान हो, रूखा,

ञ्जितो रूक्षः । असकलशकटशरासनशृङ्गाटकवत् स्थितः पापः ॥५॥ शिखिगलसमेऽतिवर्षं बहुवर्णे नृपवधो भयं धूम्रे । हरिचापनिभे युद्धान्यशोककुसुमप्रभे चापि ॥ ६ ॥ वर्णेनैकेन यदा बहुलः स्निग्धः क्षुराभ्रकाकीर्णः । स्वर्तौ सद्यो वर्षं करोति पीतश्च दीप्तार्कः ॥ ७ ॥ दीप्तविहङ्गमृगरुतः कलुषः सन्ध्यात्रयोत्थितोऽतिमहान् । भयकृत्तडिदुल्काद्यैर्हतो नृपं हन्ति शस्त्रेण ॥ ८ ॥ प्रतिदिनमर्कहिमांश्वोरहर्निशं रक्तयोर्नरेन्द्रवधः । परिविष्टयोरभीक्ष्णं लग्नास्तनभःस्थयोस्तद्वत् ॥ ९ ॥ सेनापतेर्भयकरो द्विमण्डलो नातिशस्त्रकोपकरः । त्रिप्रभृति शस्त्रकोपं युवराजभयं नगररोधम् ॥ १० ॥ वृष्टिस्त्र्यहेण मासेन विग्रहो वा ग्रहेन्दुभनिरोधे । होराजन्माधिपयोर्जन्मर्क्षे वाशुभो राज्ञः ॥ ११ ॥ परिवेषमण्डलगतो रवितनयः क्षुद्रधान्यनाशकरः । जनयति च वातवृष्टिं स्थावरकृषिकृ-

---

खंडित छकडेकी समान, धनुष और शृङ्गाटकी समान हो सो पापकारी है ॥ ५ ॥ मोरकी गर्दनकी समान परिवेष हो तो अतिवर्षा होती है, बहुतसे रंगासे युक्त हो तो राजाका वध होता है, धूम्रवर्ण होनेसे भय होता है, इन्द्रधनुषके समान या अशोकके फूलकी समान कान्तिमान् होनेसे युद्ध होता है ॥ ६ ॥ जिस ऋतुमें परिवेष एक वर्णके मेलसे बहुत चिकना, उस्तरेकी समान छोटे २ मेघोंसे व्याप्त हो वा सूर्यकी किरणें पीले वर्णकी हों उस समय शीघ्र वृष्टि होती है ॥ ७ ॥ सूर्यकी ओरको मुख करके पक्षी और मृगोंके शब्दसहित त्रिकालके शब्दसहित त्रिकालकी सन्ध्यामें उत्पन्न हुआ, अतिमहान् परिवेष भयंकर होता है, परन्तु जो यह उल्का या विजली करके भेदित हो तो शस्त्रसे राजाकी मृत्यु होती ॥ ८ ॥ प्रति दिन रात सूर्य चन्द्रमाका परिवेष रक्तवर्ण हो तो राजाका वध होता है और उदयकाल, अस्तकाल, दिनरातके मध्यकालमें सूर्य चन्द्रमाको एक दिनमें यदि अधिक परिवेष हो तोभी वही फल अर्थात् राजाका वध होता है ॥ ९ ॥ दो मंडलवाला परिवेष सेनापतिको भयकारी है, परन्तु अत्यन्त शस्त्रकोपकारी नहीं है, तीन मंडलवाला या अधिक मंडलवाला परिवेष शस्त्रकोप, युवराजभय और नगररोधका कारण होता है ॥ १० ॥ भौमादि कोई ग्रह, चन्द्रमा, नक्षत्र यदि एक परिवेषमें हों तो तीन दिनमें वर्षा या एक मासमें युद्ध होता है. होरा और लग्नाधिपति वा जन्मनक्षत्रका परिवेष हो तो राजाका अशुभ होता है ॥ ११ ॥ जो शनि परिवेषमंडलमें हो तो छोटे धान्यको नष्ट करता है और स्थावर वा किसानोंका हननकारी होकर पवनयुक्त

निहन्ता च ॥ १२ ॥ भौमे कुमारबलपतिसैन्यानां विद्रवोऽग्निशस्त्रभयम् ।
जीवे परिवेषगते पुरोहितामात्यनृपपीडा ॥ १३ ॥ मन्त्रिस्थावरलेखकवृद्धि-
श्चिन्द्रजे सुवृष्टिश्च । शुक्रे यायिक्षत्रियराज्ञां पीडाप्रियं चान्नम् ॥ १४ ॥
क्षुदनलमृत्युनराधिपशस्त्रेभ्यो जायते भयं केतौ । परिविष्टे गर्भभयं राहौ व्याधि-
र्नृपभयं च ॥ १५ ॥ युद्धानि विजानीयात् परिवेषाभ्यन्तरे द्वयोर्ग्रहयोः । दि-
वसकृतः शशिनो वा क्षुदवृष्टिभयं त्रिषु प्रोक्तम् ॥ १६ ॥ याति चतुर्षु नरेन्द्रः
सामात्यपुरोहितो वशं मृत्योः । प्रलयमिव विद्धि जगतः पञ्चादिषु मण्डल-
स्थेषु ॥ १७ ॥ ताराग्रहस्य कुर्यात् पृथगेव समुत्थितो नरेन्द्रवधम् । नक्षत्रा-
णामथवा यदि केतोर्नोदयो भवति ॥ १८ ॥ विप्रक्षत्रियविट्शूद्रहा भवेत् प्रति-
पदादिषु क्रमशः । श्रेणीपुरकोशानां पञ्चम्यादिष्वशुभकारी ॥ १९ ॥ युवराज-
स्याष्टम्यां परतस्त्रिषु पार्थिवस्य दोषकरः । पुररोधो द्वादश्यां सैन्यक्षोभस्त्रयो-

---

वृष्टिको उत्पन्न करता है ॥ १२ ॥ मङ्गल परिवेषमें हो तो कुमार, सेनापति और
सेनाको व्याकुलता होय और अग्नि व शस्त्रका भय हो व बृहस्पति परिवेषमें हो
तो पुरोहित, मंत्री और राजाओंको पीडा होती है ॥ १३ ॥ बुध परिवेषमें हो तो
मंत्री, स्थावर और लेखकलोगोंकी वृद्धि और अच्छा वर्षा होती है. परिवेषमें शुक्र हो
तो चढकर जानेवाले राजा, क्षत्री राजाको पीडा और दुर्भिक्ष होता है ॥ १४ ॥
केतु परिवेषमें हो तो क्षुधा, अनल, मृत्यु, राजा और शस्त्रसे भय उत्पन्न होता है,
राहु परिवेषमें हो तो गर्भभय, व्याधि और राजभय होता है ॥ १५ ॥ रवि, चन्द्रके
परिवेषके भीतर दो ग्रहोंके होनेसे युद्ध होता है. तीन ग्रह जो परिवेषमें हों तो
दुर्भिक्ष और वर्षा न होनेका भय होता है ॥ १६ ॥ परिवेषमें चार ग्रह हों तो
मंत्री और पुरोहितके साथ राजाकी मृत्यु हो जाय; पंचादि ग्रह मंडलमें हों तो
जगत्में मानो प्रलय हो जाय ॥ १७ ॥ ताराग्रह अर्थात् मङ्गलादि पंचग्रह अथवा
नक्षत्रगण यदि अलग २ परिवेषमें हों तो राजाका वध हुआ करता है यदि केतुका
उदय न हो केतूदय होनेसे उसीका फल होता है ताराग्रहादिफल नहीं होता
है ॥ १८ ॥ प्रतिपदासे लेकर चौथतक तिथिमें परिवेष हो तो क्रमानुसार ब्राह्मण,
क्षत्री, वैश्य और शूद्रोंका नाश हो जाता है. पंचमीसे लेकर सातेंतक तिथिमें
श्रेणि, पुर और कोषका अशुभकारी होता है ॥ १९ ॥ अष्टमीमें परिवेष हो तो
युवराजको और तिसके पीछे तीन तिथिमें परिवेष होनेसे राजाका दोष होता है

दश्याम् ॥ २० ॥ नरपतिपत्नीपीडां परिवेषोऽभ्युत्थितश्चतुर्दश्याम्। कुर्यात्तु पञ्चदश्यां पीडां मनुजाधिपस्यैव ॥ २१ ॥ नागरकाणामभ्यन्तरस्थिता यायिनां च बाह्यस्था। परिवेषमध्यरेखा विज्ञेयाक्रन्दसाराणाम् ॥ २२ ॥ रक्तः श्यामो रूक्षश्च भवति येषां पराजयस्तेषाम्। स्निग्धः श्वेतो द्युतिमान् येषां भागो जयस्तेषाम् ॥ २३ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्सं० परिवेषलक्षणं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

अथ पंचत्रिंशोऽध्यायः।

इन्द्रायुधलक्षण.

सूर्यस्य विविधवर्णाः पवनेन विघट्टिताः कराः साभ्रे। वियति धनुःसंस्थाना ये दृश्यन्ते तदिन्द्रधनुः ॥ १ ॥ केचिदनन्तकुलोरगनिःश्वासोद्भूतमाहुराचार्याः। तद्यायिनां नृपाणामभिमुखमजयावहं भवति ॥ २ ॥ अच्छिन्नमवनिगाढं द्युति-

द्वादशीमें परिवेष होनेसे पुरका रोध हो जाता है और त्रयोदशीमें होनेसे शस्त्रका क्षोभ होता है ॥ २० ॥ चतुर्दशीमें परिवेष होनेसे रानीको पीडा होती है. पंचदशीमें राजाको पीडा होती है ॥ २१ ॥ जो परिवेषके भीतर रेखा दिखाई दे तो नगरवासियोंको पीडा होती है; परिवेषके बाहर रेखा हो तो चढ जानेवाले राजाओंको पीडा होती है; परिवेषके बीचमें हो तो आक्रन्दसारका शुभाशुभ विचारे ॥ २२ ॥ ग्रहभक्ति या कूर्मविभागके अनुसार देशका विभाग करनेसे जिस देशके भागमें परिवेषका रंग लाल श्याम या रूखा हो उस देशकी पराजय होगी. स्निग्ध, श्वेतवर्ण या दीप्तिशाली परिवेष जिनके भागमें गिरे उनकी जय होगी ॥ २३ ॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

अनेक रंगवाले सूर्यके किरण पवनसे रोके जाकर मेघयुक्त आकाशमें जो धनुषका आकार दिखाई देता है वही इन्द्रधनुष है ॥ १ ॥ कोई २ आचार्य कहते हैं कि, अनन्तनामक कुलनागके श्वाससे यह उत्पन्न होता है; जो राजालोग इस इन्द्रधनुषको सन्मुख रखकर जांय तो युद्धमें उनकी पराजय होती है ॥ २ ॥ वह अखंडित भूमिमें लगा हुआ, प्रकाशदार, चिकना, निबिड, अनेक रंगोंसे युक्त और

भत्स्निग्धं घनं विविधवर्णम् । द्विरुदितमनुलोमं च प्रशस्तमम्भः प्रयच्छ
॥ ३ ॥ विदिगुद्भूतं दिक्स्वामिनाशनं व्यभ्रजं मरककारि । पाटलपीतक
शस्त्राग्निक्षुत्कृता दोषाः ॥ ४ ॥ जलमध्येऽनावृष्टिर्भुवि सस्यवधस्तरौ
व्याधिः । वल्मीके शस्त्रभयं निशि सचिववधाय धनुरैन्द्रम् ॥ ५ ॥
करोत्यवृष्ट्यां वृष्टिं वृष्ट्यां निवारयत्यन्द्रयाम् । पश्चात्सदैव वृष्टिं कुलिशभृ
प्रमाचष्टे ॥ ६ ॥ चापं मघोनः कुरुते निशायामाखण्डलायां दिशि भूपपी
याम्यापरोदक्प्रभवं निहन्यात्सेनापतिं नायकमन्त्रिणौ च ॥ ७ ॥
सुरचापं सितवर्णाद्यं जनयति पीडां द्विजपूर्वाणाम् । भवति च यस्यां
तद्देश्यं नरपतिमुख्यं न चिराद्धन्यात् ॥ ८ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्सं० मिन्द्रायुधलक्षणं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३

दोनों वार उदित व अनुलोम होनेपर श्रेष्ठ है और बहुतसा जल वर्षाता है ॥ ३
ईशान, अग्नि, नैर्ऋत और वायु इन चारों कोनोंमें जो इन्द्रधनुप उदय हो
संस्थानके राजाका नाश होता है. विना मेघके आकाशमें इन्द्रधनुप हो तौ
पडती है । पाटलके फूल, पीले और नीले रंगका हो तौ शस्त्र, अग्नि और दु
क्षादि दोप उत्पन्न होते हैं ॥ ४ ॥ जलमें इन्द्रधनुप हो तौ अनावृष्टि, पृथ्वी
होनेसे धान्यकी हानि, वृक्षपर होनेसे व्याधि और वल्मीक (वमई) पर हो
शस्त्रभय और रात्रिमें होनेसे मंत्रीके वधका कारण होता है ॥ ५ ॥ जो अना
ष्टिके समय इन्द्रधनुप पूर्वदिशामें हो तौ जल वर्षता है; वर्षनेके समय पूर्वदिशा
हो तौ वृष्टिको रोकता है। पश्चिममें इन्द्रधनुप हो तौ सदाही वर्षा होती है ॥ ६
पूर्वदिशामें रात्रिकालके समय इन्द्रधनुप हो तौ राजाओंको पीडित करता है
दक्षिण, पश्चिम और उत्तरदिशासे उत्पन्न हुआ इन्द्रधनुप सेनापति, नायक औ
मंत्रीका नाश करता है ॥ ७ ॥ रात्रिके समय इन्द्रधनुप श्वेत वर्णादि अर्थात् श्वे
रक्त, पीत और कृष्ण वर्ण हो तौ क्रमानुसार ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य औ
शूद्रोंका नाश करता है; परन्तु जिस दिशामें होय उसी दिशाओंके राजाओं
शीघ्र नाश होगा ॥ ८ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवा
स्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५

निष्पत्तिरस्ति महती पश्चात् परचक्ररोगभयम् ॥ ७ ॥ मध्ये पापग्रहयोः सूर्यः सस्यं विनाशयत्यलिगः । पापः सप्तमराशौ जातं जातं विनाशयति ॥ ८ ॥ अर्थस्थाने क्रूरः सौम्यैरनिरीक्षितः प्रथमजातम् । सस्यं निहन्ति पश्चात्तु निष्पादयेद्व्यक्तम् ॥ ९ ॥ जामित्रकेन्द्रसंस्थौ क्रूरौ सूर्यस्य वृश्चिकस्थस्य । सस्यविपत्तिं कुरुतः सौम्यैर्दृष्टौ न सर्वत्र ॥ १० ॥ वृश्चिकसंस्थादर्कात् सप्तमषष्ठोपगौ यदा क्रूरौ । भवति तदा निष्पत्तिः सस्यानामर्घपरिहानिः ॥ ११ ॥ विधिनानेनैव रविर्वृषप्रवेशे शरत्समुत्थानाम् । विज्ञेयः सस्यानां नाशाय शिवाय वा तज्ज्ञैः ॥ १२ ॥ त्रिषु मेषादिषु सूर्यः सौम्ययुतो वीक्षितोऽपि वा विचरन् । ग्रैष्मिकधान्यं कुरुते समर्घमुभयोरायोग्यं च ॥ १३ ॥ कार्मुकमृगघटसंस्थः शारदस्य तद्वदेव रविः । सङ्ग्रहकाले ज्ञेयो विपर्ययः क्रूरदृग्योगात् ॥ १४ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्सं० सस्यजातकं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

राशिमें गमन करे उस समय जो कुंभमें बृहस्पति, वृषमें चन्द्रमा और मंगल व शनि यदि मकरराशिमें हों तो अन्न भली भांतिसे होता है. परन्तु पीछेसे परचक्र और रोगका भय हुआ करता है ॥ ७ ॥ जो सूर्य वृश्चिकराशिमें दो पापग्रहोंके बीचमें हो तो धान्यका नाश करता है. इस समय वृषराशिमें स्थित हो तो पैदा होनेहो अन्नका नाश कर देता है ॥ ८ ॥ उसके अर्थस्थानमें स्थित क्रूर ग्रह शुभ ग्रहसे न देखा जाय तो पहिली बोई हुई खेतीका नाश करता है; परन्तु पीछेकी बोई हुई खेती भली भांतिसे उपजती है ॥ ९ ॥ वृश्चिक राशिमें स्थित सूर्यकी सातवीं राशिमेंके या केन्द्रस्थित और क्रूर ग्रह खेतीका नाश करते हैं; परन्तु उनको शुभ ग्रह देखता हो तो सब जगहके धान्यका नाश नहीं कर सकते ॥ १० ॥ जब दो क्रूर ग्रह वृश्चिकराशिमें स्थित सूर्यसे सातवें और छठे हों तो खेती होती है; परन्तु धान्य महंगा रहता है ॥ ११ ॥ वृषराशिमें सूर्यके प्रवेश करनेसे उत्पन्न हुए धान्यके नाशका या मंगलका कारणभी होता है ऐसा पंडितोंको कहना चाहिये ॥ १२ ॥ मेषादि तीन राशियोंमें स्थित सूर्य शुभ ग्रह करके युक्त हो या शुभ ग्रहसे देखा जाय तो ग्रीष्मकी खेती समर्थ हो और इतना सस्ता अन्न रहे कि आदमी लोक परलोक दोनों बना लें (परलोक बनानेके लिये अन्नदान करें) ॥ १३ ॥ धन, मकर और कुंभराशिमें स्थित सूर्य शरत्कालमें उत्पन्न हुई खेतीकोभी वैसीही करे

थैकचत्वारिंशोऽध्यायः ।

द्रव्यनिश्चय.

नधिरतयो राशयः समुद्दिष्टाः । मुनिभिः शुभाशुभार्थं
। ॥ १ ॥ यथाविककुतुपानां मसूरगोधूमरालकयवा-
ीनां कवकस्य च कीर्तितो मेषः ॥ २ ॥ गवि वस्त्रकुसु-
सुरभितनयाः स्युः । मिथुनेऽपि धान्यशारदवल्लीशालूक-
र्किणि कोद्रवकदलीदूर्वाफलकन्दपत्रचोचानि । सिंहे
नां त्वचः सगुडाः ॥ ४ ॥ षष्ठेऽतसीकलापाः कुलत्थगो-
मराशी माषा गोधूमाः सर्षपाः सयवाः ॥ ५ ॥ अष्टम-
ोहान्यजाविकं चारि । नवमे तु तुरगलवणाम्बराद्यतिल-

है और जनमें संग्रहकालमें क्रूर ग्रहकी दृष्टि और योगसे इसका उलटा फल होता है यही जानना चाहिये ॥ १४ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्त-व्य–पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

जिन २ राशिको जिन द्रव्योंका स्वामी मुनिलोगोंने कहा है, शुभ और अशुभ जाननेके लिये आगमने उनका विचार कहा जाता है ॥ १ ॥ मेषराशि वस्त्र, भेड़के ऊनसे बने कम्बल, पहाड़के ऊनसे बने कम्बल, मसूर, गेहूं, राल (वृक्षोंके गोंद), जौ, स्थलकी उपजी हुई औषधियें और सुवर्णकी स्वामिनी कही जाती है ॥ २ ॥ वस्त्र, कुसुम, गेहूं, शालि धान्य, जौ, महिष और गाय इनकी स्वामिनी वृषराशि है धान्य और शरदऋतुमें उत्पन्न हुए पदार्थ, लता, कमल कुमुदादिकी जड और व्याघ्र यह मिथुनके आधीन हैं ॥ ३ ॥ कर्कमें कोदों, केला, दूब, फल, पत्र और दालकी स्वामिनी है. सिंहके अधिकारमें, भुसी, धान्य, रस, गुड और सिंहादिके चर्म हैं ॥ ४ ॥ कन्याराशिमें अलसी, मटर, कुलथी, गेहूं, मूंग निष्पाव (मटर) हैं. तुला राशिमें उड़द, गेहूं सरसों और जौ इत्यादि हैं ॥ ५ ॥ ईख, शिरस्थ द्रव्य (इससे पानी देनेसे जो वस्तु उत्पन्न होती है), लोहा, भेड़, बकरीका स्वामी वृश्चिक है. घोड़े, लवण,

धान्यमूलानि ॥ ६ ॥ मकरे तरुगुल्माद्यं सेक्येक्षुसुवर्णकृष्णलोहानि । कुंभे सलिलजफलकुसुमरत्नचित्राणि रूपाणि ॥ ७ ॥ मीने कपालसम्भवरत्नान्यम्बूद्भवानि वज्राणि । स्नेहाश्च नैकरूपा व्याख्याता मत्स्यजातं च ॥ ८ ॥ राशेश्चतुर्दशार्थायसप्तनवपञ्चमस्थितो जीवः । व्येकादशदशपञ्चाष्टमेषु शशिजश्च वृद्धिकरः ॥ ९ ॥ षट्सप्तमगो हानिं वृद्धिं शुक्रः करोति शेषेषु । उपचयसंस्थाः क्रूराः शुभदाः शेषेषु हानिकराः ॥ १० ॥ राशेर्यस्य क्रूराः पीडास्थानेषु संस्थिता बलिनः । तत्प्रोक्तद्रव्याणां महार्घता दुर्लभत्वं च ॥ ११ ॥ इष्टस्थाने सौम्या बलिनो येषां भवन्ति राशीनाम् । तद्द्रव्याणां वृद्धिः सामर्थ्यमदुर्लभत्वं च ॥ १२ ॥ गोचरपीडायामपि राशिर्बलिभिः शुभग्रहैर्दृष्टः । पीडां न करोति तथा क्रूरैरेवं विपर्यासः ॥ १३ ॥

इति वराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां द्रव्यनिश्चयो नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ४१

अम्बर, अस्त्र, तिल, धान्य और मूल धनराशिमें विराजमान हैं ॥ ६ ॥ मकरमें वृक्ष गुल्मादि और सींचनेसे जो वस्तु उत्पन्न होती है, ईख, सुवर्ण और काला लोहा है. कुंभमें जलसे उत्पन्न हुए फल, फूल, रत्न और चित्रविचित्र रूपवाले वर्तमान हैं ॥ ७ ॥ कपालसम्भव रत्न (हाथीके शिरसे निकली मणि या नागके शिरसे निकली मणि), जलसे उत्पन्न होनेवाले पदार्थ, अनेक रूपवाले, स्नेह द्रव्य और मछलियां मीनराशिके अधीन हैं ॥ ८ ॥ जिस राशिके दूसरे चौथे, पांचवें, सातवें, नववें, दशवें या ग्यारहवें स्थानमें बृहस्पति हो अथवा दूसरे, पांचवें, आठवें, दशवें वा एकादश स्थानमें बुध हो उस राशिमें जो द्रव्य कहे हैं उनकी वृद्धि होगी ऐसेही शुक्र तिस राशिके छठे या सातवें स्थानमें हो; तिस राशिके द्रव्योंकी हानि और अभिन्न राशियोंमें हो तो वृद्धि करते हैं; और क्रूर ग्रह उपचय स्थान अर्थात् तीसरे, छठे, दशम या एकादश स्थानमें हों तो शुभदायी हैं और तिसके सिवाय और राशिमें स्थित हों तो हानिकारी हैं ॥ ९ ॥ १० ॥ बलवान् क्रूर ग्रह जिस राशिके पीडास्थानमें अर्थात् उपचय स्थानके सिवाय अलग स्थानमें स्थित हों, उस राशिके अधिकारमें जितने द्रव्य हों वह सब मंहगे होकर दुर्लभ हो जाते हैं ॥ ११ ॥ बलवान् शुभ ग्रह जिन राशियोंके इष्टस्थानमें अर्थात् उपचयस्थानमें हों, उन राशियोंके अधीनमें जो जो द्रव्य हैं उनकी वृद्धि होती है, सामर्थ्य और सुलभता होती है ॥ १२ ॥ गोचर पीडामेंभी सब राशियें

अथ द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ।

अर्घकाण्ड.

अतिवृष्ट्युल्कादण्डान् परिवेषग्रहणपरिधिपूर्वांश्च । दृष्ट्वामावास्यायामुत्पा-
तान् पौर्णमास्यां च ॥ १ ॥ ब्रूयादर्घविशेषान् प्रतिमासं राशिषु क्रमात् सूर्ये ।
अन्यतिथावुत्पाता ये ते डमरार्तये राज्ञाम् ॥ २ ॥ मेषोपगते सूर्ये ग्रीष्मज-
धान्यस्य संग्रहं कुर्यात् । वनमूलफलस्य वृषे चतुर्थमासे तयोर्लाभः ॥ ३ ॥
मिथुनस्थे सर्वरसान् धान्यानि च संग्रहं समुपनीय । षष्ठे मासे विपुलं विक्रीणन्
प्राप्नुयाल्लाभम् ॥ ४ ॥ कर्किण्यर्के मधुगन्धतैलघृतफाणितानि विनिधाय ।
द्विगुणा द्वितीयमासे लब्धिर्हीनाधिके छेदः ॥ ५ ॥ सिंहे सुवर्णमणिचर्मवर्माणि
मौक्तिकं रजतम् । पञ्चममासे लब्धिर्विक्रेतुरतोऽन्यथा छेदः ॥ ६ ॥ कन्यागे

बलवान् और शुभ ग्रहों करके देखी जाय तो पीडा नहीं; और क्रूर ग्रह देखते
हों तो इससे विपरीत फल होता है ॥ १३ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबाद-
वास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायामेकचत्वारिंशोऽध्यायः ४१

प्रतिमासमें सब राशियें जब सूर्यमें गमन करें; अमावास्या वा पूर्णिमामें
परिवेष, ग्रहण, परिधि, अतिवृष्टि, उल्का व दंडरूप उत्पातोंको देखकर क्रमा-
नुसार सब विषयोंको कहना चाहिये और तिथियोंमें जो उत्पात होते हैं,
वे सब उत्पात राजाओंके लिये गडबडीका भय प्रगट करते हैं ॥ १ ॥ २ ॥
सूर्य मेषराशिमें जाय तो ग्रीष्मजात धान्यका संग्रह करना उचित है. वृषराशिमें
वनैले फल और मूलका संग्रह करना कर्तव्य है. चौथे मासमें उनमें लाभ होता
है ॥ ३ ॥ सूर्य मिथुन राशिमें प्राप्त हो तो सर्व प्रकारके रस और सब प्रकारके
धान्योंका संग्रह करके छठे मासमें विक्रय करे तो बहुतसा लाभ होता है ॥ ४ ॥
सूर्य कर्क राशिमें स्थित हो तो मधु, गन्ध, तेल, घी और शक्करको रक्षा करनेसे
अर्थात् इनके भर लेनेसे दूसरे मासमें दूना लाभ होता है, परन्तु अल्पाधिक उनके
होनेपर कम लाभ और नाश होवे ॥ ५ ॥ सिंहराशिमें सूर्य हो तो सुवर्ण, मणि,
चर्म, वर्म्म, शस्त्र, मोती और चांदीका संग्रह करे. पांचवें मासमें बेचे तो बेचने-
वालेको लाभ होता है, इसके विरुद्ध होनेसे हानि होती है ॥ ६ ॥ सूर्य कन्याग-

[illegible] सहस्रशीर्षा शतमन्युरीड्यः ॥ ५४ ॥ [illegible]
[illegible] सुरेशम् । [illegible] शक्रं [illegible]
[illegible] ॥ ५५ ॥ [illegible] सखे [illegible]
[illegible] । [illegible] मन्त्राङ्कुमान् [illegible]
[illegible] चित्रमालाकरलेपुण्डैः । [illegible]
[illegible] लोकपालैः ॥ ५७ ॥ [illegible]
[illegible] । उत्थापयेत्तस्य [illegible]
[illegible] । ५८ ॥ [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]

तविभूषणं च। उत्थानमिष्टमशुभं यदतोऽन्यथा स्यात् तच्छान्तिभिर्नरपतेः
मयेत्पुरोधाः ॥ ६१ ॥ क्रव्यादकौशिककपोतककाककङ्कैः केतुस्थितैर्महदु-
न्ति भयं नृपस्य। चाषेण चापि युवराजभयं वदन्ति श्येनो विलोचनभयं
पेतन् करोति ॥ ६२ ॥ छत्रभङ्गपतने नृपमृत्युस्तस्कराम्मधु करोति निलीं-
म्। हन्ति चाप्यथ पुरोहितमुल्का पार्थिवस्य महिषीमशनिश्च ॥ ६३ ॥
ज्ञीविनाशं पतिता पताका करोत्यनावृष्टिं पिटकस्य पातः। मध्याग्रमूलेषु च
केतुभङ्गो निहन्ति मन्त्रिक्षितिपालपौरान् ॥ ६४ ॥ धूमावृते शिखिभयं
मसा च मोहो व्यालैश्च भग्नपतितैर्न भवन्त्यमात्याः। ग्लायन्त्युदक्प्रभृति च
क्रमशो द्विजाद्या भङ्गे च बन्धकिवधः कथितः कुमार्याः ॥ ६५॥ रज्जूसङ्गच्छे-
ने बालपीडा राज्ञो मातुः पीडनं मातृकायाः। यद्यत्कुर्युर्बालकाश्चारणा वा
त्तत्ताहक्स्यात्पापं शुभं वा ॥ ६६ ॥ दिनचतुष्टयमुत्थितमर्चितं समभिपूज्य

र गिरें तो उसका उठाना हितकारी होता है. इसके सिवाय और भांतिका उठना
अशुभ है. राजाके पुरोहितको चाहिये कि शान्ति करके सब विघ्नोंको दूर करे
। ६१ ॥ मांसको खानेवाले पक्षी, उल्लू, कबूतर, काग, गिद्ध जो इन्द्रध्वजपर बैठें
तो राजाको अत्यन्त अशान्ति होती है. इन्द्रध्वजपर नीलकण्ठ बैठे तो युवराजको
भय कहा जाता है। बाजपक्षीका इन्द्रध्वजपर गिरना नेत्रभयको उत्पन्न करता है
॥ ६२ ॥ छत्र भंग होकर ध्वजका गिरना राजाओंकी मृत्युको प्रकट करता है। जो
रें इन्द्रध्वजपर शहदकी मुहाल लगा दें तो तस्करोंकी मृत्यु होती है। ध्वजपर
उल्का गिरे तो पुरोहितकी और वज्र गिरे तो राजाकी रानीकी मृत्यु होती है॥६३॥
पताकाके गिरनेसे रानीका नाश और पिटकके गिरनेसे सूखा पड़ता है। बिचला,
ऊपरका और जड़का भाग इन्द्रध्वजका टूट जाय तो क्रमसे मंत्री, राजा और पुर-
वासियोंका नाश करता है ॥६४॥ इसपर धूम छा जाय तो मोह होता है, सांपनेसे
टूटकर गिर जाय तो मंत्रियोंका अभाव हुआ करता है। उत्तरादि चार दिशाओंमें
टूटकर गिरे तो क्रमसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रको ग्लानि उत्पन्न करता
है। कुमारियां फट फट जांय तो व्यभिचारिणी स्त्रियां मरती हैं ॥ ६५ ॥ इन्द्र-
ध्वज उठानेके समय उसके रास्ते कहीं अटक जाय तो बालकोंको पीडा होती है।
तोरणकी पगड़में रखते हुए काठके टूट जानेसे राजमाताको पीडा होती है. बालक
या दूत इन्द्रध्वजके समीप जैसी २ चेष्टा करें वैसाही (अशुभ करनेसे होनेपर)
पापका या (शुभकरनेमें) शुभफली होता है ॥६६॥ उठे हुए और पूजित ध्वजकी

नृपोऽहनि पञ्चमे। प्रकृतिभिः सह लक्ष्म विसर्जयेद्बलभिदः स्वबलाभिवृद्ध ॥६७॥ उपरिचरवसुप्रवर्तितं नृपतिभिरप्यनु सन्ततं कृतम्। विधिमिममनुम पार्थिवो न रिपुकृतं भयमाप्नुयादिति ॥ ६८ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्सं०मिन्द्रध्वजसम्पन्नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥

अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः।

नीराजन.

भगवति जलधरपक्ष्मक्षपाकरार्केक्षणे कमलनाभे। उन्मीलयति तुरङ्गक रिनरनीराजनं कुर्यात् ॥ १ ॥ द्वादश्यामष्टम्यां कार्त्तिकशुक्लस्य पञ्चदश्यां वा आश्वयुजे वा कुर्यान्नीराजनसंज्ञितां शान्तिम् ॥२॥ नगरोत्तरपूर्वदिशि प्रशस्त भूमौ प्रशस्तदारुमयम्। षोडशहस्तोच्छ्रायं दशविपुलं तोरणं कार्यम् ॥ ३ ॥ सर्जोदुम्बरशाखाककुभमयं शान्तिसद्म कुशबहुलम्। वंशविनिर्मितमत्स्यध्वज चक्रालंकृतद्वारम् ॥ ४ ॥ प्रतिसरया तुरगाणां भल्लातकशालिकुष्ठसिद्धार्थान्।

भली भांतिसे चार दिन पूजा कर पांचवें दिन प्रजाको साथ ले राजा उस इन्द्रध्वजके विसर्जन करे तो राजाकी सेनाका बल बढता है ॥ ६७ ॥ उपरीचरवसुराजसे चलाई हुई, फिर राजाओंके द्वारा सदा की हुई इस विधिसे जो राजा इस प्रकारसे इन्द्रध्वजकी पूजा करेंगे, वे शत्रु लोगोंसे भयको प्राप्त नहीं होंगे ॥ ६८ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य—पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४३॥

बादल जिसकी आंखोंके पलक हैं, चंद्रमा सूर्य जिसके दोनों नेत्र हैं वह भगवान् कमलनाभ जब नेत्र खोलते हैं अर्थात् जागते हैं तब घोडे, हाथी और मनुष्योंको नीराजन करना चाहिये ॥ १ ॥ कार्तिकके शुक्लपक्षकी पूर्णिमा, द्वादशी और अष्टमीमें या आश्विनमासमें नीराजन संज्ञाकी शान्ति करे ॥ २ ॥ नगरसे उत्तर पूर्वदिशामें श्रेष्ठ भूमिके ऊपर अच्छे काठका सोलह हाथ ऊंचा और दश हाथ चौडा एक तोरण बनावे ॥ ३ ॥ विजयसारका वृक्ष, गूलर और अर्जुनवृक्षसे पृथक्का शांतिग्रह बनावे तिसमें बहुतसे कुशभी रक्खे हों। इसके द्वारमें बांसके बने हुए मत्स्य, ध्वज और चक्र लगाये जांय ॥ ४ ॥ शान्तिग्रह और सबकी पूजा

वेदीपुरोहितानललक्षणमस्मिंस्तदवधार्यम् ॥ १४ ॥ लक्षणयुक्तं तुरगं द्विरदं चैव दीक्षितं स्नातम् । अहतसिताम्बरगन्धस्रग्धूपाद्यर्चितं कृत्वा ॥ १५ ॥ आश्रमतोरणमूलं समुपनयेत्सान्त्वयञ्छनैर्वाचा । वादित्रशंखपुण्याहनिःस्वना पूरितदिगन्तम् ॥ १६ ॥ यद्यानीतस्तिष्ठेद्दक्षिणचरणं हयः समुत्क्षिप्य । जयति तदा नरेन्द्रः शत्रूनचिराद्विना यत्नात् ॥ १७ ॥ त्रस्यन्नेष्टो राज्ञः शेषं चेष्टितं द्विपहयानाम् । यात्रायां व्याख्यातं तदिह विचिन्त्यं यथायुक्ति ॥ १८ ॥ पिण्डमभिमन्त्र्य दद्यात् पुरोहितो वाजिने स यदि जिघ्रेत् । अश्नीयाद्वा जयकृद्विपरीतोऽतोऽन्यथाभिहितः ॥ १९ ॥ कलशोदकेषु शाखामाप्लाव्योदुम्बरीं स्पृशेत्तुरगान् । शान्तिकपौष्टिकमन्त्रैरेवं सेनां सनृपनागाम् ॥ २० ॥ शान्ति राष्ट्रविवृद्ध्यै कृत्वा भूयोऽभिचारकैर्मन्त्रैः । मृण्मयमरिं विभिन्द्याच्छूलेनोरस्यसौ विप्रः ॥ २१ ॥ खलिनं हयाय दद्यादभिमन्त्र्य पुरोहितस्ततो राजा । आरुह्योदक्पूर्वां यायान्नीराजितः सबलः ॥ २२ ॥ मृदङ्गशंखध्वनिहृष्टकुञ्जरस्रवन्मदा

चाहिये ॥ १४ ॥ उत्तम लक्षणवाले हाथी, घोडेको दीक्षा देकर न्हवाय, नवीन वस्त्र पहिराय फूलोंके हार और गंध धूपादिसे पूजन कर ॥ १५ ॥ मीठे वचन कह उनको समझाते बुझाते धीरे २ अनेक प्रकारके बाजे, शंख, पुण्ययुक्त शब्द जिसकी ध्वनि दिशामें भर गई है ऐसे आश्रमतोरणमूलके समीप उपहार दे ॥ १६ ॥ जो लाया हुआ घोडा पहले दांया चरण उठाकर खडा रहे तो राजा शीघ्र और विना परिश्रमके शत्रुओंको जीत लेगा. परन्तु अश्वके भीत होनेसे राजाको भय होता है. हाथी, घोडोंकी वाकी चेष्टाका फल जो यात्राध्यायमें कहा है सो यहांपर यथायुक्तिसे विचारना चाहिये ॥ १७ ॥ १८ ॥ पुरोहित मंत्र पढ कर अश्वको भोजन करनेके लिये पिण्ड दे और घोडा उसको सूंघ ले या भक्षण कर ले तो जयदायी होता है. इससे विपरीतका होना अशुभ कहा है ॥ १९ ॥ गूलरकी शाखा कलशके जलसे भिगोकर राजा और हाथियोंसे युक्त सेना और घोडोंकी शान्तिके लिये पौष्टिकमंत्रसे पुरोहित या ब्राह्मण स्पर्श करे और राज्यकी वृद्धिके लिये अभिचारके मंत्र पढ वारंवार शान्ति करे. पुरोहितको उचित है कि मृत्तिकाकी शत्रुमूर्ति बनाय शूलसे उसकी छातीको फाडे ॥ २० ॥ २१ ॥ पुरोहित मंत्र पढकर लगामको घोडेके मुखमें दे, फिर राजा उस अश्वपर सवार हो नीराजित होकर सेनाके साथ उत्तर दिशामें जाय ॥ २२ ॥ वह मृदंग, शंखकी

ोदसुगन्धिमारुतः । शिरोमणिबालचलत्प्रभाचयैर्ज्वलन्निवास्तानिव तोयदात्यये । २३ ॥ हंसपंक्तिभिरितस्ततोऽद्रिराट् सम्पतद्भिरिव शुक्लचामरैः । मृष्टगन्धपवनुवाहिभिर्धूयमानरुचिरस्रगम्बरः ॥ २४ ॥ नैकवर्णमणिवज्रभूषितैर्भूषितो मुकुटकुण्डलाङ्गदैः । भूरिरत्नकिरणानुरञ्जितः शक्रकार्मुकरुचं समुद्वहन् ॥ २५ ॥ त्पतद्भिरिव खं तुरङ्गमैर्दारयद्भिरिव दन्तिभिर्धराम् । निर्जितारिभिरिवामरैर्नरैः क्रवत्परिवृतो व्रजेन्नृपः ॥ २६ ॥ सवज्रमुक्ताफलभूषणोऽथवा सितस्रगुष्णीविलेपनाम्बरः । धृतातपत्रो गजपृष्ठमाश्रितो घनोपरीवेन्दुतले भृगोः सुतः । २७॥ सम्प्रहृष्टनरवाजिकुञ्जरं निर्मलप्रहरणांशुभासुरम् । निर्विकारमरिपक्षभीणं यस्य सैन्यमचिरात्स गां जयेत् ॥ २८ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां नीराजनविधिर्नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

ौर मद झरते हुए हर्षित हाथीकी मदगन्धसे सुगन्धित हुई, पवनके सेवनसे हर्षित ो मुकुटमें जडी हुई मणियोंकी चञ्चल कान्तिसे बादल फट जानेपर सूर्यकी समान काशमान मूर्ति धारण करके शुद्ध गन्धयुक्त पवनके पीछे बहते हुए गिरनेवाले ेत चामरसे हंसावलीसे शोभायमान पर्वतराजकी समान कम्पायमान, सुन्दरमाला ौर सुन्दर वस्त्र पहरकर शोभित हो ॥ २३ ॥ २४ ॥ अनेक रंगके मणि और ीरोंसे भूषित, मुकुट, कुण्डल और बाजू धारण करे हुए राजा तिस कालमें अनेक त्नोंकी किरणोंसे रंगे हुए इन्द्रधनुषकी समान सुन्दर रूप धारण करके आकाशमें ानो उडते हुए घोडे, धरतीके विदारण करनेवाले हाथी और शत्रुको विजय करवाले मनुष्योंके साथ, देवताओंसे घिरे हुए इन्द्रकी समान गमन करे ॥२५॥२६॥ ाथवा हीरा, मोती, जडी श्वेतमाला, पगडी, उपटना या चंदनादि लगाय, वस्त्र हर, छत्र धारण कर हाथीपर सवार हो, मेघके ऊपर चन्द्रमाके नीचे विराजमान ुक्रकी समान गमन करे ॥ २७ ॥ जिस कालमें जिसकी सेना हर्षित है और र्षित हाथी, घोडे और मनुष्योंसे युक्त है, निर्मल अस्त्र शस्त्रोंकी कान्तिसे प्रकाशमान है, विकाररहित और शत्रुपक्षको भय उपजानेवाली होती है, वह राजा ीघ्रही पृथ्वीको जीत लेनेमें समर्थ होता है ॥ २८ ॥

ति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्त- ्-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४४॥

सूर्येन्दुपर्जन्यसमीरणानां योगः स्मृतो वृष्टिविकारकाले । धान्यान्नगोकाञ्च-
-क्षिणाश्च देयास्ततः शान्तिमुपैति पापम् ॥ ४६ ॥ इति वृष्टिवैकृतम् । अप
र्पणं नदीनां नगरादचिरेण शून्यतां कुरुते । शोपश्चाशोष्याणामन्येषां वा ह्र
दीनाम् ॥ ४७ ॥ स्नेहासृङ्मांसवहाः संकुलकलुषाः प्रतीपगाश्चापि । परच
स्यागमनं नद्यः कथयन्ति षण्मासात् ॥ ४८ ॥ ज्वालाधूमक्वाथा रुदितो
द्गानि चैव कूपानाम् । गीतप्रजल्पितानि च जनमरकाय प्रदिष्टानि ॥ ४९ ॥
तोयोत्पत्तिरखाते गन्धरसविपर्यये च तोयानाम् । सलिलाशयविकृतौ वा म
हद्भयं तत्र शान्तिरियम् ॥ ५० ॥ सलिलविकारे कुर्यात् पूजां वरुणस्य वारु
मन्त्रैः । तैरेव च जपहोमं शममेवं पापमुपयाति ॥ ५१ ॥ इति जलवैकृतम्
प्रसवविकारे स्त्रीणां द्वित्रिचतुःप्रभृतिसम्प्रसूतौ वा । हीनातिरिक्तकाले च दे
कुलसंक्षयो भवति ॥ ५२ ॥ वडवोष्ट्रमहिषगोहस्तिनीषु यमलोद्भवे मरणमेषा
षण्मासात्सूतिफलं शान्तौ श्लोकौ च गर्गोक्तौ ॥ ५३ ॥ नार्यः परस्य विषयं

वृष्टि विकारके कालमें सूर्य चन्द्रमा और पवनका यज्ञ करे तिस काल धान्य, अन्न,
गौ और सुवर्णकी दक्षिणा देनेसे पापकी शान्ति होगी ॥ ४६ ॥ इति वृष्टिवैकृतम् ॥
जो नदियां नगरके नीचे बहती हों और वह नगरोंको छोडकर भाग जायं
नगरके न सूखनेवाले स्थान कुंड इत्यादि सूख जांय तो शीघ्रही नगर सूना हो
जाता है ॥ ४७ ॥ जो तेल, रुधिर या मांस नदियोंमें बहता हो, मलीन
हो जाय, उलटी बहने लगे तो छः मासके बीचमें शत्रुकी सेना नगरपर आती
है ॥ ४८ ॥ कूपमें ज्वाला या धूम दिखाई दे, जल खौलने लगे, रोनेका शब्द
और बकवाद सुनाई आवे तो इन बातोंका होना मरीका कारण है ॥ ४९ ॥ बिना
खोदे हुए जलका निकलना, जलकी गन्ध और रसका अदल बदल होना,
जलाशयका विकारको प्राप्त हो जाना बडे भारी भयका कारण है, तिसकी शान्ति
इस प्रकारसे करनी चाहिये; जलविकारमें वारुणमंत्रसे वरुणजीकी पूजा और
मंत्रोंसे जप व होम करना चाहिये, इस प्रकारसे इस पापकी शान्ति होगी ॥
॥ ५१ ॥ इति जलवैकृत । जो स्त्रियोंमें प्रसवविकार हो या उनके दो,
तीन या चार बच्चे पैदा हों, प्रसवसमयके पीछे या पहले प्रसव हो तो
उस कुलका नाश होना है ॥ ५२ ॥ घोडी, ऊंटनी, भैंस, गौ और
हथिनीके एक साथ दो बच्चे पैदा हों तो इनकीही मृत्यु होती है. श्लोक

पत्यक्त्यास्ता हितार्थिना । तर्पयेच द्विजान् कामैः शांतिं चैवात्र कारयेत् ॥५४॥ चतुष्पदाः स्वयूथेभ्यस्त्यक्त्व्याः परभूमिषु । नगरं स्वामिनं यूथमन्यथा ह्येनाशयेत् ॥ ५५ ॥ इति प्रसववैकृतम् । परयोनावभिगमनं भवति तिरश्चाम-थाधु धेनूनाम् । उक्षाणो वान्योऽन्यं पिबति श्वा वा सुरभिपुत्रम् ॥ ५६ ॥ मासत्रयेण विद्यात् तस्मिन्निःसंशयं परागमनम् । तत्प्रतिघातायैतौ श्लोकौ गर्गेण निर्दिष्टौ ॥ ५७ ॥ त्यागो विवासनं दानं तत्तस्याशु शुभं भवेत् । तर्पयेद्ब्राह्मणांश्चात्र जपहोमांश्च कारयेत् ॥ ५८ ॥ स्थालीपाकेन धातारं पशुना च पुरोहितः । प्राजापत्येन मन्त्रेण यजेद्बहन्नदक्षिणाम् ॥ ५९ ॥ इति चतुष्पदवैकृतम् । यानं वाहवियुक्तं यदि गच्छेन्न व्रजेच वाहयुतम् । राष्ट्रभयं भवति तदा चक्राणां सादभङ्गे च ॥६०॥ अनभिहततूर्यनादः शब्दो वा ताडितेषु यदि न स्यात् । व्युत्पत्तौ वा तेषां परागमो नृपतिमरणं वा ॥ ६१ ॥ गीतरवतूर्यनादा नभसि यदा वा

फल छः मासके पीछे होता है. इसकी शान्तिके लिये गर्गजीने दो श्लोक कहे हैं; जिनके प्रसवमें विकार हुआ हो हितार्थी पुरुषको चाहिये कि इन स्त्रियोंको दूर देशमें छोड आवें. ब्राह्मणोंको उनकी इच्छाके अनुसार तृप्त करे और इसमें इस प्रकारसे शान्ति करावे. चौपायोंको अपने थलसे अलग करके दूसरेकी भूमिमें छोड आवे, नहीं तो नगरस्वामी और अपने झुंडका नाश हो जाता है ॥५३॥५४॥॥५५॥ इति प्रसववैकृत । एक जातिका पशु दूसरी जातिके पशुसे मैथुन करे तो अमंगल होता है या दो बैल जो परस्पर थन पियें अथवा कुत्ता गायके बछडेका थन पिये तो अमंगल होता है ॥५६॥ ऐसा हो तो तीन मासमें निःसन्देह शत्रुकी सेना आती है. इसकी रोकके लिये गर्गजीने यह दो शान्तिकारी श्लोक कहे हैं–"उनके छोड देने, निकाल देने या दान कर देनेसे शीघ्र शुभ होता है. इस कारण ब्राह्मणोंको तृप्त करे और जप होम करावे। पुरोहितको उचित है कि प्राजापत्यमंत्रसे स्थालीपाक और पशुओंसे धाताका यजन करे और बहुतसे अन्नकी दक्षिणा दे" ॥५७॥५८॥५९॥ इति चतुष्पादवैकृत । रथ, बहली आदि सवारी जो विनाही घोडे बैलादिके जुते हुए चलने लगें या बैलादिसे जुती हुई सवारी गमन न करे और पहिया पृथ्वीमें गड जाय तो राज्यको भय होता है ॥ ६० ॥ विना बजायेही तुरहीका शब्द होवे या बजायेसे तुरही बजे नहीं या तिसमें व्युत्पत्ति अर्थात् अनेक प्रकारके शब्द हों तो शत्रुकी सेनाका आगमन या राजाका मरण होता है ॥ ६१ ॥ जब आकाशमें

चरास्थिरान्यत्वम् । मृत्युस्तदा गदा वा विस्वरतूर्ये पराजितवः ॥ ६२ ॥ गोलाङ्-
गूलयोः सङ्गे दर्वीशूर्पाद्युपस्करविकारे । क्रोष्टुकनादे च तथा शस्त्रभयं मुनिवर-
श्चेदम् ॥ ६३ ॥ वायव्ययेष्वेषु नृपतिर्वायुं सक्तुभिरर्चयेत् । आ वायोरिति
पञ्चर्चो जाप्याश्च प्रयतैर्द्विजैः ॥ ६४ ॥ ब्राह्मणान् परमान्नेन दक्षिणाभिश्च तर्पयेत् ।
बह्वन्नदक्षिणा होमाः कर्तव्याश्च प्रयत्नतः ॥ ६५ ॥ इति वायव्यवैकृतम् । पुर-
पक्षिणो वनचरा वन्या वा निर्भया विशन्ति पुरम् । नक्तं वा दिवसचराः क्षपा-
चरा वा चरन्त्यहनि ॥ ६६ ॥ सन्ध्याद्वयेऽपि मण्डलमाबध्नन्तो मृगा विहङ्गा
वा । दीप्तायां दिश्यथवा क्रोशन्तः संहता भयदा ॥ ६७ ॥ श्वानः प्ररुदन्त
द्वारे वाशन्ति जम्बुका दीप्ताः । प्रविशेन्नरेन्द्रभवने कपोतकः कौशिको यदि
वा ॥ ६८ ॥ कुक्कुटरुतं प्रदोषे हेमन्तादौ च कोकिलालापाः । प्रतिलोममण्ड-
लचराः श्येनाद्याश्चाम्बरे भयदाः ॥ ६९ ॥ गृहचैत्यतोरणेषु द्वारेषु च पक्षि

प्रतिघाते हो, तुरही बजे या कर्कादि राशिका विपरीत घटन हो तो रोग या मृत्यु होती है । तुरहीका शब्द स्वरहीन हो तो शत्रुकी पराजय होती है ॥ ६२ ॥ बैल और हलका अचानक जुड जाना, दर्वी (चमचा) आदि घरकी सामग्रीमें विकार आ जाना और शृगालके शब्दका होना शस्त्रभयका कारण है। इसकी शान्तिका होना मुनिजीने इस प्रकार कहा है–" इस वायव्यविकारमें राजा सत्तुसे पवनकी पूजा करे और ब्राह्मणोंके द्वारा " आवायोः " इस ऋचाका जप करावे; परमान्न और दक्षिणा देकर ब्राह्मणोंको संतुष्ट करे, यत्नके सहित बहुत अन्न दक्षिणामें दे और होम करावे " ॥६३॥६४॥६५॥ इति वायव्योत्पात। पाले हुए पक्षिगण वनचारी हो जांय या वनके पक्षी निर्भय होकर पुरमें प्रवेश कर जांय, दिनके चलनेवाले रात्रिमें अथवा रात्रिके चलनेवाले दिनमें विचरण करें, दोनों संध्याओंमें मृग और पक्षी मंडल बांध २ कर बैठें अथवा इकट्ठे होके सूर्यकी ओरको मुख करके चिल्लावें तो भय होता है ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ जो कुत्ते रो रो द्वारपर खडे रहें, सूर्यकी ओरको मुख करके गीदड रोवें, जो कबूतर या उल्लू राजभवनमें प्रवेश करें अथवा प्रदोषके समयमें मुरगा शब्द करे, हेमन्तादि ऋतुओंमें कोयल बोले, आकाशमें बाज आदि पक्षियोंका प्रतिलोम मंडल दिखाई दे तो भयकारी होता है ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ घरमें, चैत्यमें, तोरण और द्वार पर बिना देखे हुए नये और मनुष्य उत्पन्न हुए पदार्थ मिलें तो

ह्रुतस्नाताः । मधुवल्मीकाम्भोरुहसमुद्भवाश्चापि नाशाय ॥ ७० ॥ श्वभिर-
स्थिशवावयवप्रवेशनं मन्दिरेषु मरकाय । पशुशस्त्र्याहारे नृपमृत्युर्मुनिवचश्चेदम्
॥ ७१ ॥ मृगपक्षिविकारेषु कुर्याद्धोमान् सदक्षिणान् । देवाः कपोत इति च
तव्याः पञ्चभिर्द्विजैः ॥ ७२॥ सुदेवा इति चैकेन देया गावश्च दक्षिणा । जपे-
च्छाकुनसूक्तं वा मनोवेदशिरांसि च ॥७३॥ इति मृगपक्ष्यादिविकृतम् । शक्रध्व-
न्द्रकीलस्तम्भद्वारप्रपातभङ्गेषु । तद्वत्कपाटतोरणकेतूनां नरपतेर्मरणम् ॥७४॥
न्ध्याद्वयस्य दीप्तिर्धूमोत्पत्तिश्च कानने ऽनग्नौ । छिद्राभावे भूमेर्दरणं कम्पश्च
यकारी ॥ ७५ ॥ पाषण्डानां नास्तिकानां च भक्तः साध्वाचारप्रोज्झितः
ोधशीलः । ईर्ष्युः क्रूरो विग्रहासक्तचेता यस्मिन् राजा तस्य देशस्य नाशः
७६ ॥ प्रहर हर छिन्धि भिन्धीत्यायुधकाष्ठाश्मपाणयो बालाः । निगदन्तः
हरन्ते तत्रापि भयं भवत्याशु ॥ ७७ ॥ अङ्गारगैरिकाद्यैर्विकृतप्रेतालिलेखनं
स्मिन् । नायकचित्रितमथवा क्षये क्षयं याति न चिरेण ॥ ७८ ॥

पर कहे हुए स्थानोंका नाश होता है ॥ ७०॥ जो हड्डीको कुत्ते घरमें ले आवें या
तक अंगका कोई भाग ले आवें तो मरीका कारण है. पशु और शस्त्र मनुष्यकी
वि बोलें तो राजाकी मृत्यु होती है. इन बातोंकी शान्तिके लिये मुनिओंने यह
न कहा है-"मृगपक्षियोंके विकारमें दक्षिणाके साथ होम करे, पांच ब्राह्मणोंसे
देवाः कपोत " इस मंत्रका जप कराना चाहिये, और "सुदेवाः" मंत्रसे दक्षिणा
र शाकुनसूक्तका जप करना उचित है अथवा " मनोवेदशिरांसि "
मंत्र जपे ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ इति मृगपक्षिविकार ।
द्ध्वज, इन्द्रकील, थंभ, द्वार, कपाट, तोरण, केतु टूट जाय या गिर जाय तो
ाका मरण होता है ॥ ७४ ॥ दोनों सन्ध्याके समय तेजका होना, अग्निरहित
में धूमका उत्पन्न होना, बिना छेदके पृथ्वीका फट जाना और कांपना भयकारी
ा है ॥ ७५ ॥ जिस देशका राजा पाखण्डी और नास्तिकोंका भक्त होकर,
धुओंके आचरण नहीं करता, क्रुद्धस्वभाव, ईर्षा करनेवाला, क्रूर, विग्रहमें
चित्त लगानेवाला होता है, उस देशका नाश हो जाता है ॥ ७६ ॥ जब शस्त्र,
ठ, पत्थर हाथमें लेकर बालकगण " मारो, छीन लो, काटो, तोड डालो " ऐसा
ते २ एक दूसरेको मारते हैं. तब शीघ्रही भय होता है ॥ ७७ ॥ कोयले या
से जिस घरकी भीतोंपर भूतोंके चित्र बनाये जांय अथवा विनाशके समय

मदाः । अतोऽन्यत्र चेत्ताता दृश्यन्ते भृशदारुणाः ॥ १६ ॥ उन्मत्तानां
गाथाः शिशूनां भाषितं च यत् । स्त्रियो यच्च प्रभाषन्ते तस्य नास्ति व्यति-
क्रमः ॥ १७ ॥ पूर्वं चरति देवेषु पश्चाद्गच्छति मानुषान् । नाचोदिता वा-
ग्वदति सत्या ह्येषा सरस्वती ॥ १८ ॥ उत्पातान् गणितविवर्जितोऽपि बु-
द्ध्वा विख्यातो भवति नरेन्द्रवल्लभश्च । एतन्मुनिवचनं रहस्यमुक्तं यज्ज्ञात्वा भव-
नरस्त्रिकालदर्शी ॥ १९ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायामुत्पातलक्षणं नाम
षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

अथ सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ।

मयूरचित्रक.

दिव्यान्तरिक्षाश्रयमुक्तमादौ मया फलं शस्तमशोभनं च । प्रायेण चारे-
समागमेषु युद्धेषु मार्गादिषु विस्तरेण ॥ १ ॥ भूयो वराहमिहिरस्य
युक्तमेव कर्तुं समासकृदसाविति तस्य दोषः । तज्ज्ञैर्वाच्यमिदमु-

---

होते हैं ॥ १६ ॥ पागलोंका गीत और गाथा, बालकोंके वचन और स्त्रियें जो कहे उसका अंतर नहीं होता ॥ १७ ॥ सत्यस्वरूप, अप्रेरित, वाग्रूपिणी सरस्वती जो पहले तब देवताओंमें विचरण करती थी फिर मनुष्योंको प्राप्त हुई ॥ १८ ॥ जो ज्योतिष गणितके ज्ञानको नहीं जानता, वहभी जो उत्पातोंका ज्ञान भली भांति करे तो वहभी विख्यात होकर राजाका प्यारा होता है. यह वही मुनिवचनका रहस्य कहा गया है कि जिसको जानकर मनुष्य त्रिकालदर्शी हो सकता है ॥ १९ ॥
इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबाद-
वास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविर० भाषाटीकायां षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

ग्रहचार, समागम, युद्ध और वीथि आदिमें बहुधा दिव्य और अन्तरीक्षके आश्रयी, समस्त शुभाशुभ फल हमने निरूपण किये ॥ १ ॥ वराहमिहिरके ठीक बातोंको बारंबार करना ठीक नहीं है क्योंकि उनका दोष यही है । किंतु, संक्षेप है ; स्वल्प:पद फलदायी मयूरचित्रक नामक श्रेष्ठ ग्रन्थ बनानेसे मयूरचित्रके ...

फलानुगीति यदहं विचित्रकमिति प्रवितं वराङ्गम् ॥ २ ॥ स्वरूपमेव
तस्य तत् प्रकीर्तितानुकीर्तनम् । ब्रवीम्यहं न चेदिदं तथापि मेऽत्र
वाच्यता ॥ ३ ॥ उत्तरवीथिगता द्युतिमन्तः क्षेमसुभिक्षशिवाय समस्ताः ।
दक्षिणमार्गगता द्युतिहीनाः क्षुद्भयतस्करमृत्युकरास्ते ॥ ४ ॥ कोष्ठागारगते
भृगुसुते पुष्यस्थे च गिरां प्रभुविष्णौ । निर्वैराः क्षितिपाः सुखभाजः संहृष्टाश्च
जना गतरोगाः ॥ ५ ॥ पीडयन्ति यदि कृत्तिकां मघां रोहिणीं श्रवणमैन्द्रमेव
वा । भोऽन्हर सूर्येतरे ग्रहास्तदा पश्चिमा दिगनयेन पीड्यते ॥ ६ ॥ प्राच्यां
चेद्ग्रहनिवहस्थिता दिनान्ते प्राच्यानां भवति हि विग्रहो नृपाणाम् । मध्ये
चेद्भवति हि मध्यदेशपीडा रूक्षैस्तैर्न तु रुचिरैर्मयूखवद्भिः ॥ ७ ॥ दक्षिणा
ककुभमाश्रितैस्तु तैर्दक्षिणापथपयोमुचां क्षयः । हीनरूक्षतनुभिश्च विग्रहः
स्थूलदेहकिरणान्वितैः शुभम् ॥ ८ ॥ उत्तरमार्गे स्पष्टमयूखाः शान्तिकरास्ते
भूपतीनाम् । ह्रस्वशरीरा भस्मसवर्णा दोषकराः स्युर्देशनृपाणाम् ॥ ९ ॥

वाले पंडित लोग उनकी कुछभी निन्दा न करेंगे ॥ २ ॥ (पहले मेरुके विषयमें)
ही मयूरचित्रकका स्वरूप है इस कारण फिर उनका वर्णन नहीं करना चाहिये
परन्तु वर्णन न करनेपरभी निन्दा न छूटेगी ॥ ३ ॥ जो उत्तर मार्गमें ग्रह गमन
करें और प्रकाशवान हों तो कुशल, सुभिक्ष और मंगल होता है, दक्षिणमार्गमें जाकर
और प्रकाशहीन हों तो अकाल, तस्करभय और मृत्युकारक होते हैं ॥ ४ ॥
शुक्र ग्रह कोष्ठागारमें अर्थात् मघानक्षत्रपर होय और बृहस्पति पुष्यनक्षत्रमें विराज-
मान हों तो राजा लोग शत्रुरहित होवें हैं. प्रजा सुखी, हर्षित और रोगहीन रहती
है ॥ ५ ॥ यदि सूर्यके अतिरिक्त ग्रहगण कृत्तिका, मघा, रोहिणी, श्रवण और
ज्येष्ठा नक्षत्रको पीडित करें तो अनीतिसे पश्चिमदिशाको पीडा होती है ॥ ६ ॥
जो सन्ध्याकालके समय पूर्वदिशामें धनाशकी नाईं ग्रहगण विराजमान होवें तो तो
पूर्वदिशाके रहनेवाले राजाओंमें युद्ध होता है. यदि आकाशके मध्यभागमें ऐसा
हो तो मध्यदेश पीडित होता है. परन्तु यह रूखे, मनोहर अथवा किरणदार हों
तो मध्यदेशको पीडा नहीं होती ॥ ७ ॥ जो दक्षिणदिशामें ग्रह हों तो दक्षिणापथ
और मेघोंका क्षय होता है जो इस समयमें ग्रह हीनशरीर और रूखे देखाई हों
तो विग्रह होता है, परन्तु बडी देहवाले और किरणदार हों तो शुभ होता है ॥ ८ ॥
जो उत्तरमार्गमें स्पष्ट किरणोंसे झलकते हों तो वहांके राजाओंमें शान्ति करनेवाले
होते हैं, छोटे शरीरवाले और भस्मके समान रंगवाले हों तो देश और राजाओंको

नक्षत्राणां तारकाः सग्रहाणां धूमज्वालाविस्फुलिङ्गान्विताश्चेत् । आलोकं
निर्निमित्तं न यान्ति याति ध्वंसं सर्वलोकः सभूपः ॥ १० ॥ दिवि भाति
तुहिनांशुयुगं द्विजवृद्धिरतीव तदाशु शुभा । तदनन्तरवर्णरणोऽर्कयुगे च
प्रलयस्त्रिचतुःप्रभृति ॥ ११ ॥ मुनीनभिजितं ध्रुवं मघवतश्च भं सं
शिखी घनविनाशकृत् कुशलकर्महा शोकदः । भुजङ्गभमथ स्पृशेद्भवति
नाशो ध्रुवं क्षयं व्रजति विद्रुतो जनपदश्च बालाकुलः ॥ १२ ॥
चरन् रविपुत्रो नक्षत्रेषु करोति च वक्रम् । दुर्भिक्षं कुरुते भयमुग्रं मि
च विरोधमवृष्टिम् ॥ १३ ॥ रोहिणीशकटमर्कनन्दनो यदि भिनत्ति रु
थवा शिखी । किं वदामि यदनिष्टसागरे जगदशेषमुपयाति संक्षयम् ॥ १४
उदयति सततं यदा शिखी चरति भचक्रमशेषमेव वा । अनुभवति पु
तदा फलमशुभं सचराचरं जगत् ॥ १५ ॥ धनुःस्थायी रूक्षो र
क्षुन्नकरो वक्रोयोगं चेन्दुः कथयति जयं ज्यायस्य च यतः । असित

दोषकारी होते हैं ॥ ९ ॥ जो ग्रह और नक्षत्रोंके तारे धुएकी लपट और चिन
रियोंसे युक्त हों या विनाही कारणके उनमें प्रकाश न हो तो राजाके सा
लोकका ध्वंस होता है ॥ १० ॥ जब आकाशमें दो चन्द्रमा दीप्तिमान हों
तब ब्राह्मणोंका अत्यन्त शुभ होता है, दो सूर्यके दिखाई देनेसे अनिष्ट
युद्ध होता है और तीन चार इत्यादि अनेक चन्द्रसूर्यके निकलनेसे जगत्‌में
होता है ॥ ११ ॥ शिखी अर्थात् केतु यदि सप्तर्षिमण्डल, अभिजित्, ध्रु
ज्येष्ठानक्षत्रको स्पर्श करे तो बादलोंका नाश, कुशल कर्ममें हानि और शोक
होता है. जो आश्लेषानक्षत्रको स्पर्श करे तो निश्चयही वृष्टिका नाश और रोग
जनपदमें उपद्रव होकर वह शीघ्र नाशको प्राप्त हो जाता है ॥ १२ ॥
शनि दूसरा अर्थात् कृत्तिकादि सात नक्षत्रमें विचरकर वक्री हो
दुर्भिक्ष, उग्र भय, मित्रोंका विरोध करता है और वर्षाको नहीं करता है ॥ १३ ॥
जो शनि, मंगल या केतु रोहिणीशकटको भेद करे तो समस्त जगत्‌का ऐ
अनिष्ट होता है कि कुछ कहा नहीं जाता ॥ १४ ॥ जब केतु उदय होता
है या बहुतसे नक्षत्रोंके चक्रमें विचरण करता है तो स्थावर जङ्गम सारे जी
अनन्त अशुभ फलोंका अनुभव करता है ॥ १५ ॥ धनुषकी समान
रूक्ष और रुधिरकी समान दिखाई हो तो क्षुधा और भय

गोघ्नो निधनमपि सस्यस्य कुरुते ज्वलन्धूमायन् वा नृपतिमरणायैव भवति ॥ १६ ॥ स्निग्धः स्थूलः समशृङ्गो विशालस्तुङ्गश्चोदग्विचरन्नागवीथ्याम् । दृष्टः सौम्यैरशुभैर्विमुक्तो लोकानन्दं कुरुतेऽतीव चन्द्रः ॥ १७ ॥ पित्र्यमैत्रपुरुहूतविशाखात्वाष्ट्रमेत्य च युनक्ति शशाङ्कः । दक्षिणेन न शुभो हितकृत्स्यादुदक् चरति मध्यगतो वा ॥ १८ ॥ परिघ इति मेघरेखा या तिर्यग्भास्करोदयेऽस्ते वा । परिधिस्तु प्रतिसूर्यो दण्डस्त्वृजुरिन्द्रचापनिभः ॥ १९ ॥ उदयेऽस्ते वा भानोर्ये दीर्घा रश्मयस्त्वमोघास्ते । सुरचापखण्डमृजु यद्रोहितमैरावतं दीर्घम् ॥ २० ॥ अर्धास्तमयात्सन्ध्या व्यक्तीभूता न तारका यावत् । तेजःपरिहानिमुखाद्भानोरर्धोदयं यावत् ॥ २१ ॥ तस्मिन् सन्ध्याकाले चिह्नैरेतैः शुभाशुभं वाच्यम् । सर्वैरेतैः स्निग्धैः सद्योवर्षं भयं रूक्षैः ॥ २२ ॥ अच्छिन्नः परिघो वियच्च विमलं श्यामा मयूखा रवेः स्निग्धा दीधितयः सितं

है और इस चन्द्रमाकी मोर्गी जिस ओरको होती है वहांपर सेनाका उद्योग और जयकी सूचना होती है. चन्द्रमाका शृंग नीचे हो तो धान्य और गायोंका नाश होता है और लपट व धुएका विस्तार करे तो राजाओंके मरणका कारण होता है ॥ १६ ॥ चिकना, स्थूल, बराबर शृंगवाला, विशाल और ऊंचा चन्द्रमा उत्तरदिशामें नागवीथिमें विचरण करे, अशुभ ग्रहसे अलग और शुभ ग्रहसे देखा जाय तो मनुष्योंको अत्यन्त आनन्द देता है ॥ १७ ॥ जो चन्द्रमा मघा, अनुराधा, ज्येष्ठा, विशाखा और चित्रानक्षत्रको प्राप्त होकर दक्षिणमें जाय तो शुभ फल नहीं होता; यदि उत्तरदिशामें वा मध्यमें हो तो हितकारी होता है ॥ १८ ॥ सूर्यके उदय वा अस्तकालमें जो मेघकी रेखा हो, उसकाही "परिघ" नाम है यह तिरछी हो तो "परिधि" सूर्यकी समान वस्तु हो तो "प्रतिसूर्य" और इन्द्रके धनुषकी समान सरल मेघको "दंड" कहते हैं. सूर्यकी लंबी किरणको "अमोघ" कहते हैं और लम्बे व सीधे इन्द्रधनुषको "ऐरावत" कहते हैं ॥ १९ ॥ २० ॥ जब सूर्य आधा छिप गया हो, तारे प्रकाशित न हुए हों और तेजहानिके आरम्भसे जबतक सूर्यका आधा उदय हो तबतक संध्या कहाती है ॥ २१ ॥ उस सन्ध्याकालमें इन चिह्नोंको देखकर शुभ अशुभ फल कहना चाहिये; यह समस्त चिकने हों तो शीघ्र वर्षा और रूखे हों तो भय होता है ॥ २२ ॥ साबत परिघ, विमल आकाश, सूर्यकी श्याम किरणें, स्निग्ध दीधिति, श्वेतवर्णका देवताओंका

सुरधनुर्विद्युच्च पूर्वोत्तरा । स्निग्धो मेघतरुर्दिवाकरकरैरालिङ्गितो वा यदि
स्याद्यदि वार्कमस्तसमये मेघो महांश्छादयेत् ॥ २३ ॥ खण्डो वक्रः
ह्रस्वः काकाद्यैर्वा चिह्नैर्विद्धः । यस्मिन्देशे रूक्षश्चार्कस्तत्राभावः भावी
॥ २४ ॥ वाहिनीं समुपयाति पृष्ठतो मांसभुक्खगगणो युयुत्सतः । यस्य
बलविद्रवो महान् अग्रगैस्तु विजयो विहङ्गमैः ॥ २५ ॥ भानोरुदये
वास्तमये गन्धर्वपुरप्रतिमा ध्वजिनी । बिम्बं निरुणद्धि तदा नृपतेः प्राप्तं
सभयं प्रवदेत् ॥ २६ ॥ शस्ता शान्तद्विजमृगघुष्टा सन्ध्या स्निग्धा मृदु
च । पांशुध्वस्ता जनपदनाशं धत्ते रूक्षा रुधिरनिभा वा ॥ २७ ॥ यद्विस्तरे
कथितं मुनिभिस्तदस्मिन् सर्वं मया निगदितं पुनरुक्तवर्जम् । श्रुत्वा
कोकिलरुतं बलिभुग्विरौति यत्तत्स्वभावकृतमस्य पिकं न जेतुम् ॥ २८ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां मयूरचित्रकं नाम
सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

धनुष, पूर्वोत्तर दिशामें बिजली विराजमान हो अथवा जब बादलरूप सूर्यकी कि-
रणोंके पड़नेसे चिकना हो जाता है या सूर्यको छिपनेके समय महामेघ ढक ले-
ते तो वर्षा होती है ॥ २३ ॥ जिस देशमें सूर्य टुकडेदार, टेढा, छोटा, और
काकादि चिह्नसे बिंधा हुआ और रूखा हो वहांपर अकसर राजाका अभाव हो-
ता है ॥ २४ ॥ जिन युद्ध करनेकी इच्छा किये राजाओंके पीछेसे मांस खानेवाले
पक्षियोंके साथ सेनाका समागम होता है, उनकी सेनाका बडा भारी भय होता
परन्तु विहंगगण आगे २ चलें तो विजय होती है ॥ २५ ॥ सूर्यके उदय वा
अस्तसमयमें ध्वजासे युक्त गन्धर्वपुरकी प्रतिमा जो सूर्यको रोक ले तो पण्डित
कहते हैं कि राजाको भययुक्त समरकी प्राप्ति होगी ॥ २६ ॥ चिकने और मृ-
दुशब्दवाली सन्ध्या, पूर्वदिशामें पक्षी और मृगगणोंका शब्द होना अच्छा है और
सन्ध्या धूलिसे ढंकगई व्याप्त हुई या रुधिरकी समान रूखी हो तो जनपदका न-
ाश हो ॥ २७ ॥ मुनिलोगोंने जिसको विस्तारसे कहा है, मैंने उसको संक्षेपसे
पुनरुक्तियोंको छोडकर इस शास्त्रमें कहा है. कोयलकी कूक सुनकर काक जो
बोलता उसका स्वभाव है; वास्तवमें काकका शब्द करना कोयलको जी-
तनेके लिये नहीं है ॥ २८ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबाद-
वास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितभाषाटीकायां सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४७॥

अथाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः।

पुष्यस्नान।

मूलं मनुजाधिपतिः प्रजातरोस्तदुपघातसंस्कारात्। अशुभं शुभं च लोके भवति यतोऽतो नृपतिचिन्ता॥ १ ॥ या व्याख्याता शान्तिः स्वयम्भुवा सुरगुरोर्महेन्द्रार्थे। तां प्राप्य वृद्धगर्गः प्राह यथा भागुरेः शृणुत ॥ २ ॥ पुष्यस्नानं नृपतेः कर्तव्यं दैववित्पुरोधाभ्याम्। नातः परं पवित्रं सर्वोत्पातान्तकरमस्ति ॥ ३ ॥ श्लेष्मातकाक्षकण्टकिकटुतिक्तविगन्धिपत्रदग्धविहीने। कौशिकगृध्रप्रभृतिभिरनिष्टविहगैः परित्यक्ते ॥ ४ ॥ तरुणतरुगुल्मवल्लीलताप्रतानावृते वनोद्देशे। निरुपहतपत्रपल्लवमनोज्ञमधुरद्रुमप्राये ॥ ५ ॥ कृकवाकुजीवजीवकशुकशिखिशतपत्रचापहारीतैः। ककरचकोरकपिञ्जलवञ्जुलपारावतश्रीकैः ॥ ६ ॥ कुसुमरसपानमत्तद्विरेफपुंस्कोकिलादिभिश्चान्यैः। विरुते वनोपकण्ठे क्षेत्रागारे शुचावथवा ॥ ७ ॥ हृदिनीविलासिनीनां जलखगनखविक्षतेषु रम्येषु।

राजाही प्रजारूपी वृक्षके लिये जडरूप है, तिसलिये प्रजाके ऊपर उपघात संस्कारके लिये अशुभ और शुभ फल होता है; इसलिये राजाके मङ्गलविषयमें सदा चिन्ता करनी चाहिये ॥ १ ॥ स्वयं ब्रह्माजीने महेन्द्रके लिये बृहस्पतिजीसे जो शान्ति कही थी, वृद्धगर्गजीने तिसको प्राप्त हो भागुरिसे जो कहा है तिसको श्रवण करो ॥ २ ॥ ज्योतिषी और पुरोहितलोगोंके द्वारा राजाको पुष्यस्नान करना उचित है. इसके अतिरिक्त पवित्र और सर्व प्रकारके उत्पातोंका नाश करनेवाला दूसरा कोई नहीं है ॥ ३ ॥ श्लेष्मातक (लसौडा), अक्ष (बहेडा), कंटकी (खैर), चरपरे, कडुवे व गन्धहीन वृक्ष और उल्लू व शकुने आदि अनिष्टकारी पक्षियों करके छोडे हुए, तरुण वृक्ष, लता, गुल्म, वल्ली और बेलसे झांडदार छिपे हुए सघन पत्ते और कोंपलोंसे मनोहर और मधुर फलसे वृक्षवाले वनमें पुष्यस्नान करना उचित है. जिस स्थानमें कृकवाकु (मुरगा), जीवजीवक (चकोर), तोता, मोर, शतपत्र (खुटबढई) चाष (नीलकंठ), हारीत (परेवा), ककर (पेंडुका), कपिञ्जल (चातक), वंजुल (पक्षिविशेष) और पारावत और फूलोंका मधुपान करनेमें मतवाले भ्रमरगण और कोयलादि पक्षियोंका मनोहर शब्द होता है, वनके समीप ऐसे पवित्र क्षेत्रागारमें इस शान्तिको करना चाहिये ॥ ४ ॥ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ अथवा नयन मनको प्रसन्न करनेवाले जलचारी पक्षियोंके

पुलिनजघनेषु कुर्याद्दङ्गनसोः प्रीतिजननेषु ॥ ८ ॥ ॥ प्रोत्फुल्लहंसच्छत्रे कार-
वकुररसारसोद्गीते । फुल्लेन्दीवरनयने सरसि सहस्राक्षकान्तिधरे ॥ ९ ॥ प्रोत्फु-
कमलवदनाः । कलहंसकलस्वनप्रभाषिण्यः । प्रोत्तुङ्गकुड्मलकुचा यस्मिन्नलिनी-
विलासिन्यः ॥ १० ॥ कुर्याद्गोरोमन्थजफेनलवशकृत्खुरक्षतोपचिते । अचि-
प्रसूतहुंकृतवल्गितवत्सोत्सवे गोष्ठे ॥ ११ ॥ अथवा समुद्रतीरे कुशलागतपोत-
रत्नसम्बाधे । घननिचुललीनजलचरसितखगशबलीकृतोपान्ते ॥ १२ ॥ क्षमया
क्रोध इव जितः सिंहो मृग्याभिभूयते यत्र । दत्ताभयखगमृगशावकेषु तेष्वाश्रमे-
ष्वथवा ॥ १३ ॥ काञ्चीकलापनूपुरगुरुजघनोद्वहनविघ्नितपदाभिः । श्रीमति
मृगेक्षणाभिर्गृहेऽन्यभृतवल्गुवचनाभिः ॥ १४ ॥ पुण्येष्वायतनेषु च
तीर्थोद्यानरम्यदेशेषु । पूर्वोदक्प्लवभूमौ प्रदक्षिणाम्भोविहारायां च ॥ १५ ॥

नखविक्षत नदीरूप कामिनीकी पुलिनरूप मनोहर जांघोंपर यह शान्ति करनी चाहिये
॥ ८ ॥ या खिले हुए कमलरूप वदनवाली, कलहंसकी कलनादरूप वाक्यवाली
और पद्मके मुकुल (कली) रूप ऊंचे स्तनवाली नलिनीरूप विलासिनियें जहां
वर्तमान हैं, उडते हुए हंसही जिसका छत्र है, कारण्डव, कुरर और सारस पक्षियोंकी
ध्वनिसे जो गानेके युक्त हैं, प्रफुल्ल इन्दीवर रूपवाले, अतएव सहस्राक्ष इन्द्रके
समान रूपधारी पवित्र सरोवरके तीरपर शान्ति करनी चाहिये ॥ ९ ॥ १० ॥
अथवा गायोंके जुगारनेसे फेन गिरा है, खुरोंसे ताडित होकर जहां
चारों ओर गोवर पडा है, जहांपर नये पैदा हुए वछडोंके हुंकार और कूदने फांद-
नेमें उत्सव हो गया है, ऐस गोगोठमें पुष्पस्नान करना चाहिये ॥ ११ ॥ अथवा
जहांपर कुशलसे आये हुए जहाज और रत्नोंके ढेर और घने निचुल (जलेंत)
वृक्ष और जलचर, श्वेत पक्षियोंके लीन होनेसे जहांका किनारा अनेक रंगका हो
गया है, उस समुद्रके तीरपर पुष्पस्नान करना चाहिये ॥ १२ ॥ जिस प्रकार
क्षमासे क्रोध जीत लिया जाता है, वैसेही जिस स्थानमें मृगीगण करके सिंह जिता
है, जहांपर पक्षी और मृगोंके बचे निडर होकर घूमते हैं तैसे आश्रममें अथवा
कांचीकलाप, नूपुर, वडे २ नितम्बों करके जिनके पांव फिसल रहे हैं अर्थात् मन्द-
गतिशालिनी और कोपलके कूकनेकी समान मधुरभाषण करनेवाली मृगनयनी
ललनाओंसे श्रीमान् गृहमें यह शान्ति करनी चाहिये ॥ १३ ॥ १४ ॥ अथवा
पवित्र देवमन्दिरमें, तीर्थ या उद्यानके रमणीक स्थानमें या पारेकमासे टो

ाङ्गारास्थ्यूषरतुषकेशश्वभ्रकर्कटावासैः। श्वाविन्मूषकविवरैर्वल्मीकैर्या च
रका ॥ १६ ॥ धात्री घना सुगन्धा स्निग्धा मधुरा समा च विजयाय।
वासेऽप्येवं योजयितव्या यथायोगम् ॥ १७ ॥ निष्क्रम्य पुरान्नक्तं
ामात्ययाजकाः प्राच्याम् । कौबेर्यां वा कृत्वा बलिं दिशीशाधिपायां वा
८ ॥ लाजाक्षतदधिकुसुमैः प्रयतः प्रणतः पुरोहितः कुर्यात्। आवाहनमथ
त्तस्मिन्मुनिभिः समुद्दिष्टः ॥ १९ ॥ आगच्छन्तु सुराः सर्वे येऽत्र पूजाभि-
षेणः। दिशो नागा द्विजाश्चैव ये चान्येऽप्यंशभागिनः ॥ २० ॥ आवाह्यैवं
सर्वानेवं ब्रूयात् पुरोहितः। श्वः पूजां प्राप्य यास्यन्ति दत्त्वा शांतिं मही-
॥ २१ ॥ आवाहितेषु कृत्वा पूजां तां शर्वरीं वसेयुस्ते। सदसत्स्वमनि-
ं यात्रायां स्वप्नविधिरुक्तः ॥ २२॥ अपरेऽहनि प्रभाते सम्भारानुपहरेद्यथो-
ुणान्। गत्वावनिप्रदेशे श्लोकाश्चाप्यत्र मुनिगीताः ॥ २३ ॥ तस्मिन् मण्ड-

---

ाका जल बहता हो, पूर्व व उत्तरकी ओरको बहती हुई, क्रमसे नीचेकी भूमिमें
यस्थान करना चाहिये ॥ १५ ॥ राख, कोयला, हड्डी, ऊपर, तुष, केश, गढा,
ौर कांकडा रहता हो, इत्यारे जंतु और चुहोंके मदक जहां नहीं हों, जहांपर वमई
हो, जिस स्थानकी भूमि घनी, सुगन्धित, चिकनी, मधुर और बराबर हो वही
मि विजयकी कारण है; छावनीमेंभी
१६ ॥ १७ ॥ देवज्ञ, मंत्री और य
त्तर दिशामें या ईशानकोणमें जांय,
क्षत, दही और फूलोंसे बलिदान करे. इसका आवाहन मंत्र मुनियोंने इस प्रका-
े कहा है,-"जो देवता लोग इसमें पूजा चाहते हैं; जो दिशा नाग, ब्राह्मण व
ौर जो कोई अंशके भागी हों, वह सबही आगमन करें" ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥
सके उपरान्त पुरोहित इस प्रकार सबको बुलाय ऐसा कहे,-"आप लोग आने-
ाले कलको शुभ पूजा प्राप्त कर राजाको शान्ति दे चले जांय" ॥ २१ ॥ बुलाये हुए
ेवताओंकी पूजा करके सबको वह रात्रि वहींपर वितानी चाहिये. रात्रिमें जो स्वप्न दिखाई
े, उसका शुभाशुभ फल निरूपण करना चाहिये. यह विषय यात्राध्यायमें कहा है॥ २२॥
ूसरे दिन प्रभातको कहे हुए द्रव्य लाय, उस पृथ्वीमें जाय जो जो करना चाहिये
तिस विषयमें मुनिके गाये ये श्लोक हैं-" विद्वान् पुरोहित वहांपर मंडल खैंचकर
तिसमें अनेक रत्नोंकी खानिवाली पृथ्वीको खैंच और विविध स्थानोंकी कल्पना
करे और यथास्थानमें नाग, यक्ष, पितृ, गन्धर्व, अप्सरा, मुनि और सिद्धोंको धरे.

लमालिख्य कल्पयेत्तत्र मेदिनीम् । नानारत्नाकरवतीं स्थानानि विविधानि च ॥ २४ ॥ पुरोहितो यथास्थानं नागान्यक्षान् सुरान् पितॄन् । गन्धर्वाप्सरसश्चैव मुनीन् सिद्धांश्च विन्यसेत् ॥ २५ ॥ ग्रहांश्च सह नक्षत्रै रुद्रांश्च सह मातृभिः । स्कन्दं विष्णुं विशाखं च लोकपालान् सुरस्त्रियः ॥ २६ ॥ वर्णैर्विविधैः कृत्वा हृद्यैर्गन्धगुणान्वितैः । यथास्वं पूजयेद्विद्वान् गन्धमाल्यानुलेपनैः ॥२७॥ भक्ष्यैरन्यैश्च विविधैः फलमूलामिषैस्तथा । पानकैर्विविधैर्हृद्यैः सुरक्षीरासवादिभिः ॥ २८॥ कथयाम्यतः परमहं पूजामस्मिन् यथाभिलिखितानाम् । ग्रहयज्ञे यः प्रोक्तो विधिर्ग्रहाणां स कर्तव्यः ॥२९॥ मांसौदनमद्याद्यैः पिशाचदितितनयदानवाः पूज्याः । अभ्यञ्जनाञ्जनतिलैः पितरो मांसौदनैश्चापि ॥ ३० ॥ सामयजुर्भिर्मुनयस्त्वृग्भिर्गन्धैश्च धूपमाल्ययुतैः । अश्लेषकवर्णैस्त्रिमधुरेण चार्चयेन्नागान् ॥ ३१ ॥ धूपाज्याहुतिमाल्यैर्विबुधान् रत्नैः स्तुतिप्रणामैश्च गन्धर्वानप्सरसो गन्धैर्माल्यैश्च सुसुगन्धैः ॥ ३२ ॥ शेषांस्तु सार्ववर्णिकबलिभिः पूजां न्यसेच्च सर्वेषाम् । प्रतिसरवस्त्रपताकाभूषणयज्ञोपवीतानि ॥ ३३

नक्षत्रोंके साथ ग्रह, मातृकाओंके साथ रुद्र, स्कन्द, विष्णु, विशाख और लोकपालोंको व देवताओंकी स्त्रियोंको उचित स्थानमें बनावे. फिर तिनको अनेक प्रकारके रंगोंसे रंगकर, सुगन्धित और डोरेवाली मनोहर माला, चन्दनादि फल मूल, मांसादि विविध भक्ष्य और सराब, दूध, आसवादि विविध मनोहर जलके पदार्थोंसे रीतिपूर्वक पूजा करे॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८॥ इसमें अभिलषित देवताओंकी जैसे पूजा करनी चाहिये, सो मैं कहता हूं. ग्रहयज्ञमें ग्रहोंकी पूजामें जो विधि कही है, यहांपर वही कर्तव्य है ॥ २९ ॥ तिसमें मांस, पका हुआ अन्न और मत्स्यादिसे पिशाच, दैत्य और दानवोंकी पूजा करनी चाहिये. अभ्यञ्जन, अञ्जन, तिल, मांस और रंधे हुए अन्नसे पितरोंकी पूजा करनी चाहिये ॥ ३० ॥ साम, यजु और ऋङ्मन्त्रसे गन्धयुक्त धूप और मालासे मुनियोंकी और अनेक वर्ण व त्रिमधुसे नागकी पूजा करनी चाहिये ॥ ३१ ॥ धूप, घीकी आहुति, माला, रत्न, स्तुति व प्रणाम करके देवताओंको व अत्युत्तम गन्धयुक्त गन्धद्रव्य और मालासे गन्धर्व और अप्सराओंकी पूजा करे ॥ ३२ ॥ शेष सबकी सार्ववर्णिक बलिसे पूजा करे. प्रतिसर (हारकी लकडी), वस्त्र, पताका,

मण्डलपश्चिमभागे कृत्वाग्निं दक्षिणेऽथवा वेद्याम् । आदद्यात्सम्भारान् दर्भान्दीर्घान्नगांश्च ॥ ३४ ॥ लाजाज्याक्षतदधिमधुसिद्धार्थकगन्धसुमनसो धूपान् । गोरोचनाञ्जनतिलान् स्वर्तुजमधुराणि च फलानि ॥ ३५ ॥ सघृतस्य पायसस्य च तत्र शरावाणि तैश्च सम्भारैः । पश्चिमवेद्यां पूजां कुर्यात् स्नानस्य सा वेदी ॥ ३६ ॥ तस्याः कोणेषु दृढान् कलशान् सितसूत्रवेष्टितग्रीवान् । क्षीरवृक्षपल्लवफलापिधानान् व्यवस्थाप्य ॥ ३७ ॥ पुष्यस्नानविमिश्रेणापूर्णानम्भसा सरत्नांश्च । पुष्यस्नानद्रव्याण्याद्याद्गर्गगीतानि ॥ ३८ ॥ ज्योतिष्मतीं त्रायमाणामभयामपराजिताम् । जीवां विश्वेश्वरीं पाठां समङ्गां विजयां तथा ॥ ३९ ॥ सहां च सहदेवीं च पूर्णकोशां शतावरीम् । अरिष्टिकां शिवां भद्रां तेषु कुम्भेषु विन्यसेत् ॥ ४० ॥ ब्राह्मीं क्षेमामजां चैव सर्वबीजानि काञ्चनम् । मङ्गल्यानि यथालाभं सर्वौषध्यो रसांस्तथा ॥ ४१ ॥ रत्नानि सर्वगन्धांश्च बिल्वं च सविकङ्कतम् । प्रशस्तनाम्न्यश्चौषध्यो हिरण्यं मङ्गलानि च ॥ ४२ ॥

भूषण और यज्ञोपवीत सबकोही अर्पण करे ॥ ३३ ॥ मण्डलके पश्चिमभागमें अथवा दक्षिणदिशामें वेदीके ऊपर अग्नि स्थापन करके कुशा और सब सामग्रीका दान करे. खीलें, घी, चावल, दही, मधु, सिद्धार्थक, फूलमाला, धूप, गोरोचन, अञ्जन, तिल, ऋतुके उत्पन्न हुए मधुर फल और घी व खीरसे भरी हुई सरइयोंसे इस समस्त सामग्रीके साथ अर्पण करे, प्रधानवेदीके पश्चिममें जो वेदी हो उसमें पूजा करनी चाहिये. वही वेदी स्नानवेदी है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ उसके मजबूत कलशोंके गलेमें सूत बांध, दुधारे वृक्षके पत्ते और फलसे ढककर उस वेदीके चारों कोनोंमें व्यवस्थासे रक्खे. सब कलशोंको पुष्यस्नानके विधानमें कहे हुए पदार्थोंसे मिले जलसे भरकर तिसमें सब रत्न डाले, गर्गमुनिने जो पुष्यस्नानकी सामग्री कही है वह यह है—"ज्योतिष्मती, त्रायमाण, अभया (हर्रे), अपराजिता (कोयल), जीवा (वच), विश्वेश्वरी (सौंठ), पाठा (पाढ), समङ्गा (पसरन), भंग, सहा (कटुरी) सहदेवी (सहदेई), पूर्णकोशा (नागरमोथा), शतावरी, अरिष्टिका (रीठा), शिवा, भद्रा (मोथा), अजा (औषधिविशेष), क्षेमा (चोरनामक गन्धद्रव्य), ब्राह्मी (बिरमी), सर्वबीज, सुवर्ण, मंगलके द्रव्य, सब प्रकारकी औषधियें, रस, रत्न, सब प्रकारके गन्धद्रव्य, बेल, विकंकत (कंटाई), प्रशस्त नामक औषधि, सुवर्ण और मङ्गलमय जो कुछ द्रव्य पावे सोभी इन

ोत्तरमयं च मन्त्रोऽत्र मुनिगीतः ॥ ५१ ॥ आज्यं तेजः समुद्दिष्टमाज्यं
हारं परम् । आज्यं सुराणामाहार आज्ये लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥ ५२ ॥
मान्तरिक्षं दिव्यं च यत्ते किल्बिषमागतम् । सर्वं तदाज्यसंस्पर्शात्प्रणाशमुप-
च्छतु ॥ ५३ ॥ कम्बलमपनीय ततः पुष्पस्नानाम्बुभिः सफलपुष्पैः । अभि-
श्चेन्मनुजेन्द्रं पुरोहितोऽनेन मन्त्रेण ॥ ५४ ॥ सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ये च
द्धाः पुरातनाः । ब्रह्मा विष्णुश्च शम्भुश्च साध्याश्च समरुद्गणाः ॥ ५५ ॥
ादित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ च भिषग्वरौ । अदितिर्देवमाता च स्वाहा
ािद्धिः सरस्वती ॥ ५६ ॥ कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिः श्रीश्च सिनीवाली कुहूस्तथा ।
नुश्च सुरसा चैव विनता कद्रुरेव च ॥ ५७ ॥ देवपत्न्यश्च या नोक्ता देवमातर
ा च । सर्वास्त्वामभिषिञ्चन्तु दिव्याश्चाप्सरसां गणाः ॥ ५८ ॥ नक्षत्राणि
हूर्ताश्च पक्षाहोरात्रसन्धयः । संवत्सरा दिनेशाश्च कला काष्ठाः क्षणा लवाः
५९ ॥ सर्वे त्वामभिषिञ्चन्तु कालस्यावयवाः शुभाः । वैमानिकाः सुर-
गा मनवः सागरैः सह ॥ ६० ॥ सप्तर्षयः सदाराश्च ध्रुवस्थानानि यानि च ।

ितने अधिक होंगे उतनाही गुण अधिक बढेगा. इस विषयमें मुनिका कहा हुआ
ह मन्त्र है;—"आज्य (घी) ही परम तेज है, आज्यही श्रेष्ठ और पापका नाश
रनेवाला है, आज्यही देवताओंका आहार और समस्त लोक आज्यमेंही प्रतिष्ठित
रहे हैं. हे राजन् ! भौम, आन्तरिक्ष और दिव्य जो समस्त पाप आपको
उपस्थित हुए हैं, वह समस्त आज्यको छूकर नाशको प्राप्त होवें हैं" ॥५१॥५२॥५३॥
फिर पुरोहित राजाके शरीरसे कम्बलको उतारकर फल और पुष्पयुक्त पुष्पस्नानके
जलमें राजाका अभिषेक करे. जिस विषयका मंत्र यह है—" ब्रह्मा, विष्णु, शम्भु,
मरुद्गण, साध्य और जो देवता सिद्ध व पुरातन हैं वह तुम्हारा अभिषेक करें.
आदित्य, वसु, रुद्र, वैद्योंमें श्रेष्ठ दोनों अश्विनीकुमार, देवताओंकी माता अदिति,
स्वाहा, सिद्धि, सरस्वती, कीर्ति, लक्ष्मी, धृति, श्री, सिनीवाली, कुहू, दनु, सुरसा,
विनता, कद्रु, देवताओंकी माताएं और दिव्य अप्सराएं यह सब तुम्हारा अभिषेक
करें. नक्षत्र, मुहूर्त, पक्ष, दिवा, रात्रि, सन्ध्या, संवत्सर, श्रेष्ठ दिन, कला, काष्ठा,
क्षण और लव आदि कालके शुभ अंग तुम्हारा अभिषेक करें. विमानमें बैठनेवाले
देवतागण, सागर, मनु, स्त्रियोंके साथ सातों ऋषि, समस्त ध्रुवस्थान, मरीचि,
अत्रि, पुलह, पुलस्त्य, क्रतु, अंगिरा, भृगु, सनत्कुमार, सनक, सनन्दन, सनातन,

शास्त्रज्ञः शान्तिमादिशेज्ज्ञः । शस्तनिमित्तः पट्टो नृपराष्ट्रविवृद्धये भवति ॥ ८ ॥
इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्सं० पट्टलक्षणं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

अथ पंचाशत्तमोऽध्यायः ।

खड्गलक्षण ।

अंगुलशतार्धमुत्तम ऊनः स्यात्पञ्चविंशतिं खड्गः । अंगुलमानाज्ज्ञेयो व्रणो
ऽशुभो विषमपर्वस्थः ॥ १ ॥ श्रीवृक्षवर्द्धमानातपत्रशिवलिङ्गकुण्डलाब्जानाम् ।
सदृशा व्रणाः प्रशस्ता ध्वजायुधस्वस्तिकानां च ॥ २ ॥ कृकलासकाककङ्क-
क्रव्यादकबन्धवृश्चिकाकृतयः । खड्गे व्रणा न शुभदा वंशानुगाः प्रभूताश्च ॥ ३ ॥
स्फुटितो ह्रस्वः कुण्ठो वंशच्छिन्नो न दृङ्मनोऽनुगतः । अस्वन इति चानिष्टः
प्रोक्तविपर्यस्त इष्टफलः ॥ ४ ॥ क्वणितं मरणायोक्तं पराजयाय प्रवर्त्तनं
कोशात् । स्वयमुद्गीर्णे युद्धं ज्वलिते विजयो भवति खड्गे ॥ ५ ॥ नाकारणं

जाननेवाले शान्तिकी आज्ञा दें, जिस मुकुटमें किसी प्रकारके अशुभ चिह्न नहीं होते, तिसके धारण करनेसे राजाका राज्य बढता है ॥ ८ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य–पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायामेकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

पचास अंगुलके प्रमाणका खड्ग उत्तम है, पचीस अंगुलके परिमाणका खड्ग अधम है. अंगुलिके परिमाणसे इसमें व्रणको जानना चाहिये, यदि विषम अंगुलके परिमाणमें अर्थात् ३ । ५ । ७ । ९ आदिमें व्रण हो तो अशुभ है ॥ १ ॥ श्रीवृक्ष, वर्द्धमान, आतपत्र, शिवलिङ्ग, कुंडल, कमल, ध्वज, आयुध और स्वस्तिककी समान दाग शुभदायी है ॥ २ ॥ गिरगिट, काक, गिद्ध, क्रव्याद, कबन्ध वा बिच्छूके आकारका अथवा बांसकी समान बहुतसे दागवाला खड्ग शुभदायी नहीं होता ॥ ३ ॥ फूटा हुआ, छोटा, खुटला, वंशछिन्न, दृष्टि और मनको न अच्छा लगनेवाला और शब्दरहित खड्ग अनिष्टकारी है. इससे विपरीत हो तो इष्ट फलका देनेवाला है ॥ ४ ॥ अचानक खड्गमेंसे शब्द हो तो मरणका कारण है, म्यानसे खटखटानेपर पराजय, स्वयं म्यानसे निकल पडे तो युद्ध और प्रज्वलमान हो तो विजय होती है ॥ ५॥ राजाको चाहिये कि वृथा खड्गको न म्यानसे

विनृपाग्र विघट्टयेच्च पश्येन्न तत्र वदनं न वदेच्च मूल्यम्। देशं न चास्यै कथयेत् प्रतिमानयेच्च नैव स्पृशेन्नृपतिरप्रयतोऽसियष्टिम् ॥ ६ ॥ गोजिह्वासंस्थानो नीलोत्पलवंशपत्रसदृशश्च। करवीरपत्रशूलाग्रमण्डलाग्राः प्रशस्ताः स्युः ॥ ७ ॥ निष्पन्नो न च्छेद्यो निकषेः कार्यः प्रमाणयुक्तः सः। मूले म्रियते स्वामी जननी तस्याग्रतश्छिन्ने ॥ ८ ॥ यस्मिन् त्सरुप्रदेशे व्रणो भवेत्तद्वदेव खड्गस्य। वनितानामिव तिलको गुह्ये वाच्यो मुखे दृष्ट्वा ॥ ९ ॥ अथवा स्पृशति यदङ्गं प्रष्टा निर्स्त्रिंशभृच्चदवधार्य। कोशस्थस्यादेश्यो व्रणोऽस्ति शास्त्रं विदित्वेदम् ॥ १० ॥ शिरसि स्पृष्टे प्रथमेऽङ्गुले द्वितीये ललाटसंस्पर्शे। भ्रूमध्ये च तृतीये नेत्रे स्पृष्टे चतुर्थे च ॥ ११ ॥ नासोष्ठकपोलहनुश्रवणग्रीवांसकेषु पञ्चाद्याः। उरसि द्वादशसंस्थस्त्रयोदशे कक्षयोर्ज्ञेयः ॥ १२ ॥ स्तनहृदयोदरकुक्षी-

---

निकाले या न हिलावे डुलावे, तिसमें मुख न देखे, तिसका मूल्य न करे, इसकी उत्पत्तिका देश न बतावे और अपवित्र होकर उसको नहीं छुए ॥ ६ ॥ गायकी जीभके समान आकारवाला, नीले कमल और वंशके पत्रकी समान, कनेरके पत्तेकी समान, शूलाग्र और मंडलाग्र यही सब खड्ग अच्छे हैं ॥ ७ ॥ ऊपर कहे हुए प्रमाणवाले खड्गोंको कसौटीसे परीक्षा करना या काटना उचित नहीं है. खड्गकी नोक टूट जाय तो खड्गके स्वामीकी और मूठ टूट जाय तौ खड्गके मालिककी माता मरे ॥ ८ ॥ जिस प्रकार स्त्रियोंके मुखपर तिल देखकर उनके गुप्तस्थानमेंभी तिल कहे जा सकते हैं, वैसेही खड्गकी मूठमें हुए दागोंको देखकर, खड्गमें व्रण कहे जा सकते हैं ॥ ९ ॥ खड्गधारी पूछनेवाला (इस खड्गके किस स्थानमें व्रण है बताओ ऐसा पूछकर) जिस अंगको छुए दैवज्ञ तिसका निश्चय करके इस शस्त्रज्ञानके शास्त्रके अनुसार म्यानमें पडे हुए खड्गमें कहां २ व्रण हैं सो बता सकेगा ॥ १० ॥ जो पूछनेके समय प्रश्नका करनेवाला मस्तकको छुए तो कहना चाहिये कि खड्गके प्रथम अंगुलमें व्रण है, ललाट छुए तो दूसरे अंगुलमें, भौंवोंके बीचमें छुए तो तीसरे अंगुलमें, नेत्रोंको छुए तो चौथे अंगुलमें व्रणका होना कहना चाहिये ॥ ११ ॥ जो प्रश्न करनेवाला नासिका, ओठ, गाल, ठोडी, कान, गरदन या अंसकन्ध स्थानोंको छुए तो क्रमसे पांचवें, छठे, सातवें, आठवें, नववें, दशवें और ग्यारहवें अंगुलमें व्रणका होना बताना चाहिये. उरके छुनेसे बारह अंगुलमें और दोनों कोखोंके छुनेसे तेरह अंगुलके स्थानमें व्रणका होना बतावे ॥ १२ ॥ स्तन, हृदय, उदर, कोख या नाभीका स्पर्श करनेसे क्रमानुसार

नाभौ तु चतुर्दशादयो ज्ञेयाः । नाभिमूले कट्यां गुह्ये चैकोनविंशतितः ॥ १३॥ ऊर्वोर्द्वाविंशे स्यादूर्वोर्मध्ये व्रणस्त्रयोविंशे । जानुनि च चतुर्विंशे जङ्घायां पञ्चविंशे च ॥ १४॥ जङ्घामध्ये गुल्फे पार्ष्ण्यां पादे तदंगुलीष्वपि च । षड्विंशतितस्त्रिंशदिति मतेन गर्गस्य ॥ १५॥ पुत्रमरणं धनाप्तिर्धनहानिः सम्पदश्च बन्धश्च । एकाद्यंगुलसंस्थैर्व्रणैः फलं निर्दिशेत् क्रमशः ॥ १६॥ सुतलाभः कलहो हस्तिलब्धयः पुत्रमरणधनलाभौ । क्रमशो विनाशवनिताप्तिचित्तदुःखानि षट्प्रभृति ॥ १७ ॥ लब्धिर्हानिः स्त्रीलब्धयो वधो वृद्धिमरणपरितोषाः । ज्ञेयाश्चतुर्दशाद्ये धनहानिश्चैकविंशे स्यात् ॥ १८ ॥ वित्ताप्तिरनिर्वाणं धनागमो मृत्युरन्वे ऽस्वत्वम् । ऐश्वर्यमृत्युराज्यानि च क्रमात्त्रिंशदिति यावत् ॥ १९ ॥ परतो न विशेषफलं विषमसमस्थास्तु पापशुभफलदाः । केचिदफलाः प्राहुः

चौदहसे लेकर अठारह अंगुलतकके स्थानमें व्रण बतावे. नाभिकी जडमें, कमर और गुह्यस्थानके स्पर्श करनेसे क्रमानुसार उन्नीस वीस और इक्कीस अंगुलमें व्रण होता है ॥ १३ ॥ दोनों ऊरुके स्पर्श करनेसे २२ वें अंगुलमें और दोनों ऊरुके मध्य स्थान स्पर्श करनेसे २३ वें अंगुलमें व्रण होता है, जानुके स्पर्शसे २४ और जंघाके स्पर्शसे २५ अंगुलमें व्रण होता है ॥ १४ ॥ फिर यदि जो पूछनेवाला दो जांघोंके मध्यमें, टंकना, एडी पांव और पांवोंकी अंगुली इनमेंसे किसी अंगको स्पर्श करे तो क्रमानुसार छब्बीस अंगुलसे लेकर तीस अंगुलतकके स्थानमें व्रणका होना निरूपण करे यह गर्गाचार्यका मत कहा गया ॥ १५ ॥ जो खड्गका व्रण एक अंगुलसे लेकर पांच अंगुलतक हो तो क्रमानुसार यह फल होता है;-पुत्रमरण, धनलाभ, धनहानि, सम्पत्ति और बन्धन ॥ १६ ॥ पुत्रलाभ, क्लेश, हस्तिलाभ, पुत्रमरण, धनलाभ, विनाश, स्त्रीप्राप्ति और चित्तका दुःख यह क्रमानुसार छठादि अंगुलके व्रणका फल है ॥ १७ ॥ लाभ, हानि, स्त्रीलाभ, वध, वृद्धि, मरण और संतोष यह फल क्रमानुसार चौदहसे आदि लेकर २० अंगुलमें व्रण हो तो उसके फल जानने चाहिये. २१ अंगुलमें व्रण होनेसे धनकी हानि होती है ॥ १८ ॥ धनकी प्राप्ति, अनिर्वाण, धनागम, मृत्यु, सम्पत्ति, निर्धनता, ऐश्वर्य, मृत्यु और राज्य यह फल क्रमशः वीस अंगुलसे लेकर तीस अंगुलितक नौ अंगुलवाले व्रणका फल है ॥ १९ ॥ इसके पीछे और कोई फल नहीं कहा है तौभी विषम अंगुलमें व्रणका होना अशुभ फल और सममें होनेसे शुभ फल देता है और कोई कहते हैं कि तीस अंगुलके पश्चात्

स्त्रिंशत्तरतोऽप्रमिति यावत् ॥ २० ॥ करवीरोत्पलगजमदघृतकुंकुमकुन्दचम्पकसगन्धः । शुभदोऽनिष्टो गोमूत्रपङ्कमेदः सदृशगन्धः ॥२१॥ कूर्मवसासृक्क्षारोपमश्च भयदुःखदो भवति गन्धः । वैदूर्यकनकविद्युत्प्रभो जयारोग्यवृद्धिकरः ॥ २२ ॥ इदमौशनसं च शस्त्रपानं रुधिरेण श्रियमिच्छतः प्रदीप्ताम् । हविषा गुणवत्सुताभिलिप्सोः सलिलेनाक्षयमिच्छतश्च वित्तम् ॥ २३ ॥ वडवोष्ट्रकरेणुदुग्धपानं यदि पापेन समीहतेऽर्थसिद्धिम् । झषपित्तमृगाश्ववस्तदुग्धैः करिहस्तच्छिदये सतालगर्भैः ॥ २४ ॥ आर्कपयो हुडुविषाणमषीसमेतं पारावताखुशकृता च युतं प्रलेपः । शस्त्रस्य तैलमथितस्य ततोऽस्य पानं पश्चाच्छितस्य न शिलासु भवेद्विघातः ॥ २५ ॥ क्षारे कदल्या मथितेन युक्ते दिनोषिते पायितमायसं यत् । सम्यक् छितं चाश्मनि नैति भङ्गं न चान्यलोहेष्वपि तस्य कौण्ठ्यम् ॥ २६ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्सं० खड्गलक्षणं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५०॥

शेषतक किसी स्थानमें व्रण हो तो किसी प्रकारका विशेष फल नहीं होता ॥ २० ॥ कनेर, उत्पल, हाथीका मद, घी, कुंकुम, कुन्द या चम्पाकी समान गन्धवाला खड्ग हो तो शुभ फलदायी होता है, परन्तु गोमूत्र, पंक या मेदकी समान गन्ध आती हो तो अनिष्टकारी होता है ॥ २१ ॥ कूर्म, वसा, रक्त या क्षारकी समान गन्ध आनेसे भय और दुःखका देनेवाला होता है, जो खड्गमें वैदूर्य, सुवर्ण और विजलीकी समान चमक हो तो जय और आरोग्यका बढानेवाला होता है ॥ २२ ॥ जिनको लक्ष्मीके प्राप्त करनेकी इच्छा है, उनको अपने शस्त्रोंपर रुधिरसे पान देना चाहिये, गुणवान् पुत्रके प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवालेके शस्त्रपर घृतसे पान देवे और अक्षय वित्तको चाहनेवालेके खड्गपर जलकी पान होनी चाहिये ऐसा शुक्राचार्यके बनाये शास्त्रका मत है ॥ २३ ॥ जो घोडी, ऊंटनी और हथनीके दूधसे पान दी जाय तो पापकार्यसे भलीभांति अर्थकी सिद्धि होती है. मत्स्यपित्त, मृग, अश्व और छाग दुग्धके साथ तालमेथीके रसमें पान देनेसे हाथीकी शुंडभी काट डाली जा सकती है ॥ २४ ॥ पहिले शस्त्रपर तेल मले फिर आग वृक्षका गोंद, मेषके सींगकी भस्म और कबूतर व चूहेकी बीट मिलायकर शस्त्रके ऊपर लेप करे फिर तिसको तेज करके पत्थरकेभी ऊपर मारे तोभी उसकी धार नहीं टूटती है ॥ २५ ॥ कदली वृक्षका (मूलका) क्षार और मट्ठा मिलायकर एक दिन

अथैकपंचाशत्तमोऽध्यायः ।

अंगविद्या.

देवज्ञेन शुभाशुभं दिग्उदितस्थानाहृतानीक्षता वाच्यं
चालोक्य कालं धिया । सर्वज्ञो हि चराचरात्मकतयासौ सर्वस्था
स्याहृतीभिः शुभाशुभफलं सन्दर्शयत्यर्थिनाम् ॥ १ ॥ स्थानं
पूरिफलभृत्सुस्निग्धकृत्तिच्छदासत्पक्षिच्युतशस्तसंज्ञिततरुच्छायोपगू
र्वर्षिद्विजसाधुसिद्धानिलयं सत्पुष्पसस्योक्षितं

रख छोडे फिर लोहेका बना हुआ खड्ग उसको पिये फिर उस खड्गसे
पत्थरपरभी मारे तो वह नहीं टूटेगा और लोहेपरभी मारनेसे वह
नहीं होगा ॥ २६ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्य्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीय
दावादवास्तव्य–पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां
पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

शास्त्रोंमें कहा हुआ दिशाओंका ज्ञान लाये हुए पदार्थोंके देखनेसे
लोग प्रश्न करनेवालेका अंग, अपना अंग और दूसरेके अंगोंकी चेष्टा
बुद्धिसे शुभ व अशुभ फलको कह सकते हैं. स्थावर जङ्गमादि पदार्थोंका
भलीभांतिसे ज्ञान है, इससे दैवज्ञ सर्वज्ञानी, सब कुछ देखनेवाला,
अर्थात् नारायणजीकी समान है. क्योंकि इसी चेष्टा और
करनेसे अर्थ चाहनेवाले पुरुषोंके शुभाशुभ फल दिखाते हैं ॥
जो स्थान फूलरूपी सुन्दर मुसुकानसे युक्त है, बहुतसे फलोंसे भरा हुआ,
डालवाले, बुरे पक्षियोंसे शून्य, श्रेष्ठ नामको प्राप्त हुए वृक्षोंसे युक्त है,
जो देवता, ऋषि, द्विज और सिद्धोंके रहनेकी वासभूमि है; जहांपर श्रेष्ठ
और धान्य व्याप्त हैं, स्वादिष्ट जलकी निर्मलता करके उत्पन्न हुए
सुन्दर नवीन तिनकोंके लगे रहनेसे हरे वर्णवाला स्थानही प्रश्न करनेके

---

१ अङ्गविद्याविलक्षणं नेति अध्यायो न सर्वत्रादिसम्मतो । ... "अतः ... पठन्ति । आचार्येण प्रागेवोक्तं 'वास्तुविद्याङ्गविद्यां' ... " इति, ... "अतः परमपि केचित् ... " इति टीकाकृता भट्टोत्पलेनोक्तम् । तेनाध्यायद्वय ...

उद्दलम् ॥ २ ॥ छिन्नभिन्नकृमिखातकण्टकिप्लुष्टरूक्षकुटिलैर्न सद्
। क्रूरपक्षियुतनिन्द्यनामभिः शुष्कशीर्णबहुपर्णमर्मभिः ॥ ३ ॥ श्मशा-
ायतनं चतुष्पथं तथामनोज्ञं विषमं सदोषरम् वस्कराङ्गारकपा-
ाभिश्चितं तुषैः शुष्कतृणैर्न शोभनम् ॥ ४ ॥ प्रव्रजितनग्नापितरि-
नसूनिकैस्तथा श्वपचैः । कितवयतिपीडितैर्युतमायुधमाध्वीकविक्रयैर्न
॥ ५ ॥ प्रागुत्तरेशाश्च दिशः प्रशस्ताः प्रष्टुर्न वाय्वम्बुयमाग्निरक्षः ।
कालेऽस्ति शुभं न रात्रौ सन्ध्याद्वये प्रश्नकृतोऽपराह्णे ॥ ६ ॥ यात्रा-
ने हि शुभाशुभं यद् प्रोक्तं निमित्तं तदिहापि वाच्यम् । दृष्ट्वा पुरो
ानताहृतं वा प्रष्टुः स्थितं पाणितलेऽथ वस्त्रे ॥ ७ ॥ अथाङ्गान्यूर्वोष्ठस्तनवृ-
ादं च दशना भुजौ हस्तौ गण्डौ कचगलनखांगुष्ठमपि यद् । सशंखं
ांसश्रवणगुदसन्धीति पुरुषे स्त्रियां भ्रूनासास्फिग्वलिकटिसुलेखांगुलिचयम्
: ॥ जिह्वा ग्रीवा पिण्डिके पार्ष्णियुग्मं जंघे नाभि कर्णपाली कृकाटी ।

ी है ॥ २ ॥ जिस स्थानमें छिन्नभिन्न कीडोंके खाये, कांटेदार, जले हुए
। और कुटिल वृक्ष लगे हों, जो स्थान क्रूर पक्षियोंसे घिरा हुआ हो, बुरे नाम
, दुबले, बहुत सारे पत्तेही हैं मानो जिनका मर्म ऐसे वृक्ष लगे हों, वह स्थान
शुभ है ॥ ३ ॥ जो स्थान चौराहा मसानकी समान सूने गृहसे युक्त, मनको न
नेवाला, टेढा, सदा ऊपर रहनेवाला, जहाँ किसीका वास न हो, कोयला आद-
की खोपडी और सूखे तिनकोंसे व्याप्त है सो शुभदायी नहीं होता है ॥ ४ ॥
साई, नागा, नाई, शत्रु, बन्धन, कसाई, चाण्डाल, शठ, यति और पीडित
गोंसे जो स्थान युक्त है और आयुध और मदकी बिक्रीका जो स्थान है सो
भकारी नहीं है ॥ ५ ॥ पूर्व, उत्तर, ईशानकोण, प्रश्न करनेवालेके लिये श्रेष्ठ हैं,
न्तु वायु, पश्चिम, दक्षिण और नैर्ऋत दिशा अच्छी नहीं है. रात्रिकाल, दोनों
न्ध्या और अपराह्णमें प्रश्न करना शुभ नहीं होता ॥ ६ ॥ यात्राकी विधिमें जो
भाशुभ निमित्त कहे गये हैं, पूछनेवालेके सामने लाये हुए या उनके हाथ वस्त्रके
द देखकर उनका शुभाशुभ कहना चाहिये ॥ ७ ॥ ऊरु, होठ, स्तन, अंडकोश,
व, दांत, भुजा, हाथ, कपोल, केश, गला, नख, अंगूठा, शंख, कन्धा, कान,
दा जोडके स्थान यह पुरुषसंज्ञावाची शब्द हैं. भौं, नासिका, स्फिक (कमरका
स पिंड), कमर और सुन्दर रेखावाली अंगुलियें स्त्रीनामवाची हैं और जीभ,

वक्षः पृष्ठं जत्रुजान्वस्थिपार्श्वं हृत्ताल्वक्षी मेहनोरस्त्रिकं च ॥ ९ ॥ [illegible]
च शिरो ललाटमास्याद्यसंज्ञैरपरैश्चिरेण । सिद्धिर्भवेन्नातु नपुंसकैर्वा [illegible]
भग्नक्षैश्च पूर्वैः ॥ १० ॥ स्पष्टे वा चालिते वापि पादांगुष्ठेऽक्षिरोगं
अंगुल्यां दुहितुः शोकं शिरोघाते नृपाद्भयम् ॥ ११ ॥ विप्रयोगमुदरे [illegible]
कर्णदाहृतिरनर्थदा भवेत् । स्यात्प्रियागतिरभिगृह्य कर्पटं पृच्छतश्चरणा[illegible]
॥ १२ ॥ पादांगुष्ठेन विलिखेद्भूमिं क्षेत्रोत्थचिन्तया । हस्तेन पादौ कण्डूयं[illegible]
दासीनया च सा ॥ १३ ॥ तालभूर्जपटदर्शनेंऽशुकं चिन्तयेत्कनुजा[illegible]
स्नगम् । व्याधिराभयाति रज्जुजालकं वल्कलं च समवेक्ष्य बन्धनम् ॥ ।
पिप्पलीमरिचशुण्ठिवारिदे रोध्रकुष्ठवसनाम्बुजीरकैः । गन्धमांसिव[illegible]
वदेत् पृच्छतस्तगरकेण चिन्तनम् ॥ १५ ॥ स्त्रीपुरुषदोषपीडितसंप्रयु[illegible]

गर्दन, शिश्न (लिङ्गेन्द्रिय), पिंडियें, जांघ, नाभि, कर्णपाली, कुहनी ([illegible]
[illegible], स्तन, पीठ, हँसली, जानु, अस्थिपार्श्व, हृदय, तालु, नेत्र, लिङ्ग, [illegible]
त्रिक ([illegible]) रीढ़के नीचेकी तीन हड्डियां, मस्तक और ललाट [illegible]
[illegible] हैं, आस्यादि (मुखादि) छुए जांय तो [illegible] सिद्धि [illegible]
[illegible] अंग [illegible], क्षत, टूटे हुए या [illegible] हों तो इनके छुए [illegible]
[illegible] अंगोंके छुए जानेसे कदापि सिद्धि नहीं होती ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ [illegible]
[illegible] या [illegible] जाय तो प्रश्न करनेवालेको नेत्ररोग होवे, [illegible]
[illegible] तो [illegible] शोक और शिरपर आघात होनेसे नृपभय होता है ॥ [illegible]
[illegible] तो प्रियवियोग होता है, [illegible]
[illegible] तो अनर्थ होता है; परन्तु यदि [illegible]
[illegible] ([illegible]) तो उसको प्यारेकी प्राप्ति होवे ॥ [illegible]
[illegible] प्रश्न करनेवाला पांवके अंगूठेसे पृथ्वीपर [illegible]
[illegible] तो उसको [illegible] चिन्ता होगी ॥ १२ ॥ [illegible]
[illegible]
[illegible] होता है, [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

न्यतनयानाम् । द्विचतुष्पदशितीनां विनाशतः कीर्तितैर्दृष्टैः ॥१६॥ न्यग्रोधमधु-
कतिन्दुकजम्बूप्लक्षाम्रबदरिजातिफलैः । धनकनकपुरुषलोहांशुकरूप्योदुम्बरा-
णैरपि करगैः ॥ १७ ॥ धान्यपरिपूर्णपात्रं कुम्भः पूर्णः कुटुम्बवृद्धिकरो ।
गजगोशुनां पुरीषं धनयुवतिसुहृद्विनाशकरम् ॥ १८ ॥ पशुहस्तिमहिषपङ्कज-
रजतव्याघ्रैर्लभेत सन्दृष्टैः । अविधननिवसनमलयजकौशेयाभरणसंघातम् ॥१९॥
पृच्छा वृद्धश्रावकसुपरिवाड्दर्शने नृभिर्विहिता । मित्रसुतार्थभवा गणिकानृप-
सुतिकार्थकृता ॥ २० ॥ शाक्योपाध्यायार्हतनिर्ग्रन्थनिमित्तनिगमकैवर्तैः । चार-
चमूपतिवणिजां दासीयोद्धापणस्थवध्यानाम् ॥ २१ ॥ तापसे शौण्डिके दृष्टे
प्रोषितः पशुपालनम् । हृद्गतं पृच्छकस्य स्यादुञ्छवृत्तौ विपन्नता ॥ २२ ॥
इच्छामि प्रष्टुं भण पश्यत्वार्यः समादिशेत्युक्ते । संयोगकुटुम्बोत्था लाभैश्वर्योद्भता

द्विपायोंका नाश, चौपायोंका नाश और पृथ्वीके नाशकी चिन्ता कहनी चाहिये ॥ १५ ॥ १६ ॥ जो प्रश्न करनेके समय प्रश्नकर्ताके हाथमें वड, महुआ, तेन्दू, जामन, पिलखन, आम, वेर और जायफल हो तो क्रमानुसार धन, सुवर्ण, पुरुष, लोह, वस्त्र, चांदी और तांबेकी प्राप्ति होती है ॥ १७ ॥ धान्यपरिपूर्ण पात्र और भरे हुए घडेके देखनेसे कुटुम्ब बढता है. हाथीकी लीद, गायका गोवर और कुत्तोंकी विष्ठा देखनेसे धन, युवति और सुहृदोंका विनाशकारी प्रश्न जानना चाहिये ॥ १८ ॥ जिस कालमें पशु, हाथी, महिष, पंकज, चांदी और व्याघ्रके दिखाइ देनसे क्रमानुसार मेष, धन, मेडके ऊनका वना हुआ कंवल, चन्दन, रेशमीन वस्त्र और गहनोंके लाभकी चिन्ता होती है ॥ १९ ॥ वृद्धश्रावक (जैनसंन्यासी) का दर्शन होनेसे मनुष्योंकी मित्र, पुत्र और धनकी चिन्ता, संन्यासीका दर्शन पानेसे वेश्या, राजा, वचा और धनकी चिन्ता कहनी चाहिये ॥ २० ॥ शाक्य, उपाध्याय, अर्हत, निर्ग्रन्थ , निमित्त, निगम और धीवरके दिखाई देनेसे क्रमानुसार चोर, सेनापति, वणिक, दासी, योद्धा, दुकानदारीके द्रव्य और वधसम्बन्धी चिन्ता जाननी चाहिये ॥ २१ ॥ तापस या कलालके दिखाई देनेसे प्रश्नकर्ताकी परदेशमें गये हुए पुरुषकी और पशुपालनकी चिन्ता होती है और उंछ (भूमिपर गिरे हुए एक २ दानेके इकट्ठे करनेका नाम उंछ है) वृत्तिसे जीवन धारण करनेवाले मुनि आदि दिखाई दें तो विपत्ति पडनेकी चिन्ता होती है॥२२॥ "मैं पूछनेकी इच्छा करता हूं" "कहिये" "दर्शन कीजिये " और " आप भली भांतिसे आज्ञा दीजिये " यह वाक्य कहे जानेपर संयोग, कुटुम्बसे उत्पन्न

चिन्ता ॥ २३ ॥ निर्दिशेति गदिते जयाध्वगा [illegible]
आशु सर्वजनमध्यगं त्वया दृश्यतामिति बन्धुचौरजा ॥ २४ ॥
स्वजन उदितो बाह्यजे बाह्य एवं पादांगुष्ठांगुलिकलना [illegible]
स्याद् । जंघे प्रेष्यो भवति भगिनी नाभितो हृत्स्वभार्या [illegible]
पृष्ठतस्पर्शने पुत्रकन्ये ॥ २५ ॥ मातरं जठरे मूर्ध्नि गुरुं [illegible]
बाहू भ्राताथ तत्पत्नी स्पृष्ट्वैवं चौरमादिशेत् ॥ २६ ॥ [illegible]
बाह्यगस्पर्शनं यदि करोति पृच्छकः । श्लेष्ममूत्रशकृतस्त्यजनभः [illegible]
लस्थवस्तु चेत् ॥ २७ ॥ भृशमवनामिताङ्गपरिमोटनतोऽथवा [illegible]
कभाण्डमवलोक्य च चौरजनम् । [illegible]
यानिष्टवतो लभते न हृतम् ॥ २८ ॥ निगदितमिदं यत्तत्सर्वं गुरो-
रिकैः सह भूतिकरं पीडार्तानां समं रुदितश्रुतेः । अवयवमपि [illegible]

हुआ लाभ और धनकी चिन्ता होती है ॥ २३ ॥ " भलीभांतिसे [illegible] मनोरथ कहिये " और " बताइये " यह कहे जानेसे जय और [illegible] होती है. और " आप शीघ्रही देखिये " यह बात सब आदमियोंके [illegible] बैठे हुए ज्योतिषीसे कही जाय तो बन्धु और चोरकी चिन्ता होती है ॥ [illegible] भीतरका अंगस्पर्श किया जाय तो स्वजनकी चिन्ता कही जाती है, बाहरके [illegible] स्पर्श करे तो बाहरके मनुष्यकी चिन्ता होती है. पांवका अंगूठा या हाथके [illegible] छिये हुए जाय तो दासदासीजनकी चिन्ता होती है, जंघाके हाथों [illegible] हृदय, नाभिके स्पर्शसे बहन, हृदयके स्पर्शसे भार्या, हाथके अंगूठे या [illegible] स्पर्शसे पुत्र व कन्याकी चिन्ता होती है। प्रश्नकर्ता पेट छुए तो माता, [illegible] तो गुरु, दादा या नाना हाथ छुए तो भ्राता और [illegible] [illegible] ॥ २५ ॥ २६ ॥ जो पूछनेवाला भीतरके अंग [illegible] [illegible] श्लेष्म, मूत्र और विष्ठा त्याग करे [illegible] [illegible] [illegible]

...रेदातिबहु तदा भुक्त्वान्नं संस्थितः सुहितो वदेत् ॥ २९ ॥ लला
...च्चूकदर्शनाच्छालिजोदनम् । उरःस्पर्शात् षष्टिकान्नं ग्रीवास्पर्शे
...नम् ॥ ३० ॥ कुक्षिकुचजठरजानुस्पर्शे माषाः पयास्तिलयवाग्वः
...दयतश्चौष्ठौ लिहतो मधुरं रसं ज्ञेयम् ॥ ३१ ॥ विसृक्के स्फोटयेज्जिह्वा-
... वक्त्रं विकूणयेत् । कटुतिक्तकषायोष्णैर्हिक्केत् ष्ठीवेच सैन्धवे ॥ ३२ ॥
...त्यागे शुष्कतिक्तं तदल्पं श्रुत्वा क्रव्यादं प्रेक्ष्य वा मांसमिश्रम् । भ्रूगण्डौ-
...ने शाकुनं तद् भुक्तं तेनेत्युक्तमेतन्निमित्तम् ॥ ३३ ॥ मूर्द्धगलकेशहनुशं-
...जङ्घं बस्तिं च स्पृष्ट्वा । गजमहिषमेषशूकरगोशशमृगमांसयुग्भुक्तम्
...४ ॥ दृष्टे श्रुतेऽप्यशकुने गोधामत्स्यामिषं वदेद्भुक्तम् । गर्भिण्या गर्भस्य च
...नमेवं प्रकल्पयेत्प्रश्ने ॥ ३५ ॥ पुंस्त्रीनपुंसकाख्ये दृष्टेऽनुमिते पुरःस्थिते

...? छींकका शब्द हो तो रोगियोंका मरण होता है. जो पूछनेवाला भीतरके
...गको छूकर श्वास लेवे तब भोजन बहुत करनेसे प्रश्न करनेवाला तृप्त हो रहा
...बातको दैवज्ञ प्रकाश करे ॥ २९ ॥ पूछनेवाला माथेको स्पर्श करे और
...च्यका दर्शन करे तो शाँठीका चावल इसने खाया है ऐसा कहे, छाती स्पर्श
...रनेसे शाँठी और गर्दन स्पर्श करनेसे जौका अन्न खाया है ॥ ३० ॥ कोख, स्तन,
...दर और जानुको प्रश्न करनेवाला छुए तो क्रमानुसार उरद, दूध, तिल व दालका
...ोजन करना बतावे. दोनों ओठोंके चाटनेसे मधुर रसको जाने ॥ ३१ ॥ जो
...छनेवाला विष्टम्भी हो या जीभसे ओठोंके स्थानको चाटे अथवा वदनको सकोड़े
...ो उसने खट्टा खाया है और कटु, तिक्त, कषाय व गरम द्रव्य खानेसे हिचकी
...त्पन्न होती है, सेंधा नोन खानेसे थूकता है ॥ ३२ ॥ जो प्रश्न करनेके समय
...कफको त्याग करे, थोडा, सूखा, तीखा पदार्थ और मांस खानेवाले पक्षीको देखे
...ा उसका नाम सुने तो उसने मांसका मिला हुआ अन्न भक्षण किया है. भा
...ल और ओठके स्पर्श करनेसे तिस करके (नीचे लिखे अनुसार) शाकुन
...तीका मांस खाया गया है यह कहे ॥ ३३ ॥ मस्तक, गला, केश, ठोडी, कनपटी,
...घ और बस्तिके स्पर्श करनेसे क्रमानुसार गज, महिष, मेष, शूकर, गाय खरगोश,
...ा इनका मांस प्रश्नकर्त्ताने भक्षण किया है ॥ ३४ ॥ दुष्टशकुन दर्शन
...र श्रवण करनेसे गोह और मछलीके मांसका खाना कहा जायगा.
...ा करनेपर गर्भिणीका गर्भनिपातभी इससे प्रगट हो जाता है ॥ ३५ ॥
...प्रश्नसे पुरुष, स्त्री या नपुंसक अंग या कुछ दीखे अनुमानसे ज्ञात

स्पृष्टे । तज्जन्म भवति पानान्नपुष्पफलदर्शने शुभम् ॥ ३६ ॥ अंगुष्ठेन कुक्षिं वांगुलिं वा स्पृष्ट्वा पृच्छेद्गर्भचिन्ता तदा स्यात् । मध्वाज्यार्येर्हेमरत्नप्रवालैरग्रस्थैर्वा मातृधात्र्यात्मजैश्च ॥ ३७ ॥ गर्भयुता जठरे करगे स्याद्दुष्-निमित्तवशात्तदुदासः । कर्षति तज्जठरं यदि पीठोत्पीडनतः करसे च करे ऽपि ॥ ३८ ॥ घ्राणाया दक्षिणे द्वारे स्पृष्टे मासोत्तरं वदेत् । वामे द्वौ कर्णसं वा द्विचतुर्थः श्रुतिस्तने ॥ ३९ ॥ वेणीमूले त्रीन् सुतान् कन्यके द्वे कर्णे पुत्रान् पञ्च हस्ते त्रयं च । अंगुष्ठान्ते पञ्चकं चानुपूर्व्या पादांगुष्ठे पार्ष्णियुग्मे ऽपि कन्याम् ॥ ४० ॥ सव्यासव्योरुसंस्पर्शे सूते कन्ये सुतद्वयम् । स्पृष्टे ललाटमध्यान्ते चतुस्त्रितनया भवेत् ॥ ४१ ॥ शिरोललाटभ्रूकर्णगण्डहनुरदगलम् । सव्यापसव्यस्कन्धश्च हस्तौ चिबुकनालकम् ॥ ४२ ॥ उरः कुचं

पुरस्थित जो स्पर्शित होवे उस गर्भसे उसका जन्म होता है. परन्तु पान, अन्न, पुष्प और फलका दर्शन करना शुभ है ॥ ३६ ॥ अंगूठेसे भी उदर या उंगली स्पर्श करके पूछे तो पूछनेवालेको गर्भकी चिन्ता होती है. शहद, घी आदि द्रव्य, सुवर्ण, रत्न, मूंगा अथवा माता, धाई और पुत्र यह आगे खडे हुए दिखाई दें तो भी गर्भसंबंधी चिन्ताको प्रगट करे ॥ ३७ ॥ पेटपर हाथ रक्खे हो अर्थात् स्पर्श किये हो तो गार्भिणी गर्भयुक्त होती है परन्तु दुष्ट निमित्त दिखाई देनेसे गर्भका नाश हो जाता है, जो पूछनेवाला दबाकर पेटको खैंचे या हाथसे हाथ मलकर प्रश्न करे तो भी गर्भका नाश हो जाता है ॥ ३८ ॥ गर्भग्रहण प्रश्नमें प्रश्न करनेवाला जो नासिकाके दाहिने द्वारको स्पर्श करे तो एक मासके पीछे गर्भ धारण होगा. बाम नासिका और बाये कानको स्पर्श करे तो चार मासके पीछे गर्भ धारण होगा ॥ ३९ ॥ चोटीकी जडको स्पर्श करनेसे तीन पुत्र और दो कन्या उत्पन्न होंगी. कान स्पर्श करनेसे पांच पुत्र और हाथ स्पर्श करनेसे तीन पुत्र जन्म लेंगे. जो प्रश्नकर्ता प्रश्न करनेके समय पांवका अंगूठा अथवा दोनों एडी स्पर्श करे तो एक कन्या उत्पन्न होती है. ऐसेही हाथकी उंगलीके स्पर्शसे पांच कन्या, अनामिकाके स्पर्शसे चार, मध्यमाके स्पर्शसे तीन और तर्जनीके स्पर्शसे दो कन्या होंगी ॥ ४० ॥ दाहिनी ऊरु स्पर्श करनेसे दो कन्या और बांया ऊरु स्पर्श करनेसे दो पुत्र जन्म लेते हैं. माथेका मध्यभाग स्पर्श करनेसे चार और माथेकी अंतभाग स्पर्श करनेसे तीन कन्या जन्म लेंगी ॥ ४१ ॥ माथा, ललाट, भौं, कान, गाल, ठोडी,

दक्षिणमप्यसव्यं हृत्पार्श्वमेवं जठरं कटिश्च । स्फिक्पायुसन्ध्यूरुयुगं च ज-
ङ्घेऽथ पादाविति कृत्तिकादौ ॥ ४३ ॥ इति निगदितमेतद्गात्रसंस्पर्शलक्ष्
मकृटमभिमताप्त्यै वीक्ष्य शास्त्राणि सम्यक् । विपुलमतिरुदारो वेत्ति यः सर्व
मेतन्नरपतिजनताभिः पूज्यतेऽसौ सदैव ॥ ४४ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायामङ्गविद्या नामै-
कपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

अथ द्विपंचाशत्तमोऽध्यायः ।

पिटकलक्षण.

सितरक्तपीतकृष्णा विप्रादीनां क्रमेण पिटका ये । ते क्रमशः प्रोक्तफला
वर्णानामग्रजादीनाम् ॥ १ ॥ सुस्निग्धव्यक्तशोभाः शिरसि धनचयं मूर्ध्नि सौभा-

दांत, गला, दाहिना कन्धा, बांया कन्धा, दोनों हाथ, ठोडी, नाल, उदर, कुच,
हृदयके बीचमें और दोनों पार्श्व, जठर, कमर, स्फिक (कमरका मांसपिण्ड),
गुदा, सन्धि, ऊरुयुगल, दो जानु दोनों छावा और पांव दोनोंमें क्रमानुसार कृत्ति-
कासे लेकर सब नक्षत्र विराजमान रहते हैं ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ सब शास्त्रोंको भली-
भांति विचार कर पंडितोंकी संतुष्टताके लिये यह गात्रस्पर्शलक्षण भलीभांतिसे कहा
गया, जो अत्यन्त बुद्धिमान् और उदार स्वभाववाला दैवज्ञ उसको भलीभाँतिसे
जान लेगा तो वह, राजा और प्रजासे सदा पूजित होगा ॥ ४४ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्त-
व्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायामेकपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५१॥

ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्रोंके क्रमानुसार सफेद, लाल, पीली और
काले रंगकी (फुनसी) चिकनी और रमणीय हों तो वह क्रमानुसार द्विजादि वर्णोंके
प्रति शुभमें फल प्रकाशित करती हैं, अन्यथा निष्फल हैं. अर्थात् सफेद रंगकी
फुनसी ब्राह्मणोंको फलदायी हैं, क्षत्रियोंके लिये लालरंगकी फुनसी फलदायी
हैं ॥ १ ॥ शिरमें फुनसी हो तो धन पास आता है. मस्तकपर होनेसे सौभाग्यको

जातिमात्रके ब्राह्मणादि यहांपर द्विजातिपदके वाच्य नहीं है. जन्मराशिके अनुसार
ब्राह्मणादि चार वर्ण निश्चय हुए हैं, उनकोही समझना चाहिये ।

...यमाराद् दौर्भाग्यं भ्रूयुगोत्थाः प्रियजनवदनाभा...
...स्थाश्च शोकं नयनपुटगता नेत्रयोरिष्टदृष्टिं प्रव्रज्यां शं...
गाश्चातिचिन्ताम् ॥ २ ॥ घ्राणागण्डे ...
चिबुकतलगा भूरि वित्तं ललाटे । हन्वोरेवं गलज...
तद्भूषणगणमपि ज्ञानमात्मस्वरूपम् ॥ ३ ॥ ...
गता अयोघातं घातं सुततनयलाभं शुचमपि । ...
भिक्षार्थमसकृद्विनाशं कक्षोत्था विदधति धनानां ...
शत्रुनिचयस्य विघातं पृष्ठबाहुयुगजा रचयन्ति । ...
भूषणाद्यमुपबाहुयुगोत्थाः ॥ ५ ॥ धनार्ति सौभाग्यं शु...
सुपानान्नं नाभौ तदध इह चौरैर्धनहृतिम् । धनं धान्यं ...

प्राप्ति, दोनों भौहोंमें हो तो दुर्भगता और प्यारे मनुष्यका ...
भौहोंके बीचमें हो या नेत्रपुटमें हो तो शोक होता है, दोनों ...
कनपटीमें हो तो संन्यासी करता है, आंसू गिरनेके स्थानमें हो ...
होती है ॥ २ ॥ नासिका और गालमें हो तो वसन और ...
अधरमें हो तो अन्न लाभ होता है. ठोडीके तले हो तो ...
ललाटमें हो तो बहुत धनका लाभ होता है, दोनों ठोडीमें हो ...
ज्ञान होता है, गलेमें हो तो भूषण, अन्न और पान ...
[illegible]

...धन ... सुख प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥ ...
[illegible]

सौभाग्यं वा गुदवृषणजाता विदधाति ॥ ६ ॥ ऊर्वोर्यानाङ्गना-शत्रुजनात् क्षतिम् । शस्त्रेण जङ्घयोर्गुल्फेऽध्वबन्धक्लेशदायिनः पार्ष्णिपादजाता धननाशागम्यगमनमध्वानम् । बन्धनमंगुलिनि- ज्ञातिलोकतः पूजाम् ॥ ८ ॥ उत्पातगण्डपिटका दक्षिणतो ातः । धन्या भवन्ति पुंसां तद्विपरीतास्तु नारीणाम् ॥ ९ ॥ विभागः प्रोक्त आ मूर्द्धतोऽयं व्रणतिलकविभागोऽप्येवमेव भवति मशकलक्ष्मावर्तजन्मापि तद्वन्निगदितफलकारि प्राणिनां । १० ॥

ति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां पिटकलक्षणं नाम
द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

वृषणके ऊपर हो तो धन और सौभाग्यका विधान करता है ॥ ६ ॥
ं हो तो सवारी और स्त्रीकी प्राप्ति होती है, दोनों जानुमें हो तो शत्रु-
उठाना पडती है; दोनों छावामें शस्त्रका घाव और गुल्फमें हो तो मार्ग
का क्लेश होता है ॥ ७ ॥ परन्तु स्फिक् (कमरका मांसपिंड), एडी
में हो तो धनका नाश, अयोग्य स्त्रीसे गमन और मार्गका लाभ होता है.
के समूहमें हो तो बन्धन और अंगूठेमें हो तो जातिवाले लोगोंसे पूजाकी
ी ॥ ८ ॥ पुरुषके दाहिने भागमें जो पिटक होता है, तिसको " उत्पा-
कहते हैं, वामभागमें पिटकको " अभिघात " पिटक कहते हैं, ऐसे
क्षिण भागमें पिटकवाले आदमीके धान्य होता है, परन्तु स्त्रियोंके उलटे
नेसे फल होता है अर्थात् स्त्रियोंके दाहिने भागके पिटकको "अभिघात"
के पिटकको " उत्पातगण्ड " कहते हैं, यही वामभागले स्त्रियोंके शुभ-
अन्यथा इनका अशुभ फल होता है ॥ ९ ॥ मस्तकसे आरंभ करके
ंगके पिटका विभाग अर्थात् फल यह कहा गया. व्रण या तिल (काले
क तिल होता है) इन दोनोंका फल इसी तरह जानना और मशक या
मक जो दो प्रकारके चिह्न हैं, वे चिह्न यदि प्राणियोंकी देहमें हों तो वहभी
ल देते हैं ॥ १० ॥

राहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्त
तवलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां द्विपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५२॥

अथ त्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः ।

वास्तुविद्या.

वास्तुज्ञानमथातः कमलभवान्मुनिपरम्परायातम् । क्रियतेऽधुना मये विदग्धसांवत्सरप्रीत्यै ॥ १ ॥ किमपि किल भूतमभवद् रुन्धानं रोदसी शरीरेण तदमरगणेन सहसा विनिगृह्याधोमुखं न्यस्तम् ॥ २ ॥ यत्र च येन गृहीतं विबुधेनाधिष्ठितः स तत्रैव । तदमरमयं विधाता वास्तुनरं कल्पयामास ॥ ३ ॥ उत्तममष्टाभ्यधिकं हस्तशतं नृपगृहं पृथुत्वेन । अष्टाष्टोनान्येवं पञ्च सपादानि दैर्घ्येण ॥ ४ ॥ षड्भिः षड्भिर्हीना सेनापतिसद्मनां चतुःषष्टिः । पञ्चैव विस्तारात्

जो ब्रह्माजीके पाससे मुनि लोगोंके पास आई है पंडित और ज्योतिषी लोगोंकी प्रसन्नताके लिये अब वही वास्तुविद्या कही जाती है ॥ १ ॥ अकेले पृथ्वी और आकाशका रोकनेवाला कोई एक भूत पूर्वकालमें उत्पन्न हुआ था, वह देवतासे मारा जाकर नीचेको मुखकर पृथ्वीपर गिरा ॥ २ ॥ जिस देवताने उसके जिस स्थानका अधिकार प्राप्त किया था, वही देवता उस स्थानका स्वामी है, इसके उपरान्त ब्रह्माजीने उस देवमय शरीर भूतको वास्तु पुरुषरूपसे कल्पित किया ॥ ३ ॥ (संसारमें समस्त मनुष्योंके वास्तुगृहके भेद पांच प्रकारके हैं) तिनमें पहला उत्तम, पहलेकी अपेक्षा दूसरा अधम और तिससे तृतीयादि. सबसे पहिले राजाके घरका परिमाण कहा जाता है, एक शत आठ १०८ (हाथ) चौडा और १३५ हाथ लम्बा होता है; पांच भेदवाले राजाके घरमें यही उत्तम घर है, द्वितीयादि और चार प्रकारके गृह क्रमसे लम्बाई और चौडाईमें आठ हाथ कम होंगे, यथा;—दूसरा लम्बाईमें १२५ हाथ और चौडाईमें सौ हाथ, तीसरा;— लम्बाईमें ११५, चौडाईमें ९२ हाथ, चौथा;—लम्बाईमें १०५, चौडाईमें ८४ हाथ, पांचवां;—लम्बाईमें ९५ और चौडाईमें ७६ हाथका होता है ॥ ४ ॥ सेनापतिका उत्तम घर ६४ हाथ चौडा होता है और फिर छः भागयुक्त विस्तारही उसकी लम्बाई होती है. यथा—पहला;—६४ हाथ चौडा और ७४ हाथ १६ अंगुल लम्बा होता है. दूसरा;—५८ हाथ चौडा, और ६७ । १६ लम्बा होता है. तीसरा;—५२, हाथ चौडा और ६० हाथ १६ अंगुल लम्बा. चौथा;—४६ हाथ चौडा और १६ अंगुल लम्बा होता है. पांचवां;—४० हाथ चौडा और ४६ (हाथ)

१ २४ अंगुलका एक हाथ, और ६० व्यंगुलका एक अंगुल होता है ।

षड्भागसमन्विता दैर्घ्यम् ॥५॥षाष्टिश्चतुर्विहीना वेश्मानि भवन्ति पञ्च सचिवस्य ।
स्वाष्टांशयुता दैर्घ्यं तदर्धतो राजमहिषीणाम् ॥ ६ ॥ षड्भिः षड्भिश्चैवं युवराज-
स्यापवर्जिताशीतिः । त्र्यंशान्विता च दैर्घ्यं पञ्च तदर्धैस्तदनुजानाम् ॥ ७
नृपसचिवान्तरतुल्यं सामन्तप्रवरराजपुरुषाणाम् । नृपयुवराजविशेषः कञ्चुकि

---

१६ अंगुल लम्बा होता है ॥ ५ ॥ मंत्रियोंके गृह भी पांच प्रकारके होते हैं, तिनमें मुख्यगृह ६० हाथ चौडा होता है. फिर ६० से क्रमानुसार चार २ हाथ कम किये जांयगे. अर्थात् क्रमानुसार ५६ । ५२ । ४८ । ४४ हाथ चौडा हो. चौडाईके साथ चौडाईका आठवां अंश मिलानेसे लम्बाईका परिमाण निरूपित होगा. तिसका परिमाण यथा;—पहला ६७ । १२, दूसरा ६३, तीसरा ५८ । १२, चौथा ५४ । ०, पांचवां ४९ हाथ १२ अंगुल इसकी लम्बाई और चौडाईसे आधे भागके परिमाणका गृह रानियोंका होना चाहिये, लम्बाई यथा;—पहला ३३ । १८, दूसरा ३१ । १२, तीसरा २९ । ६, चौथा २७ । ०, पांचवां २४ । १८ ॥ चौडाई यथा;—पहला ३० । दूसरा २८ । तीसरा २६ । चौथा २४ और पांचवां २२ हाथ होता है ॥ ६ ॥ युवराजके गृहभी पांच प्रकारके होते हैं, तिसमें उत्तम गृह ८० हाथका चौडा होता है, दूसरे गृहोंकी चौडाई क्रमानुसार छः छः हाथ म होगी. चौडाईका तीसरा अंश मिलानेसे तिनकी लम्बाईका परिमाण निर्णीत गा. यथा;—पहला ८० हाथ चौडा, १०६ हाथ १६ अंगुल लम्बा; दूसरा ७४ थ चौडा, ९८ हाथ, १६ अंगुल लम्बा; तीसरा ६८ हाथ चौडा, ९० हाथ १६ गुल लम्बा; चौथा ६२ हाथ चौडा, ८२ हाथ १६ अंगुल लम्बा. पांचवां ५६ चौडा और ७४ हाथ १६ अंगुल लम्बा. इन उत्तमादि गृहोंसे आधे परिमाण- गृह युवराजके छोटे भ्राताओंके गृह हों, तिसके परिमाणकी चौडाई । ३७ । ३४ । ३१ । २८ हाथ और लम्बाईका परिमाण यथा;—५३ । ८, । ८, ४५ । ८, ४१ । ८, ३७ । ८ हाथ ॥ ७ ॥ राजा मंत्री इन दोनोंके गृहमें जो अन्तर हो वही सामन्त और श्रेष्ठ राजपुरुषोंके परिमाण है, उत्तमके क्रमसे चौडाई यथा;—४८ । ४४ । ४० । ३६ । थ. और उत्तमके क्रमसे लम्बाई ६७ । १२, ६२ । ०, ५६ । १२, ५१ । ।१२ अंगुल है. राजा और युवराजके घरमें जो अन्तर होता है, वही अन्तर वेश्या और नाच गाना जाननेवालोंके घरोंका परिमाण है. उत्तमादि क्रमसे लम्बाई यथा;—२८ । ८, २६ । ८, २४ । ८, २२ । ८, २० । ८ अंगुल

वेश्याकलाज्ञानाम् ॥ ८ ॥ अध्यक्षाधिकृतानां सर्वेषामेव कोशरतितुल्यम् । युवराजमन्त्रिविवरं कर्मान्ताध्यक्षदूतानाम् ॥ ९ ॥ चत्वारिंशद्धीना चतुर्भिस्तु पञ्च यावदिति । षड्भागयुता दैर्घ्यं दैवज्ञपुरोधसोर्भिषजः ॥ १० ॥ वास्तुनि यो विस्तारः स एव चोच्छ्रायनिश्चयः शुभदः । शालैकेषु गृहेषु विस्तराद्द्विगुणितं दैर्घ्यम् ॥ ११ ॥ चातुर्वर्ण्यव्यासो द्वात्रिंशत्स्याच्चतुर्हीना

है तिसी तरह उत्तमादिक्रमसे चौडाई २८, २६, २४, २२, २० है ॥ ८ ॥ समस्त अध्यक्ष और अधिकारी पुरुषोंके गृहका परिमाण, कोशगृह और रतिगृहका परिमाण समान है, युवराज और मंत्रीके गृहमें जो अन्तर हो वही कर्मान्त और दूतोंके गृहका परिमाण है. तिसके परिमाणमें चौडाई यथा;—२० । १८ । १६ । १४ । १२ हाथ. लम्बाई यथा;—३९ । ४, ३५ । १६, ३२ । ४, २८ । १६, २५ । ४ ॥ ९ ॥ ज्योतिषी, पुरोहित और वैद्योंके उत्तम घरकी चौडाई ४० हाथ हो यहभी पांच प्रकारके हैं, इसही कारण दूसरे क्रमानुसार चार २ हाथ कम होंगे और इनकी छः षड्भागयुक्त चौडाईही इनकी क्रमानुसार लम्बाई हो अर्थात् चौडाई यथा;—४० । ३६ । ३२ । २८ । २४ हाथ हो. लम्बाई यथा;—४६ । १६, ४२ । ०, ३७ । १६, ३२ । १६, २८ । ० अंगुल ॥ १० ॥ गृह जितना चौडा हो उतनाही ऊंचा हो तो शुभदायी है. परन्तु जिन घरोंमें केवल एक शाला हो उसकी लम्बाई चौडाईसे दुगुनी होनी चाहिये ॥ ११ ॥ (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और चाण्डालादि हीन जातियोंमें किस २ को किस २ प्रकार गृहका अधिकार है और उस वास्तुगृहका परिमाण कितना हो वही अब कहा जाता है) ब्राह्मणादि चार वर्ण और हीनजातिके लिये उत्तम गृहके व्यासकी चौडाई ३२ हाथ होती है. इस ३२ संख्यासे तबतक चार घटाने होंगे कि जबतक १६ संख्या न निकलेगी । तबही ३२ मेंसे ४ घटानेपर १६ निकलने तक पांच अंक होंगे, यथा;—३२ । २८ । २४ । २० । १६ इन पांच अंकोंमेंही ब्राह्मणजातिके पांच गृहकी चौडाईका व्यास और पांच प्रकारके गृहमें इस जातिका अधिकार है । ब्राह्मणजातिके दूसरे गृहोंकी चौडाईकी संख्या २८ से १६ बचनेतक चार अंक, क्षत्रिय जातिके गृहका परिमाण और अधिकार कहा गया. तीसरे अंकसे तीन अंक, चौथे अंकसे शूद्रका और पांचोंसे अन्त्यज (चाण्डालादिहीन) जातिका गृहका और तिनका अधिकार निर्णय हुआ है, चौडाईके अंक घटेजाते हैं यहां

आ षोडशादिति परं न्यूनतरमतीविहीनानाम् ॥ १२ ॥ सदशांशं विप्राणां क्षत्रस्याष्टांशसंयुतं दैर्घ्यम्। षड्भागयुतं वैश्यस्य भवति शूद्रस्य पादयुतम् ॥ १३ ॥ नृपसेनापतिगृहयोरन्तरमानेन कोशरतिभवने। 'सेनापतिचातुर्वर्ण्य-

	उत्तम.	मध्योत्तम.	मध्यम.	अधम.	अधमाधम.
ब्राह्मण.	३२	२८	२४	२०	१६
क्षत्री.	२८	२४	२०	१६	०
वैश्य.	२४	२०	१६	०	०
शूद्र.	२०	१६	०	०	०
अन्त्यज.	१६	१०	०	०	०

इससे जाना गया कि ब्राह्मणलोग ऐसे पृथु व व्यास युक्त पांच प्रकारके गृहोंमें अधिकारी हैं, वैश्य तीन प्रकार, शूद्र दो प्रकार और अन्त्यजजातिवाले एक प्रकारके गृहमें अधिकारी हैं ॥ १२ ॥ पहले कही हुई चौडाईके साथ क्रमानुसार अपना दशवां, आठवां, छठवां और चौथा अंश मिलानेसे ब्राह्मणादि चार वर्णोंके वास्तुभवनका व्यास और लंबाईका निर्णय होगा परन्तु अन्त्यजजातिके व्यासमानकी जो चौडाई है, वही लम्बाईके नामसे नियत हुई है. लम्बाईके अंक धरे जाते हैं यथा;— ॥ १३ ॥

	उत्तम.	मध्योत्तम.	मध्यम.	अधम	अधमाधम.
ब्राह्मण.	३५।४।४८	३०।१९।१२	२६।९।३६	२२	१७।१४।२४
क्षत्री.	३१।१२	२७	२२।१२	१८	०
वैश्य.	२८	२३।१६	१८।८	०	०
शूद्र.	२५	२०	०	०	०
अन्त्यज.	१६	०	०	०	०

: प्रजा और सेनापतिके गृहमें जो अन्तर होगा, वही कोषगृह और रतिगृहका परिमाण होगा. तिसके परिमाणमें चौडाई यथा;—४४ । ४२ । ४० । ३८ । ३६ हाथ. लम्बाई यथा;—६० । ८, ५७ । १६, ५४ । ८, ५१ । ८, ४८ । ८ अंगुल कोषगृह वा रतिगृहके साथ सेनापतिके और चार वर्णके वास्तुमानका अंतरमानही राजपुरुषोंके वास्तुगृहका परिमाण होगा अर्थात् राजपुरुष ब्राह्मण हो तो ब्राह्मण वास्तु-व्यासको सेनापति-वास्तुमान-व्याससे हीन करके जो शेष रहे उस मानाङ्कसे उसका गृह-पंचक बनावे. जो राजपुरुष क्षत्री हो तो तिसके वास्तुमानको सेनापति-वास्तुमानके दूसरे अंकसे अधिकारके अनुसार वास्तुमान धराकर अधिकारानुसार

विवरतो राजपुरुषाणाम् ॥ १४ ॥ अथ पारसवादीनां स्वमानसंयोगदलार्द्धं भवनम् । हीनाधिकं स्वमानादशुभकरं वास्तु सर्वेषाम् ॥ १५ ॥ पशुशालि-णाममितं धान्यायुधवह्निरतिगृहाणां च । नेच्छन्ति शास्त्रकारा हस्तशतादु-च्छ्रितं परतः ॥ १६ ॥ सेनापतिनृपतीनां सप्ततिसहिते द्विधाकृते व्यासे। शाला चतुर्दशहृते पञ्चत्रिंशद्धृतेऽलिन्दः ॥ १७ ॥ हस्तद्वात्रिंशादिषु चतुर्भा-स्त्रित्रिकास्त्रिकाः शालाः । सप्तदशत्रितयतिथित्रयोदशकृतांगुलाभ्यधिकाः ॥१८॥ त्रित्रिद्विद्विद्विसमाः क्षयक्रमादंगुलानि चैतेषाम् । त्र्येका विंशतिरष्टौ विंशतिश्च

गृहादि निर्माण करे ॥१४॥ पारसव राजतिलक पाये और अम्बष्ठ आदि जातियोंको गृह निर्माण स्थानमें अपने २ परिमाणके योगजार्द्ध (चौडाई, लम्बाई) तुल्य गृह होगा अर्थात् संकर जातियें जिन दो जातियोंसे उत्पन्न हुई हैं उन दो जातियोंके घरोंकी चौडाई और लम्बाई मिलाकर तिसके आधे मानमें उनका गृह-पंचक बनावे सब जातियोंके लिये अपने २ परिमाणकी अपेक्षा हीन या अधिक वास्तुका परिमाण शुभदाई होता है ॥ १५ ॥ पशुशाला, मत्राजिकालय, धान्यागार, शस्त्रागार, अग्निशाला और रतिगृह (बैठक) का परिमाण इच्छानुसार किया जा सकता है, परन्तु कोई गृहभी शत हाथसे ऊंचा न हो. यही शास्त्रकार लोगोंका अभिमत है ॥ १६ ॥ सेनापतिका गृह और राजाके गृहके व्यासाङ्क परस्पर जोडकर उसमें सत्तर मिलावे फिर उसको दो जगह रखे एक जगह १४ चौदहसे भाग करनेपर जो कुछ प्राप्त हो, वही शाला अर्थात् घरके भीतरका परिमाण है और दूसरी जगहके अंकको १५ पन्द्रहसे भाग करनेपर अलिन्द अर्थात् शालाभित्तिके बाहरी भागका सोपानयुक्त आंगनका परिमाण होगा, यह राजाके लिये है और जातिके पुरुषोंके घरके भवनशाला और अलिन्दमान निकालना हो तो राजा और सेनापतिके घरके दो व्यासोंके योग फलके साथ (आगे कहे क्रमानुसार) यजानीय व्यासाङ्क हीन करके तिसमें (७०) मिलावे, फिर उसको दो जगह रखकर क्रमसे १४ और १५ पन्द्रहसे भाग करनेपर क्रमानुसार शाला और अलिन्दका परिमाण निकल आवेगा ॥ १७ ॥ पहले चार हस्तके जो ब्राह्मणादि चार वर्णोंका गृह व्यास ३२ बत्तीस हाथके लगभग कहा गया है, तिसमें क्रमानुसार ४ चार हाथ, सत्रह अंगुल; ४ चार हाथ, ३ तीन अंगुल; ३ हाथ, पन्द्रह अंगुल; तीन हाथ तेरह अंगुल और तीन हाथ चार अंगुलके परिमाणकी शाला बनाई जाय और इन गृहोंका अलिन्द भी क्रमानुसार तीन हाथ उन्नीस अंगुल; तीन हाथ आठ अंगुल, दो हाथ बीस

दश वितयम् ॥ १९ ॥ शालात्रिभागतुल्या कर्तव्या वीथिका बहिर्भव
पश्चिमतो भवति सा सोष्णीषं नाम तद्वास्तु ॥ २० ॥ सायाश्रयमिति प
सावष्टम्भं तु पार्श्वसंस्थितया । सुस्थितमिति च समन्ताच्छास्त्रज्ञैः पू
र्वाः ॥ २१ ॥ विस्तारषोडशांशः सचतुर्हस्तो भवेद्गृहोच्छ्रायः । द्वादश
नोनो भूमौ भूमौ समस्तानाम् ॥ २२ ॥ व्यासात् षोडशभागः सर्वेषां स
भवति भित्तिः । पक्वेष्टकाकृतानां दारुकृतानां तु सविकल्पः ॥ २३
एकादशभागयुतः सप्ततिर्नृपपतिसेनापत्योर्व्यासः । उच्छ्रायोऽङ्गुलतुल्यो द्वारस्या
विष्कम्भः ॥ २४ ॥ विप्रादीनां व्यासात् पञ्चांशोऽष्टादशाङ्गुलसमेतः । साष्टां

दो हाथ अठारह अंगुल और दो हाथ तीन अंगुलके परिमाणका होगा ॥ १८ ॥ १९ ॥
पहले कहे हुए शालामानके त्रिभागकी स्थानभूमि; भवनके बाहर रक्खे, इस
भूमिका नाम वीथिका है, जो यह वीथिका वास्तुभवनके पूर्वभागमें हो तो उक्त
वास्तुका नाम " सोष्णी । " है. यदि वास्तुके पश्चिम ओर वीथिका हो तो उस
वास्तुको " सायाश्रय " वास्तु कहते हैं, जो उत्तर अथवा दक्षिण दिशामें वीथिका
हो तो उसको " सावष्टम्भ " नामक वास्तु कहते हैं और जो वास्तुभवनके चारों
ओरही ऐसी वीथिका हो तो तिसको " सुस्थित " कहते हैं, इन समस्त
वास्तुओंको शास्त्रकार लोग पूजा किया करते हैं अर्थात् ऐसी वास्तु अत्यन्त
शुभदायी है ॥ २० ॥ २१ ॥ उस गृहका जितना विस्तार हो उसको सोलहवें
अंशके साथ चार हाथ मिलानेसे जितने हाथ हों वही उस घरकी ऊंचाई होगी,
इसी चार प्रकारके घरोंकी उंचाई क्रमानुसार उसकी अपेक्षा बारह भाग
करके कम होगी ॥ २२ ॥ समस्त गृहोंके व्यासका सोलहवां भागही
भीतका परिमाण है, यह परिमाण पकी ईंटोंसे बने घरका है, परन्तु काठसे
बने घरकी भीतका परिमाण इच्छानुसार कर लेना चाहिये ॥ २३ ॥ राजा
और सेनापतिके घरका जो व्यास हो तिसके साथ सत्तर मिलाय ११ ग्यार-
हसे भाग करनेपर जो प्राप्त हो, तितने हाथ उसके प्रधानद्वारका विस्तार होगा.
विस्तार हस्त परिमाण जितने अंगुल हो, तितने हाथ वह ऊंचा होगा और द्वार-
विस्तारके अर्द्धही द्वारका नाम विष्कम्भ माना है ॥ २४ ॥ ब्राह्मणादि दूसरी
जातिके पुरुषोंके गृहव्यासके पचासमें अठारह अंगुल मिलानेसे जो होगा, वही
उस घरके द्वारका परिमाण होगा. द्वारपरिमाणका आठवां भाग, द्वारका विष्कम्भ

न्तौ हृदये ब्रह्मा पिताङ्घ्रिगतः ॥ ५४ ॥ अष्टाष्टकपदमथवा कृत्वा...
गास्तिर्यक् । ब्रह्मा चतुःपदोऽस्मिन्नर्द्धपदा ब्रह्मकोणस्थाः ॥ ५५ ॥ ...
बाह्यःकोणेष्वर्द्धपदास्तदुभयस्थिताः सार्द्धाः । उक्तेभ्यो ये शेषास्ते ...
स्ते च ॥ ५६ ॥ सम्पाता वंशानां मध्यानि समानि यानि च पदानाम् ।
तानि विन्द्यान्न परिपीडियेत् प्राज्ञः ॥ ५७ ॥ तान्यशुचिभा...
पीडितानि शल्यैश्च । गृहभर्तुस्तत्तुल्ये पीडामङ्गे प्रयच्छन्ति ॥ ५८ ॥ ...
यदङ्गं गृहपतिना यत्र वामराहुत्याम् । अशुभं भवेन्निमित्तं विकृतिर्वाग्नेः ...
तत् ॥ ५९ ॥ धनहानिर्दारुमये पशुपीडारुग्भयानि चास्थिकृते । लोहमये

वास्तुपुरुषके लिङ्गपर इन्द्र व जयन्त स्थित हैं, हृदयपर ब्रह्मा स्थित हैं और ... पर पिता है. यह नगर, ग्राम, गृह इत्यादिमें इक्यासी पदके वास्तुका विभाग ... है, अब चौंसठ पदका वास्तु कहते हैं ॥ ५४ ॥ अथवा चौंसठ कोठाका ... बनावे अर्थात् नौ रेखा पूर्व पश्चिम और नौ रेखा दक्षिण उत्तरमें खैंचकर चौंसठ ... वास्तुमें बनावे और चारों कोनोंमें कर्णके आकार दो तिरछी रेखा खैंचे. इस ... ब्रह्मा चार कोठोंका स्वामी है. ब्रह्माके कोनोंमें स्थित आठ देवता आपवत्स, ... सावित्र, इन्द्र, जयन्त, राजयक्ष्मा और रुद्र ॥ ५५ ॥ और बाहिरके कोनोंमें ... हुए आठ देवता हैं अग्नि, अंतरिक्ष, वायु, मृग, पिता, पाप, यक्ष्मरोग और ... यह सब आधे आधे कोष्ठके स्वामी हैं और इनके दोनों ओर विराजमान ... भृश, भृङ्गराज, दौवारिक, शेषनाग और अदिति यह डेढ डेढ पदके स्वामी ... और शेष वीस देवता जयन्त, इन्द्र, सूर्य, सत्य, वितथ, बृहत्क्षत, यम, ... सुग्रीव, कुसुमदंत, वरुण, असुर, मुख्यभल्लाट, सोम, भुजंग, अर्यमा, विवस्वान् ... मित्र, पृथ्वीधर यह सब दो दो कोष्ठके स्वामी हैं. यह चौंसठ पदका वास्तु ... है ॥ ५६ ॥ आगे वंशोंके सम्पात जो कहेंगे वह और पदोंके समनध्य यह ... मर्म जाने, प्राज्ञ पुरुषको उचित है कि कभी इनको पीडन न करे ॥ ५७ ॥ वास्तुमें मर्म स्थान, अपवित्र, माण्ड, कील, स्तम्भ इत्यादि करके और शल्य ... आगे कहेंगे, उनसे पीडित हो तो घरके स्वामीके उस उस अंगमें अर्थात् वास्तुके ... जो जो अंग हो, उसी अंगमें पीडा देते हैं ॥ ५८ ॥ होम अथवा प्रश्नके ... घरका मालिक अपने जिस अंगको खुजलावे. वास्तुके उस अंगमें शल्य होवे ... और अग्नि आदि जिस देवताके आहुति देनेके समय छींक रोना आदि अशुभ ... शकुन हों अथवा अग्निमें कुछ विकार उत्पन्न हो तो वह देवता वास्तुपुरुषके जिस ... अंगमें हो, उस अंगको शल्ययुक्त जाने ॥ ५९ ॥ काष्ठका शल्य होनेसे धनहानि,

पं कपालकेशेषु मृत्युः स्यात् ॥ ६० ॥ अङ्गारे स्तेनभयं भस्मानि च विनि-
शेत् सदाग्निभयम् । शल्यं हि मर्मसंस्थं सुवर्णरजताहतेऽत्यशुभम् ॥ ६१ ॥
गेण्यमर्मगो वा रुणद्ध्यर्थागमं तुषसमूहः । अपि नागदन्तको मर्मसंस्थितो
पङ्कदराति ॥ ६२ ॥ रोगाद्वायुं पितृतो हुताशनं शोषसूत्रमपि वितथात् ।
स्याद्भृशं जयन्ताच भृङ्गमदितेश्च सुग्रीवम् ॥६३॥ तत्सम्पाता नव ये तान्य-
मर्माणि सम्प्रदिष्टानि । यश्च पदस्याष्टांशस्तत्प्रोक्तं मर्मपरिमाणम् ॥ ६४ ॥
हस्तसंख्यया सम्मितानि वंशोऽङ्गुलानि विस्तीर्णः । वंशव्यासोऽध्यर्धः शिरा-
णां विनिर्दिष्टम् ॥ ६५ ॥ सुखमिच्छन् ब्रह्माणं यत्नाद्रक्षेद्गृही गृहान्तस्थम् ।
च्छिष्टाद्युपघाताद् गृहपतिरुपतप्यते तस्मिन् ॥ ६६ ॥ दक्षिणभुजेन हीने
स्तुनरेऽर्थक्षयोऽङ्गनादोषाः । वामेऽर्थधान्यहानिः शिरसि गुणैर्हीयते सर्वैः॥६७॥

स्थियोंका शल्य होनेसे पशुपीडा और रोगभय होता है. लोहके शल्यसे मृत्यु
स्त्रभय, कपाल और केशोंके शल्यसे होती है ॥ ६० ॥ कोयलोंके शल्यसे
रभय, भस्मके शल्यसे सदा अग्निभय होता है. सुवर्ण और चांदीके सिवाय और
ई शल्य जो वास्तुपुरुषके मर्ममें टिका हो तो अत्यन्त अशुभ होता है ॥ ६१ ॥
धान आदिके तुष वास्तुपुरुषके मर्मस्थान या और किसी स्थानमें हो तो धनके
गमनको रोकते हैं. नागदंत शुभ है, परन्तु मर्मस्थानमें हो तो दोषकारी होता है
६२ ॥ वास्तुपुरुषमें रोगनामक देवतासे अनिलतक, पितासे शिखी पर्यंत, वितथसे
षतक, मुखसे भृशतक, जयन्तसे भृंगतक और अदितिसे सुग्रीवतक सूत्र डाले
६३ ॥ इन सूत्रोंके नौ संपात वास्तुपुरुषके अतिमर्म कहे हैं. एक पदका
ष्टमांश मर्मका परिमाण कहा है ॥ ६४ ॥ पहले कहे छः सूत्रोंका वंशभी कहते
और वास्तु विभागके लिये जो पूर्वापर और दक्षिणोत्तर दश दश रेखा करी हैं
नको शिरा कहते हैं. एक पादका विस्तार वास्तुमें जितने हाथ हो, उतने अंगुल
क वंशका विस्तार होता है और वंशके विस्तारसे ड्योढा शिराका विस्तार होता
॥ ६५ ॥ यदि घरका स्वामी सुख चाहे तो वास्तुके बीचमें स्थित हुए ब्रह्माकी
त्नसे रक्षा करे, ब्रह्माके ऊपर जूंठन इत्यादि डालनेसे घरके मालिकको क्लेश होता
॥ ६६ ॥ वास्तुपुरुषके दाहिनी भुजा हीन होनेसे धनका नाश व स्त्रीदोष होते
हैं. वामभुजा हीन होनेसे धन और अन्नकी हानि होती है. वास्तुपुरुषका
शिर हीन हो तो धन आरोग्यादि समस्त गुणोंका [illegible] होता है ॥ ६

स्त्रीदोषाः सुतमरणं प्रेष्यत्वं चापि करणवैकल्ये। अविकलपुरुषे वसतां मानार्थ-
युतानि सौख्यानि ॥ ६८ ॥ गृहनगरग्रामेषु च सर्वत्रैवं प्रतिष्ठिता देवाः। ते-
च यथानुरूपं वर्णा विप्रादयो वास्याः ॥ ६९ ॥ वासगृहाणि च विन्याद् द्वि-
दीनामुदग्दिगाद्यानि। विशतां च यथाभवनं भवन्ति तान्येव दक्षिणतः ॥७०॥
नवगुणसूत्रविभक्तान्यष्टगुणेनाथवा चतुःषष्टेः। द्वाराणि यानि तेषामनलाद्य-
फलोपनयः ॥ ७१ ॥ अनलभयं स्त्रीजन्म प्रभूतधनता नरेन्द्रवाल्लभ्यम्। क्रो-
धपरतानृतत्वं कौर्यं चौर्यं च पूर्वेण ॥ ७२ ॥ अल्पसुतत्वं प्रेष्यं नीचत्वं भक्ष्य-
पानसुतवृद्धिः। रौद्रं कृतघ्नमधनं सुतवीर्यघ्नं च याम्येन ॥ ७३ ॥ सुता-
रिपुवृद्धिर्न धनसुताप्तिः सुतार्थबलसम्पत्। धनसम्पन्नृपतिभयं धनक्षयो रो-
इत्यपरे ॥ ७४ ॥ वधबन्धौ रिपुवृद्धिर्धनसुतलाभः समस्तगुणसम्पत्। पुत्र-

---

वास्तुपुरुष चरणरहित हो तो स्त्रीदोष, पुत्रमरण और दासपन होता है. जो
वास्तुपुरुषके संपूर्ण अंग पूर्ण हो तो उस वास्तुमें रहनेवालोंको मान और धनका सुख
होता है ॥ ६८ ॥ गृह, नगर और ग्रामोंमेंभी ऐसेही यह वास्तुदेवता विराज रहे हैं,
उस नगर ग्रामादिमें ब्राह्मणादि वर्णोंको क्रमानुसार बसावे ॥ ६९ ॥ उत्तर, पूर्व,
दक्षिण और पश्चिम इन चार दिशाओंमें क्रमानुसार चतुःशाल (चटशाल) करे
ग्राममें अथवा नगरमें ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र वसें, वे घर ऐसे बनावे कि
कि अपने घरके आंगनमें प्रवेश करनेके समय अपने निवासके घर दाहिनी ओर
रहें ॥ ७० ॥ इक्यासी पदके वास्तुमें नौ गुणे सूत्रसे और चौंसठ पदके वास्तुमें
आठगुणे सूत्रसे विभक्त किये जो अनलादि वत्तीस द्वार हैं. क्रमानुसार उनका
फल कहते हैं ॥ ७१ ॥ अग्निसे लेकर अन्तरिक्षतक जो आठ देवता वास्तुपुरुषके
पूर्वभागमें हैं, उनपर द्वार होय तो क्रमसे अग्निभय, कन्याजन्म, बहुत धन,
राजाकी प्रसन्नता, क्रोधीपन, असत्य बोलना, क्रूरपन और चौरपन यह फल होते
हैं ॥ ७२ ॥ पवनसे लेकर मृगतक दक्षिणके आठ देवताओंके पदमें द्वार रखे तो
क्रमसे अल्पपुत्रता, दासपन, नीचपन, भोजन, पान और पुत्रोंकी वृद्धि, रौद्र, कृतघ्न,
धनहीनता, पुत्र और बलका नाश होता है ॥७३॥ पितासे लेकर पापयक्ष्मा पर्यंत पश्चि-
मके आठ देवताओंपर द्वार रखनेका फल क्रमसे पुत्रपीडा, शत्रुवृद्धि, धन और पुत्रकी
अप्राप्ति, पुत्र, धन और बलकी प्राप्ति, धन संपत्ति, राजभय धनक्षय और रोग है ॥७४॥
यक्ष्मरोगसे लेकर दितितक उत्तरके आठ देवताओंपर द्वार लिखनेका फल क्रमसे
बंधन, शत्रुवृद्धि, पुत्र और धनका लाभ, सब गुणोंकी सम्पत्ति, पुत्र और धनकी

नातिर्वैरं सुतेन दोषाः स्त्रिया नैःस्व्यम् ॥ ७५ ॥ मार्गतरुकोणकूपस्तम्भभ्रमविद्धमशुभदं द्वारम् । उच्छ्रायाद्द्विगुणमितां त्यक्त्वा भूमिं न दोषाय ॥ ७६ ॥ रथ्याविद्धं द्वारं नाशाय कुमारदोषदं तरुणा । पङ्कद्वारे शोको व्ययोऽम्बुनिस्राविणि प्रोक्तः ॥ ७७ ॥ कूपेनापस्मारो भवति विनाशश्च देवताविद्धे । स्तंभेन स्त्रीदोषाः कुलनाशो ब्रह्मणोऽभिमुखे ॥ ७८ ॥ उन्मादः स्वयमुद्घाटितेऽथ पिहिते स्वयं कुलविनाशः । मानाधिके नृपभयं दस्युभयं व्यसनदं नीचम् ॥ ७९ ॥ द्वारं द्वारस्योपरि यत्तन्न शिवाय सङ्कटं यच्च । आव्यात्तं क्षुद्भयदं कुब्जं कुलनाशनं भवति ॥ ८० ॥ पीडाकरमतिपीडितमन्तर्विनतं भवेदभावाय । बाह्यविनते प्रवासो दिग्भ्रान्ते दस्युभिः पीडा ॥ ८१ ॥ मूलद्वारं नान्यैर्द्वारैरभिसन्द-

---

प्राप्ति, पुत्रसे वैर स्त्रीदोष और निर्धनता ये हैं ॥ ७५ ॥ मार्गका वृक्ष, किसी दूसरे घरको खूंट, कुंआ, खम्भ, जल निकलनेकी मोरी इनसे बिधा हुआ द्वार अशुभ होता है अर्थात् घरके द्वारके सन्मुख इनका होना नहीं चाहिये परन्तु घरके द्वारकी जितनी ऊंचाई हो, उससे दूनी पृथ्वी छोडकर जो इनमेंसे किसीका वेध हो तो कुछ दोष नहीं है ॥ ७६ ॥ घरके द्वारके मार्गका वेध हो तो घरके मालिकका नाश, वृक्षका वेध होनेसे बालकोंका दोष, पंक अर्थात् कीचका वेध होनेसे अर्थात् घरके सन्मुख सदा पंक बना रहे तो शोक होता है. मोरीका वेध होनेसे धनका खर्च होता है ॥ ७७ ॥ कूपका वेध होनेसे मृगीरोग, देवताकी मूर्तिका वेध होनेसे घरके स्वामीका नाश, खम्भका वेध होनेसे स्त्रियोंके दोष और ब्रह्माके सन्मुख द्वार होनेसे कुलका नाश होता है ॥ ७८ ॥ जिस गृहके द्वारका किवाड बिना खोलेही खुल जाय उसमें उन्माद रोग होता है. जिसका किवाड आपसेही बन्द हो जाय, उसमें कुलनाश हो जाता है. अपने परिमाणसे द्वार बडा हो तो राजाका भय और छोटा हो तो चोरभय होता है और दुःख देता है ॥ ७९ ॥ ठीक द्वारपर दूसरे खण्डका द्वार आवे तो वह शुभ नहीं होता और ओछा द्वारभी शुभ नहीं. बहुत चौडा द्वार क्षुधाका भय करता है और कुबडा द्वार कुलका नाश करनेवाला होता है ॥ ८० ॥ ऊपरके काठसे बहुत दबा हुआ द्वार घरके स्वामीको पीडा करता है. भीतरको झुका हुआ गृह स्वामीका मरण करता है. बाहरको झुका होय तो गृहस्वामी विदेशमें रहे और किसी दिशाकी ओर देखता हो तो चोरोंसे पीडित होता है ॥ ८१ ॥ घरके मुख्य द्वारका रूप और साधारण द्वारोंके समान नहीं करे अर्थात् और द्वारोंसे मुख्यद्वारका रूप श्रेष्ठ होना चाहिये. मुख्य द्वारपर कलश, फल, पत्र,

धीत रूपद्वर्चा । घटफलपत्रभमथादिभिश्च तन्मङ्गलैश्चिनुयात् ॥ ८२ ॥
न्यादिषु कोणेषु संस्थिता बाह्यतो गृहस्यैताः । चरकी विदारिनामाथ पू
राक्षसी चेति ॥ ८३ ॥ पुरभवनग्रामाणां ये कोणास्तेषु निवसतां दोषाः । श्व
चादयोऽन्त्यजात्यास्तेष्वेव विवृद्धिमायान्ति ॥ ८४ ॥ याम्यादिष्वशुभ
जातास्तरवः प्रदक्षिणेनैते । उदगादिषु प्रशस्ताः प्लक्षवटोदुम्बराश्वत्थाः ॥ ८५ ॥
आसन्नाः कण्टकिनो रिपुभयदाः क्षीरिणोऽर्थनाशाय । फलिनः ...
दारूण्यपि वर्जयेदेषाम् ॥ ८६ ॥ छिन्द्याद्यदि न तरूंस्तान् तदन्तरे पूजि
न्वपेदन्यान् । पुन्नागाशोकारिष्टबकुलपनसान् शमीशाली ॥ ८७ ॥
शस्तौषधिद्रुमलतामधुरा सुगन्धा स्निग्धा समा न सुषिरा च मही नराणाम् ।
अप्यध्वनि श्रमविनोदमुपागतानां धत्ते श्रियं किमुत शाश्वतमन्दिरेषु ॥ ८८ ॥
सचिवालयेऽर्थनाशो धूर्तगृहे सुतवधः समीपस्थे । उद्वेगो देवकुले चतुष्पथे

शिवजीके गण आदि मंगलदायक शोभासे शोभित करे अर्थात् इनके चित्र द्वार
खुदवावे ॥ ८२ ॥ घरके बाहर ईशान आदि चारों कोनोंमें क्रमानुसार चरकी,
विदारी, पूतना और राक्षसी यह चार देवता टिके हैं ॥ ८३ ॥ घर ग्राम और
नगरके जो चारों कोण हैं, उनमें वास करनेवालोंको अनेक प्रकारके क्लेश होते
और उन कोणोंमें जो श्वपच आदि नीच जाति वसें तो उनकी वृद्धि होती
है ॥ ८४ ॥ पिलखन, वट, गूलर, पीपल यह चार वृक्ष क्रमानुसार घरके दक्षिण,
पश्चिम, उत्तर और पूर्वमें हों तो अशुभ होते हैं और उत्तर, पूर्व, दक्षिण और पश्चिम
क्रमसे यह वृक्ष उत्पन्न हों तो शुभ हैं ॥ ८५॥ घरके समीप खैर आदि कांटेवाले
वृक्ष हों तो शत्रुभय करते हैं. आक आदि दूधवाले वृक्ष धनका नाश करते हैं. और
फलनेवाले वृक्ष सन्तानका क्षय करते हैं. इन वृक्षोंको काठभी घरमें न लगावे ॥८६॥
जो घरके समीप यह वृक्ष हों और इनको काटे नहीं तो इनके साथ और शुभ वृक्ष
लगा दे. नागकेशर, अशोक, नीम, मौलसिरी, कटहर, जांट, शाल यह वृक्ष शुभ
हैं ॥ ८७ ॥ उत्तम औषधिवृक्ष और लताओंसे युक्त मधुर सुगंधवाली चिकनी
समान और छिद्रोंसे रहित भूमिके मार्गमें चलनेवाले पुरुष जो श्रम दूर करनेको
क्षणमात्रके लिये उसमें बैठ जांय तो उनकोभी लक्ष्मी देती है. फिर जिनके घर
ऐसी भूमिमें बने हैं और वह पुरुष सदा उनके नीचे वास करते हैं, उनके
लक्ष्मीका प्राप्त होना क्या बडी बात है ॥ ८८ ॥ घरके निकट राजाके मंत्रीका घर

चाकीर्तिः ॥ ८९ ॥ चैत्ये भयं ग्रहकृतं वल्मीकश्वभ्रसंकुले विपदः । गर्तायां तु पिपासा कूर्माकारे धनविनाशः ॥९०॥ उदगादिप्लवमिष्टं विप्रादीनां प्रदक्षिणेनैव । विप्रः सर्वत्र वसेदनुवर्णमथेष्टमन्येषाम् ॥ ९१ ॥ गृहमध्ये हस्तमितं खात्वा परिपूरितं पुनः श्वभ्रम् । यदूनमनिष्टं तत् समे समं धन्यमधिकं यत् ॥ ९२ ॥ श्वभ्रमथवाम्बुपूर्णं पदशतमित्वागतस्य यदि नोनम् । तद्धन्यं यच्च भवेत् पलान्यपामाढकं चतुःषष्टिः ॥ ९३ ॥ आमे वा मृत्पात्रे श्वभ्रस्थे दीपवर्तिरभ्यधिकम् । ज्वलति दिशि यस्य शस्ता सा भूमिस्तस्य वर्णस्य ॥ ९४ ॥

हो.तो धनका नाश होता है. दूसरोंको ठगनेवालेका घर पास हो तो पुत्रमरण, देवताका मंदिर समीप हो तो चित्तको खेद रहे. चतुष्पथ (चौराहा) समीप हो तो अकीर्ति हो ॥ ८९ ॥ चैत्य अर्थात् प्रधान वृक्ष घरके समीप हो तो स्वामीको ग्रहोंका डर है. सर्पकी बांबी और गढोंदार भूमि घरके पास होय तो विपत्ति होवे. घरके समीप गढा हो तो प्यासका रोग हो और कछुएके समान आकारकी भूमि घरके समीप हो तो घरके स्वामीके धनका नाश होता है ॥ ९० ॥ उदक्प्लव (जिस भूमिका झुकाव उत्तरकी ओर हो) वह भूमि ब्राह्मणोंके लिये शुभ है. इसी प्रकार पूर्वप्लव, दक्षिण प्लव और पश्चिमप्लव भूमि क्रमसे क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंके लिये शुभदायी होती है. ब्राह्मण सब प्रकारकी भूमिमें बसें, उसका चाहे जिस दिशामें प्लव हो और वर्णोंके लिये अनुवर्ण भूमि शुभ है. पूर्वप्लव, दक्षिणप्लव और पश्चिमप्लव क्षत्रियोंको, दक्षिणप्लव और पश्चिमप्लव वैश्योंको और केवल पश्चिमप्लव शूद्रोंको शुभ है ॥ ९१ ॥ घरमें एक हाथ चौडा एक हाथ गहरा गढा खोदे, फिर उसको उसी मट्टीसे पूर्ण करे. जो गढा भरनेमें मट्टी कम हो जाय तो वह घर अशुभ होता है. ठीक ठीक गढा भर जाय तो न शुभ और न अशुभ होता है. और जो गढा भर जाय व मट्टी बच रहे तो वह गृह सब प्रकारसे शुभ होता है ॥ ९२ ॥ पहले कही हुई रीतिसे गढा खोदकर उसमें जल भरे. सौ पदतक जाकर लौट आवे, उतने समयमें यदि गढेका जल कुछभी न घटे वह भूमि शुभ होती है. और जहांकी धूरिसे आढकको भरकर फिर तोले और वह धूरि चौंसठ पल हो तो वह भूमिभी शुभ है (अन्न नापनेका एक काठका बरतन जिसमें अनुमान चार सेर अन्न आता है, उसको आढक कहते हैं. चालीस मासेका एक पल होता है) ॥ ९३ ॥ मट्टीके कच्चे बर्तनमें चार बत्तीवालादीपक डाले. उनमें उत्तरादि बत्तियोंमें ब्राह्मण इत्यादि चार वर्णोंकी कल्पना कर दीपक जलाय गढेमें रक्खे. जिस वर्णकी दिशामें बत्ती

श्मोपितं न कुसुमं यस्मिन् प्रम्लायतेऽनुवर्णसमम्। तत्तत् शु-
भस्य च यस्मिन्मनो रमते ॥९५॥ सितरक्तपीतकृष्णा विप्रादीनां प्र-
गन्धश्च भवति यस्या घृतरुधिरान्नाद्यमद्यसमः ॥९६॥ कुशयुक्ता श-
रकाढ्या क्रमेण मही। अनुवर्णं वृद्धिकरी मधुरकषायाम्लकटुका [illegible]
इष्टां मरुद्वीजां गोऽभ्युषितां ब्राह्मणैः प्रशस्तां च। गत्वा [illegible]
सांवत्सरोद्दिष्टे ॥ ९८ ॥ भक्ष्यैर्नानाकारैर्दध्यक्षतसुरभिकुसुमधूपैः [illegible]
दत्त्वा स्थपतिरभ्यर्च्य विप्रांश्च ॥ ९९ ॥ शिरः स्पृष्ट्वा [illegible]
सिराभेदः। शूद्रः पादौ स्पृष्ट्वा कुर्यादिरां गृहारम्भे ॥ १०० ॥ [illegible]
कुर्यान्मध्यमतुल्यायता प्रदेशिन्या। कनकमणिरजतमुक्ताफल [illegible]

[illegible] जाती रहे, वह भूमि उस वर्णको शुभदायी है। [illegible] वर्णोंके रंगके समान अर्थात् सफेद, लाल, पीला और [illegible] गढ़ेमें मांस समभागसे रक्खे और दूसरे दिन देखे, [illegible] गया हो, वह भूमि उस वर्णके लिये शुभ है [illegible] वह भूमि शुभ है, उसमें और कुछ विचारनेकी [illegible] है ॥ ९५ ॥ ब्राह्मणादि चारों वर्णोंके लिये क्रमानुसार [illegible] शुभ है. जिस भूमिमें घी, रुधिर, अन्नादि [illegible] हो, वह ब्राह्मणादि वर्णोंके क्रमसे शुभ है ॥ ९६ ॥ [illegible] और [illegible] अधिक हो, वह ब्राह्मणादि वर्णोंके [illegible]

[illegible]

शुभम् ॥ १०१ ॥ शस्त्रेण शस्त्रमृत्युर्बन्धो लोहेन भस्मनाग्निभयम् । तस्करभयं तृणेन च काष्ठोल्लिखिता च राजभयम् ॥१०२॥ वक्रा पादालिखिता शस्त्रभयक्लेशदा विरूपा च । चर्माङ्गारास्थिकृता दन्तेन च कर्तुरशिवाय ॥१०३॥ वैरमपसव्यलिखिता प्रदक्षिणं सम्पदो विनिर्देश्याः । वाचः परुषा निष्ठीवितं क्षुतं चाशुभं कथितम् ॥ १०४ ॥ अर्द्धनिचितं कृतं वा प्रविशन् स्थपतिर्गृहे निमित्तानि । अवलोकयेद्गृहपतिः क्व संस्थितः स्पृशति किं चाङ्गम् ॥ १०५ ॥ रविदीप्तो यदि शकुनिस्तस्मिन् काले विरौति परुषरवः । संस्पृष्टाङ्गसमानं तस्मिन्देशेऽस्थि निर्देश्यम् ॥ १०६ ॥ शकुनसमयेऽथवान्ये हस्त्यश्वादयोऽ-

---

मोती, दही, फल, पुष्प, अक्षत इनमें किसीसे रेखा करे तो शुभ होता है ॥१०१॥ शस्त्रसे रेखा करे तो शस्त्रसेही गृहस्वामीकी मृत्यु हो, लोहेसे करे तो बंधन, भस्मसे करे तो अग्निभय, तिनकेसे करे तो चोरभय और काठसे गृहारम्भमें रेखा करे तो राज्यभय होता है ॥ १०२ ॥ टेढी, पैरसे खैंची हुई अथवा बुरे रूपकी रेखा हो तो शस्त्रभय और क्लेशदायक है. चमडा, कोयला, अस्थि और दांतसे करी हुई रेखा गृहस्वामीका अशुभ करती है ॥ १०३ ॥ जो रेखा दाहिनी ओरसे बांई ओरको खैंची जाय वह वैर करती है. बांई ओरसे दाहिनी ओरको जो रेखा खैंची जाय वो संपत्ति होती है. गृहारंभके समय कोई कठोर वचन कहे, थूके अथवा छींके वो अशुभ कहा है ॥ १०४ ॥ अध बने व संपूर्ण बने गृहमें प्रवेश करता हुआ कारीगर शुभ अशुभ चिह्न देखे, कि घरका मालिक वास्तुपुरुषके किस अंगपर टिका है और अपने किस अंगको छू रहा है ॥ १०५ ॥ उस काल सूर्यके वश जो दीप्त दिशा हो उसमें टिका हुआ पक्षी रूखे शब्द बोलता हो तो जिस स्थानपर गृहपति स्थित हो वहां नीचे हड्डी गडी है और हड्डीभी उस अंगकी है जो अंग गृहस्वामीने उस समय छू रक्खा है, यह जाने. उदय होनेके समय सूर्य पूर्वदिशामें रहता है. फिर दिन रातके आठ पहरोंमें क्रमानुसार एक एक प्रहर आठों दिशाओंमें सूर्य गमन करता है. जिस दिशाको सूर्य छोड आया हो, वह दिशा अंगारिणी है. जिसमें स्थित हो वह दीप्ता और जिसमें जानेवाला हो वह धूमिता दिशा कहाती है. इन तीनोंको त्याग बाकी पांच दिशा शांता होती हैं ॥ १०६ ॥ शकुन देखनेके समय दीप्त दिशाकी ओर मुख करके हाथी, घोडा, कुत्ता इत्यादि जीव बोले तो जहां गृहस्वामी टिका है उस स्थानमें उन जीवोंके उसी अंगकी हड्डी जाने जो अंग गृहपतिने छू

धन्यमुदक्प्रागपतनं न ग्राह्योऽतोऽन्यथा पतितः ॥ १२१ ॥ छेदो यद्यविकारी ततः शुभं दारु तद्गृहोपयिकम् । पीते तु मण्डले निर्दिशेत् तरोर्मध्यगां गोधाम्
॥ १२२ ॥ मञ्जिष्ठाभे भेको नीले सर्पस्तथारुणे सरटः । मुद्गाभेऽश्मा कपिले तु मूषकोऽम्भश्च खड्गाभे ॥ १२३ ॥ धान्यगोगुरुहुताशसुराणां न स्वपेदुपरि नाप्यनुवंशम् । नोत्तरापरशिरा न च नग्नो नैव चार्द्रचरणः श्रियमिच्छन् ॥ १२४ ॥
भूरिपुष्पनिकरं सतोरणं तोयपूर्णकलशोपशोभितम् । धूपगन्धबलिपूजितामरं ब्राह्मणध्वनियुतं विशेद्गृहम् ॥ १२५ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां वास्तुविद्या नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

पूज बलि देकर दिनमें प्रदक्षिणाके क्रमसे ईशानकोणसे लेकर उस वृक्षको काटे जो वृक्ष कटकर उत्तर अथवा पूर्वदिशामें गिरे तो वह शुभ होता है और दिशामें गिरे तो उसको ग्रहण न करे ॥ १२१ ॥ काटनेके समय वृक्षके कटनेका स्थान विकाररहित हो तो उस वृक्षका काठ घरके लिये शुभ होता है, वृक्षके छेदमें पीले रंगका मण्डल दिखाई दे तो उस वृक्षमें गोहका रहना कहना चाहिये ॥ १२२ मजीठके सदृश लाल रंगका मण्डल दिखाई दे तो मेंडक, नील रंगका मण्डल तो सर्प, रक्त वर्णका मण्डल हो तो गिरगिट, मूंगके रंगका अर्थात् हरा मण्डल दिखाई दे तो पत्थर, कपिल वर्णका मण्डल हो तो चुहा और वृक्षके छेदमें तलवार रंगका मण्डल दिखाई पडे तो वृक्षके बीच जलका होना कहना चाहिये ॥ १२३ लक्ष्मीकी इच्छा करनेवाला पुरुष अन्न, गौ, गुरु, अग्नि और देवताके ऊपर शयन न करे और बांसके नीचे शय्या बिछाकरभी न सोवे, उत्तर अथवा पश्चिमको मस्तक करके न सोवे नग्न अर्थात् धोती खोलकर न सोवे और जलसे भीगे हुए पैर लेकर न सोना चाहिये ॥ १२४ ॥ बहुत पुरुषोंके समूहसे दूषित, तोरणसे युक्त, जल पूर्ण कलशोंसे शोभायमान और जिसमें धूप, गंध, बलि आदिसे देवताओंका पूजन हुआ हो और ब्राह्मण जिसमें वेदध्वनि कर रहे हों ऐसे घरमें प्रवेश करना चाहिये ॥ १२५ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्य्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य–पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां त्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

अथ चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।

उदकार्गल.

धर्म्यं यशस्यं च वदाम्यतोऽहं दकार्गलं येन जलोपलब्धिः। पुंसां यथाङ्गेषु शिरास्तथैव क्षितावपि प्रोन्नतनिम्नसंस्थाः ॥ १ ॥ एकेन वर्णेन रसेन चाम्भश्च्युतं नभस्तो वसुधाविशेषात्। नानारसत्वं बहुवर्णतां च गतं परीक्ष्यं क्षितितुल्यमेव ॥ २ ॥ पुरुहूतानलयमनिर्ऋतिवरुणपवनेन्दुशङ्कराः देवाः। विज्ञातव्याः क्रमशः प्राच्याद्यानां दिशां पतयः ॥ ३ ॥ दिक्पतिसंज्ञाश्च शिरा नवमी मध्ये महाशिरानाम्नी। एताभ्योऽन्याः शतशो विनिसृता नामभिः प्रथिताः ॥ ४ ॥ पातालादूर्ध्वशिरा शुभाश्चतुर्दिक्षु संस्थिता याश्च। कोणदिगुत्था न शुभाः शिरानिमित्तान्यतो वक्ष्ये ॥ ५ ॥ यदि वेतसोऽम्बुरहिते देशे हस्तैस्त्रिभिस्ततः पश्चात्। सार्धे पुरुषे तोयं वहति शिरा पश्चिमा तत्र ॥ ६ ॥ चिह्नमपि चार्ध-

---

अब धर्म और यशको देनेवाला उदकार्गल कहते हैं, जिसके जाननेसे भूमिमें स्थित जलका ज्ञान होता है. मनुष्योंके अंगमें जिस प्रकार नाडी स्थित हैं, वैसेही भूमिमेंभी कहीं ऊंची और कहीं नीची शिरा हैं ॥ १ ॥ आकाशसे वर्षा होनेपर सब एकही स्वादका गिरता है, वह भूमिकी विशेषतासे अनेक रंग और स्वादका हो जाता है, उसकी परीक्षा भूमिके तुल्यही करनी चाहिये अर्थात् जैसी भूमि होगी वैसाही जल होगा ॥ २ ॥ इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, सोम और ईशान यह आठ देवता क्रमानुसार पूर्वादि आठ दिशाओंके स्वामी हैं ॥ ३ ॥ इन आठ दिशाओंके स्वामियोंके नामसे आठ शिरा विख्यात हैं. जैसा ऐन्द्री, आग्नेयी, याम्या इत्यादि और बीचमें एक बडी शिरा महाशिराके नामसे विख्यात है ॥ ४ ॥ इनसे अधिक औरभी सैकडों शिरा निकली हैं, वे अपने अपने नामसे विख्यात हैं. पातालसे जो शिरा सीधी ऊपरको निकलती हो वह और पूर्व आदि चारों दिशाओंमें जो शिरा हो वे शुभ होती हैं. अग्निकोण आदि चार कोणमें जो शिरा हो वे शुभ नहीं होती हैं. अब शिराज्ञान होनेके चिह्न कहते हैं ॥ ५ ॥ जो जलहीन देशमें बेतका वृक्ष हो तो उस वृक्षसे पश्चिमको तीन हाथपर डेढ पुरुष नीचे जल है और वहां पश्चिमकी शिरा बहती है. मनुष्य अपनी भुजा ऊपर करके खड़ा होवे, उसको एक पुरुष कहते हैं, वह एक सौ बीस अंगुल होता है ॥ ६ ॥

पुरुषे मंडूकः पाण्डुरोऽथ मृत्पीता । पुटभेदकश्च तस्मिन् पाषाणो भवति तोय-
मधः ॥ ७ ॥ जम्ब्वाश्चोदगधस्तैस्त्रिभिः शिराधो नरद्वये पूर्वा । मृल्लोहगन्धिका
पाण्डुराथ पुरुषेऽत्र मण्डूकः ॥ ८ ॥ जम्बूवृक्षस्य प्राग्वल्मीको यदि भवेत्सं-
पस्थः । तस्माद्दक्षिणपार्श्वे सलिलं पुरुषद्वये स्वादु ॥ ९ ॥ अर्धपुरुषे च मत्स्यः
पारावतसन्निभश्च पाषाणः । मृद्भवति चात्र नीला दीर्घं कालं बहु च तोयम्
॥ १० ॥ पश्चादुदुम्बरस्य त्रिभिरेव करैर्नरद्वये सार्धे । पुरुषे सितोऽहिरश्मा-
ञ्जनोपमोऽधः शिरा सुजला ॥ ११ ॥ उदगर्जुनस्य दृश्यो वल्मीको यदि तदो-
ऽर्जुनाद्धस्तैः । त्रिभिरम्बु भवति पुरुषैस्त्रिभिरर्धसमन्वितैः पश्चात् ॥ १२ ॥
श्वेता गोधार्धनरे पुरुषे मृद्धूसरा ततः कृष्णा । पीता सिता ससिकता ततो भवे-
न्निर्दिशेदम्भः ॥ १३ ॥ वल्मीकोपचितायां निर्गुण्ड्यां दक्षिणेन कथितकरैः

होता है कि आधा पुरुष खोदनेपर कुछ श्वेत रंगका मेंडक निकलता है, फिर पीले
रंगकी मट्टी निकलती है फिर परतदार पत्थर निकलता है उसके नीचे जल होता है॥७॥
निर्जल देशमें जो जामुनका वृक्ष हो तो उससे तीन हाथ उत्तरको दो पुरुष नीचे
पूर्व शिरा होती है वहां खोदनेसे लोहकी समान गन्धवाली मट्टी निकलती है फिर
पाण्डुरंगकी मट्टी निकलती है और एक पुरुष नीचे मेंडक निकलता है ॥ ८ ॥
जामुनके वृक्षसे पूर्व दिशामें समीपही सांपकी बांबी हो तो उस वृक्षसे तीन हाथ
दक्षिण दो पुरुष नीचे मधुर जल होता है ॥ ९ ॥ आधा पुरुष खोदनेसे मछली
निकलता है, कबूतरके रंगका पत्थर निकलता है, नीली मट्टी यहां होती है और
यहां जल बहुत होता है और अत्यन्त काला रहता है. आचार्यने यहां पुरुष
प्रमाण न कहा, यहां पहला कहा प्रमाण जानना जैसा यहां प्रमाण नहीं कहा है
[illegible] तीन हाथ समझना चाहिये ॥ १० ॥ निर्जल देशमें गूलरका वृक्ष
दिखाई दे तो उससे तीन हाथ पश्चिम अढाई पुरुष नीचे शिरा होती है. एक
पुरुष नीचे श्वेत सांप निकलता है, फिर अंजनके सदृश अत्यन्त कृष्णवर्ण पत्थर
निकलता है, उसके नीचे सुन्दर जलवाली शिरा होती है ॥ ११ ॥ अर्जुनके
[illegible] उत्तर जो बांबी दिखाई दे तो उस अर्जुन वृक्षसे तीन हाथ पश्चिम
[illegible] पुरुष नीचे जल होता है ॥ १२ ॥ आधा पुरुष खोदनेसे श्वेत [illegible]
निकलती है, एक पुरुष नीचे धूसर रंगकी मट्टी निकलती है, फिर काली, [illegible]
[illegible] मट्टी निकलती है, उसके नीचे जल [illegible]
[illegible] ॥ १३ ॥ [illegible] निर्गुण्डी [illegible] हो [illegible]

पुरुषद्वये सपादे स्वादु जलं भवति चाशोष्यम् ॥ १४ ॥ रोहितमत्स्योऽर्धनरे मृत्कपिला पाण्डुरा ततः परतः । सिकता सशर्कराथ क्रमेण परतो भवत्यम्भः ॥ १५ ॥ पूर्वेण यदि बदर्या वल्मीको दृश्यते जलं पश्चात् । पुरुषैस्त्रिभिरादेश्यं श्वेता गृहगोधिकार्धनरे ॥ १६ ॥ सपलाशा बदरी चेद् दिश्यपरस्यां ततो जलं भवति । पुरुषत्रये सपादे पुरुषेऽत्र च दुण्डुभिश्चिह्नम् ॥ १७ ॥ बिल्वोदुम्बरयोगे विहाय हस्तत्रयं तु याम्येन । पुरुषैस्त्रिभिरम्बु भवेत् कृष्णोऽर्धनरे च मण्डूकः ॥ १८ ॥ अर्कोदुम्बरिकायां वल्मीको दृश्यते शिरा तस्मिन् । पुरुषत्रये सपादे पश्चिमदिक्स्था वहति सा च ॥ १९ ॥ आपाण्डुपीतिका मृद्गोरसवर्णश्च भवति पाषाणः । पुरुषार्धे कुमुदनिभो दृष्टिपथं मूषको याति ॥२०॥ जलपरिहीने देशे वृक्षः कम्पिल्लको यदा दृश्यः । प्राच्यां हस्तत्रितये वहति शिरा दक्षिणा प्रथमम् ॥ २१ ॥ मृन्नीलोत्पलवर्णा कापोता चैव दृश्यते

हाथ दक्षिण सवा दो पुरुष नीचे मीठा और कभी न सूखनेवाला जल होता है ॥ १४ ॥ आधा पुरुष खोदनेपर रोहूमछली निकलती है. फिर क्रमानुसार कपिल रंगकी मट्टी, पांडुर रंगकी मट्टी और पत्थरके सूक्ष्म कणोंसे मिला हुआ वालू रेत निकलता है, उसके नीचे जल होता है ॥ १५ ॥ बेरवृक्षके पूर्व जो वल्मीक हो तो उस वृक्षसे तीन हाथ पश्चिम तीन पुरुषके नीचे जल कहना चाहिये. आधा पुरुष खोदनेसे सफेद रंगकी छपकिया निकलती है ॥ १६ ॥ निर्जल देशमें ढाकवृक्षयुक्त वेरी वृक्ष हो तो उससे पश्चिमको तीन हाथपर सवा तीन पुरुष नीचे जल होता है. वहां एक पुरुष खोदनेपर एक प्रकारका -निर्विष सर्प निकलता है यही चिह्न है ॥ १७ ॥ बेलका पेड व गूलरका पेड यह दोनों जहां इकट्ठे हों, उनसे दक्षिण तीन हाथ छोडकर तीन पुरुष नीचे जल होता है और आधा पुरुष खोदनेसे काले रंगका मेंडक निकलता है ॥ १८ ॥ आकगूलरवृक्षके अतिनिकट वल्मीक हो तो उस वल्मीकके नीचेही सवा तीन पुरुष खोदनेसे पश्चिमको बहनेवाली शिरा निकलती है ॥ १९ ॥ पाण्डु और पीत रंगकी मट्टी निकलती है. गोरस (गायका मट्ठा) के समान श्वेतरंगका पत्थर निकलता है और आधे पुरुष नीचे कुमुदके फूलकी सदृश श्वेत रंगका चूहा दिखाई देता है ॥ २० ॥ निर्जल देशमें कपिलवृक्ष दिखाई दे तो, उस वृक्षसे तीन हाथ पूर्वको सवा तीन पुरुषके नीचे दक्षिण शिरा बहती है ॥ २१ ॥ प्रथम नील कमलके रंगकी मट्टी

तस्मिन् । हस्तेऽजगन्धिमत्स्यो भवति पयोऽल्पं च सक्षारम् ॥ २२ ॥ श्योनाकतरोरपरोत्तरे शिरा द्वौ करावतिक्रम्य । कुमुदा नाम शिरा सा पुरुषत्रयवाहिनी भवति ॥ २३ ॥ आसन्नो वल्मीको दक्षिणपार्श्वे विभीतकस्य यदि । अध्यर्धे तस्य शिरा पुरुषे ज्ञेया दिशि प्राच्याम् ॥ २४ ॥ तस्यैव पश्चिमायां दिशि वल्मीको यदा भवेद्धस्ते । तत्रोदग्भवति शिरा चतुर्भिरर्धाधिकैः पुरुषैः ॥ २५ ॥ श्वेतो विश्वम्भरकः प्रथमे पुरुषे तु कुंकुमाभोऽश्मा । अपरस्यां दिशि च शिरा नश्यति वर्षत्रयेऽतीते ॥ २६ ॥ सकुशासित ऐशान्यां वल्मीको यत्र कोविदारस्य । मध्ये तयोर्नरैरर्धपञ्चमैस्तोयमक्षोभ्यम् ॥ २७ ॥ प्रथमे पुरुषे भुजगः कमलोदरसन्निभो मही रक्ता । कुरुविन्दः पाषाणश्चिह्नान्येतानि वाच्यानि ॥ २८ ॥ यदि भवति सप्तपर्णो वल्मीकवृतस्तदुत्तरे तोयम् । वाच्यं पुरुषैः पञ्चभिरत्रापि भवंति चिह्नानि ॥ २९ ॥ पुरुषार्धे मण्डूको हरितो हरितालसन्निभा भूश्च । पाषाणोऽभ्रनिकाशः सौम्या

निकलती है, फिर कबूतरके रंगकी मट्टी दिखाई पडती है, एक हाथ नीचे मछली निकलती है. जिसमें चकोरकी समान दुर्गंध आती है, वहां थोडा और खारा जल निकलता है ॥ २२ ॥ निर्जल देशमें श्योनाकवृक्ष (अलू) दिखाई दे तो उससे दो हाथ वायव्य कोणमें जाकर खोदनेसे तीन पुरुष नीचे क्रमानुसार शिरा निकलती है ॥ २३ ॥ बहेडा वृक्षके समीप बमई हो तो उस वृक्षसे दो हाथ पूर्व डेढ पुरुष नीचे शिरा होती है ॥ २४ ॥ बहेडेके वृक्षके पश्चिम दिशामें बमई हो तो उस वृक्षसे एक हाथ उत्तरको साढे चार पुरुष नीचे शिरा होती है ॥ २५ ॥ प्रथम एक पुरुष खोदनेपर श्वेत रंगका विश्वंभरक (एक प्रकारका जीव) दिखाई देता है. फिर केशरी रंगका पत्थर निकलता है. उसके नीचे पश्चिम दिशाको बहनेवाली शिरा निकलती है. परन्तु तीन वर्षके पीछे वह शिरा नष्ट हो जाती है अर्थात् सूख जाता है ॥ २६ ॥ कोविदारवृक्ष (सप्तपर्ण) के ईशानकोणमें कुश सहित युक्त श्वेतरंगकी मट्टीकी बमई हो तो वहां कोविदारवृक्ष और बल्मीकके मध्यमें साढे पांच पुरुष नीचे बहुत जल होता है ॥ २७ ॥ पहले पुरुषमें कमलपुष्पके मध्य भागकी समान रंगका सर्प निकलता है, लाल वर्णकी भूमि आती है, फिर कुरुविन्दनामक पत्थर निकलता है, यह चिह्न कहने चाहिये ॥ २८ ॥ निर्जल देशमें बमईसे युक्त सप्तपर्णवृक्ष हो तो उससे एक हाथ उत्तर पांच पुरुष नीचे जल कहना चाहिये ॥ २९ ॥ यहांभी चिह्न होते हैं कि आध पुरुष खोदनेसे

च शिरा शुभाऽम्बुवहा ॥ ३० ॥ सर्वेषां वृक्षाणामधःस्थितो दर्दुरो यदा दृश्यः। तस्माद्धस्ते तोयं चतुर्भिरर्धाधिकैः पुरुषैः ॥ ३१ ॥ पुरुषे तु भवति नकुलो नीला मृत्पीतिका ततः श्वेता। दर्दुरसमानरूपः पाषाणो दृश्यते चात्र ॥ ३२ ॥ यद्यहिनिलयो दृश्यो दक्षिणतः संस्थितः करञ्जस्य। हस्तद्वये तु याम्ये पुरुषत्रितये शिरा सार्धे ॥ ३३ ॥ कच्छपकः पुरुषार्धे प्रथमं चोद्भिद्यते शिरा पूर्वा। उदगन्या स्वादुजला हरितोऽश्माऽधस्ततस्तोयम् ॥ ३४ ॥ उत्तरतश्च मधूकादहिनिलयः पश्चिमे तरोस्तोयम्। परिहृत्य पञ्च हस्तान् अर्धाष्टमपौरुषे प्रथमम् ॥ ३५ ॥ अहिराजः पुरुषेऽस्मिन् धूम्रा धात्री कुलत्थवर्णोऽश्मा। माहेन्द्री भवति शिरा वहति सफेनं सदा तोयम् ॥ ३६ ॥ वल्मीकः स्निग्धो दक्षिणेन तिलकस्य सकुशो दूर्वयैव। पुरुषैः पञ्चभिरम्भो दिशि वारुण्यां शिरा पूर्वा ॥ ३७ ॥ सर्पावासः पश्चाद् यदा कदम्बस्य दक्षिणेन जलम्। परतो

मेंडक निकलता है, पीछे हरितालके समान पीले रंगकी भूमि निकलती है, फिर मेघके समान कृष्णवर्ण पत्थर मिलता है. इन सबके नीचे मधुर जलसंयुक्त उत्तर-शिरा होती है ॥ ३० ॥ चाहे जिस वृक्षके नीचे बैठा हुआ मेंडक दिखाई दे तो उस वृक्षसे एक हाथ उत्तर साढे चार पुरुष नीचे जल होता है ॥ ३१ ॥ एक पुरुष नीचे न्योला निकलता है, फिर क्रमानुसार नीली, पीली और श्वेत मट्टी निकलती है, पीछे मेंडकके सदृश रंगका पत्थर दिखलाई पडता है ॥ ३२ ॥ यदि करंजवृक्षके दक्षिणमें वल्मीक दिखलाई पडे तो उस वृक्षसे दो हाथ दक्षिण साढे तीन पुरुष नीचे शिरा होती है ॥ ३३ ॥ आधे पुरुष नीचे कछुआ और फिर पहले पूर्वकी शिरासे जल निकलता है, दूसरी स्वादु जलसे युक्त उत्तर-शिरा बहती है, पहले हरे रंगका पत्थर और उसके नीचे जल होता है ॥ ३४ ॥ महुएके वृक्षसे उत्तर वल्मीक हो तो उस वृक्षसे पश्चिम पांच हाथ छोडकर साढे आठ पुरुष नीचे जल होता है ॥ ३५ ॥ पहला पुरुष खोदनेसे बडा सर्प दिखाई देता है. धूम्रवर्णकी भूमि फिर कुलथीके रंगका पत्थर निकलता है पीछे पूर्वशिरा निकलती है. जिसमें सदा झागदार जल बहता है ॥ ३६ ॥ तिलकवृक्षके दक्षिण कुशा और दूर्वा करके युक्त स्निग्ध वल्मीक हो तो उस वृक्षसे पांच हाथ पश्चिम पांच पुरुष नीचे जल होता है और पूर्वशिरा बहती है ॥ ३७ ॥ कदंबवृक्षके पश्चिममें बमई हो तो उस वृक्षसे तीन हाथ दक्षिण पौने छः पुरुष नीचे जल होता

हस्तत्रितयात् षड्भिः पुरुषैस्तुरीयोनैः ॥ ३८ ॥ कौवेरी चात्र शिरा स्रवति जलं लोहगन्धि चाक्षोभ्यम् । कनकनिभो मण्डूको नरमात्रे मृत्तिका पीता ॥ ३९ ॥ वल्मीकसंवृतो यदि तालो वा भवति नालिकेरो वा । पश्चात् षड्भिर्हस्तैर्नरैश्चतुर्भिः शिरा याम्या ॥ ४० ॥ याम्येन कपित्थस्याऽहिसंभवश्चे- दुदग्जलं वाच्यम् । सप्त परित्यज्य करान् खात्वा पुरुषान् जलं पञ्च ॥ ४१ ॥ कर्बुरकोऽहिः पुरुषे कृष्णा मृत्पुटभिदपि च पाषाणः । श्वेता मृत्पश्चिमतः शिरा ततश्चोत्तरा भवति ॥ ४२ ॥ अश्मन्तकस्य वामे बदरो वा दृश्यतेऽहि- निलयो वा । षड्भिरुदक् तस्य करैः सार्धे पुरुषत्रये तोयम् ॥ ४३ ॥ कूर्मः प्रथमे पुरुषे पाषाणो धूसरः ससिकता मृत् । आदौ शिरा च याम्या पूर्वोत्तरतो द्वितीया च ॥ ४४ ॥ वामेन हरिद्रतरोर्वल्मीकश्चेत्ततो जलं पूर्वे । हस्तत्रितये पुरुषैः सत्र्यंशैः पञ्चभिर्भवति ॥ ४५ ॥ नीलो भुजगः पुरुषे मृत्पीता मरकतो- पमश्चाश्मा । कृष्णा भूः प्रथमं वारुणी शिरा दक्षिणे चान्या ॥४६॥ जलरहिते

है ॥ ३८ ॥ वहां उत्तराशिरा निकलती है, जल बहुत होता है, परन्तु उसमें लोह गन्ध आता है, एक पुरुष खोदनेसे सुवर्णके रंगका मेंडक और फिर पीली म[ट्टी] निकलती है ॥ ३९ ॥ बमईसे घिरा हुआ ताडका पेड अथवा नारियलका [वृक्ष] हो तो उस वृक्षसे छः हाथ पश्चिमको चार पुरुष नीचे दक्षिणशिरा होती है ॥४० [॥] कैथके वृक्षसे दक्षिण वल्मीक हो तो उस वृक्षसे उत्तर सात हाथ छोडकर [खोद]नेसे पांच पुरुष नीचे जल मिलता है ॥ ४१ ॥ एक पुरुष नीचे चित्रवर्णका स[र्प] और काली मट्टी, परतदार पत्थर फिर श्वेत मृत्तिका निकलती है, पीछे उत्तराशि[रा] मिलती है ॥ ४२ ॥ अश्मंतकवृक्षके बांई ओर बेरका वृक्ष हो अथवा वल्मीक हो तो उस अश्मंतकवृक्षसे छः हाथ उत्तरको साढे तीन पुरुष नीचे जल होता ॥ ४३ ॥ पहिला पुरुष खोदनेसे कछुआ, फिर धूसरवर्णका पत्थर और रेत मिली हुई मट्टी फिर पहले दक्षिणशिरा निकलती है और पीछे ईशानकोणकी शिरा निक[ल]ती है ॥ ४४ ॥ हरिद्र (हलदुआ) वृक्षकी बांई ओर वल्मीक हो तो उस वृक्षसे तीन हाथ पूर्व एक तिहाई सहित पांच पुरुष नीचे जल होता है ॥ ४५ ॥ एक पुरुष नीचे नीला सर्प, फिर पीली मट्टी, हरे रंगका पत्थर और काली भूमि निकलती है. फिर पहिले पश्चिमशिरा निकलती है और दूसरी दक्षिणशिरा निक[ल]ती है ॥ ४६ ॥ निर्जल देशमें जहां बहुत जलवाले देशके चिह्न दिखाई दें

देशे दृश्यन्तेऽनूपजानि चिह्नानि। वीरणदूर्वा मृदवश्च यत्र तस्मिन् जलं पुरुषे ॥ ४७॥ भार्ङ्गी त्रिवृता दन्ती शूकरपादी च लक्ष्मणा चैव। नवमालिका च हस्तद्वयेऽम्बु याम्ये त्रिभिः पुरुषैः ॥ ४८ ॥ स्निग्धाः प्रलम्बशाखा वामनविटपद्रुमाः समीपजलाः। सुषिरा जर्जरपत्रा रूक्षाश्च जलेन सन्त्यक्ताः ॥ ४९ ॥ तिलकाम्रातकवरुणकभल्लातकबिल्वतिन्दुकाङ्कोल्लाः। पिण्डारशिरीषांजनपरूषका वञ्जुलाऽतिबलाः ॥ ५० ॥ एते यदि सुस्निग्धा वल्मीकैः परिवृतास्ततस्तोयम्। हस्तैस्त्रिभिरुत्तरतश्चतुर्भिरर्धेन च नरस्य ॥५१॥ अतृणे सतृणा यस्मिन् सतृणे तृणवर्जिता मही यत्र। तस्मिन् शिरा प्रदिष्टा वक्तव्यं वा धनं तस्मिन् ॥ ५२ ॥ कण्टक्यकण्टकानां व्यत्यासेऽम्भस्त्रिभिः करैः पश्चात्। खात्वा पुरुषत्रितयं त्रिभागयुक्तं धनं वा स्यात् ॥ ५३ ॥ नदति मही गम्भीरं यस्मिंश्चरणाहता जलं तस्मिन्। सार्धैस्त्रिभिर्मनुष्यैः कौबेरी तत्र च शिरा स्यात् ॥ ५४ ॥ वृक्षस्यैका शाखा यदि विनता भवति पाण्डुरा वा

वीरण (गांडर) और दूर्वा जहां अत्यन्त कोमल हों, वहां एक पुरुष नीचे जल होता है ॥ ४७ ॥ भारंगी, निसोत, दंती (दात्यूणी), सूकरपादी, लक्ष्मणा, मालती यह औषधे जहां हो, इनसे दो हाथ दक्षिणको तीन पुरुष नीचे जल होता है ॥ ४८ ॥ जहां स्निग्ध लंबी शाखाओंसे युक्त छोटे २ और फैले हुए वृक्ष हों, वहां जल समीप होता है और छिद्रयुक्त जर्जर पत्तोंवाले और रूखे वृक्ष जहां हों वहां जल नहीं होता ॥ ४९ ॥ जहां तिलक, अंबाडा, वरुण, भिलावा, बेल, तेंदु, अंकोल, पिंडार, शिरस, अंजन, फालसा, अशोक और अतिबला ॥ ५० ॥ यह पेड अत्यन्त स्निग्ध वल्मीकोंसे घिरे हों, वहां इन वृक्षोंसे तीन हाथ उत्तर साढे चार पुरुष नीचे जल होता है ॥ ५१ ॥ जिस भूमिमें कहीं तृण न हों और बीचमें एक स्थान तृणयुक्त दिखाई दे या सब भूमिमें तृण हो और एक स्थान तृणहीन हो तो उस स्थानमें साढे चार पुरुष नीचे शिरा होती है या धन गढा होता है, यह कहना चाहिये ॥ ५२ ॥ जहां कांटेवाले वृक्षोंमें एक वृक्ष विना कांटेवाला अथवा विना कांटेवाले वृक्षोंमें एक वृक्ष कांटेवाला हो तो उस वृक्षसे तीन हाथ पश्चिमको एक तिहाई युक्त तीन पुरुष खोदनेसे जल अथवा धन निकलता है ॥ ५३ ॥ जहां पैरके ताडन करनेसे भूमिमें गंभीर शब्द हो, वहां साढे तीन पुरुष नीचे जल होता है और उत्तरशिरा निकलती है ॥५४॥ वृक्षकी एक शाखा भूमिकी ओर झुक रही हो, या पीली पड गई हो तो उस शाखाके नीचे

स्यात् । विज्ञातव्यं शाखातले जलं त्रिपुरुषं खात्वा ॥ ५५ ॥ फलकुसु
विकारो यस्य तस्य पूर्वे शिरा त्रिभिर्हस्तैः । भवति पुरुषैश्चतुर्भिः पानीयं
क्षितिः पीता ॥ ५६ ॥ यदि कण्टकारिका कण्टकैर्विना दृश्यते सितैः कुसु
तस्यास्तलेऽम्बु वाच्यं त्रिभिर्नरैरर्धपुरुषे च ॥ ५७ ॥ खर्जूरी द्विशिरस्का
भवेज्जलविवर्जिते देशे । तस्याः पश्चिमभागे निर्देश्यं त्रिपुरुषे वारि ॥ ५८ ॥
यदि भवति कर्णिकारः सितकुसुमः स्यात्पलाशवृक्षो वा । सव्येन तत्र हस्त
येऽम्बु पुरुषत्रये भवति ॥ ५९ ॥ ऊष्मा यस्यां धात्र्यां धूमो वा तत्र वा
नरयुग्मे । निर्देष्टव्या च शिरा महता तोयप्रवाहेण ॥ ६० ॥ यस्मिन् क्षे
देशे जातं सस्यं विनाशमुपयाति । स्निग्धमतिपाण्डुरं वा महाशिरा न
युगे तत्र ॥ ६१ ॥ मरुदेशे भवति शिरा यथा तथातः परं प्रवक्ष्यामि । ग्रीवा
करभाणामिव भूतलसंस्थाः शिरा यान्ति ॥ ६२ ॥ पूर्वोत्तरेण पीलोः
वल्मीको जलं भवति पश्चात् । उत्तरगमना च शिरा विज्ञेया पञ्चभिः पुरु
॥ ६३ ॥ चिह्नं दर्दुर आदौ मृत्कपिलातः परं भवेद्धरिता । भवति च पुरु

तीन पुरुष खोदनेसे जल निकलता है ॥ ५५ ॥ जिस पेडके फल और पुष्पों
विकार हो, उस वृक्षसे तीन हाथ पूर्व चार पुरुष नीचे शिरा होती है, नीचे पत्थर
निकलता है और भूमि पीले पीले रंगकी होती है ॥ ५६ ॥ जहां कटेरीका वृ
कांटोंसे रहित और श्वेत पुष्पोंसे युक्त दिखा दे उसके नीचे साढे तीन पुरुष
खोदनेसे जल निकलता है ॥ ५७ ॥ जिस निर्जल देशमें खजूरका दो शिराका वृ
हो, वहां उस खजूरसे दो हाथ पश्चिमको तीन पुरुष नीचे जल रहता है
॥ ५८ ॥ श्वेत पुष्पवाला कर्णिकारवृक्ष अथवा ढाकका वृक्ष हो तो उससे दो
हाथ दक्षिणको तीन पुरुष नीचे जल होता है ॥ ५९ ॥ जिस भूमिमें भाफ व
धूंआ निकलता दिखाई दे तो वहां दो पुरुष नीचे बहुत जल बहनेवाली शिरा क
चाहिये ॥ ६० ॥ जिस खेतमें खेती उत्पन्न होकर नाश हो जाय अथवा
स्निग्ध खेती हो या खेती उत्पन्न होकर पीली पड जाय वहां दो पुरुष नीचे
बहुतही जल होता है ॥ ६१ ॥ मारवाड देशमें जिस भांति शिरा होती है
कहते हैं. ऊंटकी ग्रीवाकी भांति भूमिमें नीची ऊंची शिरा जाती है ॥ ६२
पीलूवृक्ष (जाल) के ईशानकोणमें वल्मीक हो तो उस वल्मीकसे
चार हाथ पश्चिमको पांच पुरुष नीचे उत्तर बहनेवाली शिरा होती है ॥ ६३
वहां खोदनेमें पहिले पुरुषमें मेंढक, फिर कपिल व फिर हरी

पोऽश्मा तस्य तले वारि निर्देश्यम् ॥ ६४ ॥ पीलोरेव प्राच्यां वल्मीकोऽतोऽध-
पञ्चमैर्हस्तैः । दिशि याम्यायां तोयं वक्तव्यं सप्तभिः पुरुषैः ॥ ६५॥ प्रथमे पुरुषे
भुजगः सितासितो हस्तमात्रमूर्तिश्च । दक्षिणतो वहति शिरा सक्षारं भूरि पानी-
यम् ॥ ६६ ॥ उत्तरतश्च करीराद्दहिनिलये दक्षिणे जलं स्वादु । दशभिः पुरुषै-
र्ज्ञेयं पुरुषे पीतोऽत्र मण्डूकः ॥ ६७ ॥ रोहीतकस्य पश्चादहिवासश्चेत्त्रिभिः करै-
र्याम्ये । द्वादश पुरुषान् खात्वा सक्षारा पश्चिमेन शिरा ॥ ६८ ॥ इन्द्रतरोर्व-
ल्मीकः प्राग्दृश्यः पश्चिमे शिरा हस्ते । खात्वा चतुर्दश नरान् कपिला गोधा
नरे प्रथमे ॥ ६९ ॥ यदि वा सुवर्णनाम्नस्तरोर्भवेद्वामतो भुजङ्गगृहम् । हस्त-
द्वये तु याम्ये पञ्चदशनरावसानेऽम्बु ॥ ७० ॥ क्षारं पयोऽत्र नकुलोऽर्धमानवे
ताम्रसन्निभश्चाश्मा । रक्ता च भवति वसुधा वहति शिरा दक्षिणा तत्र ॥ ७१ ॥
बदरीरोहितवृक्षौ संपृक्तौ चेद्विनापि वल्मीकम् । हस्तत्रयेऽम्बु पश्चात् षोडश-
भिर्मानवैर्भवति ॥ ७२ ॥ सुरसं जलमादौ दक्षिणा शिरा वहति चोत्तरेणान्या ।

और पत्थर निकलता है इन सब सब चिह्नोंके नीचे जल होता है ॥ ६४ ॥
पीलुवृक्षकेही पूर्वदिशामें वल्मीक हो तो उस वृक्षसे साढे चार हाथ दक्षिणको सात
पुरुष नीचे जल कहना चाहिये ॥ ६५॥ पहले पुरुषमें श्वेत कृष्ण रंगका एक हाथ
लम्बा सर्प, फिर बहुतसा खारा जल बहनेवाली दक्षिणशिरा निकलती है ॥ ६६ ॥
करीरवृक्षके उत्तर वल्मीक हो तो उस वृक्षके साढे चार हाथ दक्षिणको दश पुरुष
नीचे मधुर जल जानना चाहिये. यहां एक पुरुष खोदनेसे पीले रंगका मेंडक
निकलता है ॥ ६७ ॥ रोहीतकवृक्ष (रुहीडा) के पश्चिममें वल्मीक हो तो उस
वृक्षसे तीन हाथ दक्षिणको बारह पुरुष खोदनेसे खारा जल बहनेवाली, पश्चिम-
शिरा निकलती है ॥ ६८ ॥ अर्जुनवृक्षके पूर्वमें वल्मीक दिखाई दे तो उस वृक्षसे
एक हाथ पश्चिमको चौदह पुरुष खोदनेसे शिरा निकलती है. यहां पहिले पुरु-
षमें कपिल रंगकी गोह दिखाई देती है ॥ ६९ ॥ जो धतूरावृक्षके वामभागमें
वल्मीक हो तो उस वृक्षसे दो हाथ दक्षिणको पन्द्रह पुरुष नीचे जल होता
है ॥ ७० ॥ वह जल खारा होता है आध पुरुष नीचे न्योला और तांबेके रंगका
पत्थर, लाल रंगकी भूमि मिलती है ... १ ॥
बेर और रुहीडा यह दोनों वृक्ष जो ... उन
वृक्षोंसे तीन हाथ पश्चिमको सोलह पुरुष नीचे जल होता है ॥ ७२ ॥ यहां जल
अत्यन्त मधुर होता है. पहिले दक्षिण शिरा और पीछे दूसरी उत्तर शिरामी बहती

पिष्टनिभः पाषाणो मृच्छ्वेता वृश्चिकोऽर्धनरे ॥ ७३ ॥ सकरीरा चेद्बदरी त्रिभिः
करैः पश्चिमेन तत्राम्भः । अष्टादशभिः पुरुषैरैशानी बहुजला च शिरा ॥७४॥
पीलुसमेता बदरी हस्तत्रयसंमिते दिशि प्राच्याम् । विंशत्या पुरुषाणामशोष्यं
तोयोऽत्र सक्षारम् ॥ ७५ ॥ ककुभकरीरावेकत्र संयुतौ यत्र ककुभबिल्वौ वा ।
हस्तद्वयेऽम्बु पश्चान्नरैर्भवेत्पञ्चविंशत्या ॥ ७६ ॥ वल्मीकमूर्धनि यदा दूर्वा
कुशाश्च पाण्डुराः सन्ति । कूपो मध्ये देयो जलमत्र नरैकविंशत्या ॥ ७७ ॥
भूमौ कदम्बकयुता वल्मीके यत्र दृश्यते दूर्वा । हस्तत्रयेण याम्ये नरैः
पञ्चविंशत्या ॥ ७८ ॥ वल्मीकत्रयमध्ये रोहीतकपादपो यदा भवति । नाना
वृक्षैः सहितस्त्रिभिर्जलं तत्र वक्तव्यम् ॥ ७९ ॥ हस्तचतुष्के मध्यात् षोडश
भिश्चांगुलैरुदग्वारि । चत्वारिंशत्पुरुषान् खात्वाश्मातः शिरा भवति ॥ ८० ॥
ग्रन्थिप्रचुरा यस्मिञ्छमी भवेदुत्तरेण वल्मीकः । पश्चात्पञ्चकरान्ते पञ्चा
शत्संख्यकैः सलिलम् ॥ ८१ ॥ एकस्थाः पञ्च यदा वल्मीका मध्यमो भवेच्छ्वेतः

है. आटेके समान श्वेत रंगका पत्थर, श्वेत मृत्तिका और आध पुरुष नीचे बिच्छू
दिखाई देता है ॥ ७३ ॥ जो करीरवृक्षके साथ बेरीका वृक्ष हो तो उन वृक्षोंसे तीन
हाथ पश्चिम अठारह पुरुष खोदनेसे जल निकलता है, वहां बहुत जलवाली
ईशानाशिरा होती है ॥ ७४ ॥ पीलुवृक्षके सहित बेरका वृक्ष हो तो उनसे तीन
हाथ पूर्वको बीस पुरुष नीचे खारा जल होता है, जो कभी नहीं सूखता ॥ ७५ ॥
जहां अर्जुनवृक्ष और करीरवृक्ष इकट्ठे हों अथवा अर्जुन वृक्ष और बेलवृक्ष
इकट्ठे हों तो उनसे दो हाथ पश्चिमको पचीस पुरुष नीचे जल होता है ॥ ७६ ॥
जो वल्मीकके ऊपर दूब और श्वेत रंगके कुश हों तो उस वल्मीकके नीचे कुंआ
खोदनेसे इक्कीस पुरुष नीचे जल निकलता है ॥ ७७ ॥ जहांपर भूमिमें कदम्ब
वृक्ष लगे हों और वल्मीकके ऊपर दूब दिखाई दे, वहां उस कदम्बवृक्षसे तीन हाथ
दक्षिणको पचीस पुरुष नीचे जल होता है ॥ ७८ ॥ तीन वल्मीकोंके बीच में
नानाके तीन वृक्षोंसे युक्त रोहीडेका वृक्ष हो तो वहां जल कहना चाहिये ॥ ७९ ॥
मध्यम स्थित रोहीडेके वृक्षसे चार हाथ और सोलह अंगुल उत्तरको चालीस पुरुष
खोदनेसे पत्थर निकलता है. उसके नीचे शिरा होती है ॥ ८० ॥ जहां बहुत
गांठोंवाला शमीवृक्ष हो और उसके उत्तर वल्मीक हो तो शमी वृक्षसे पांच हाथ
पश्चिममें पचास पुरुष नीचे जल होता है ॥ ८१ ॥ एक स्थानमें पांच वल्मीक हैं

तस्मिन् शिरा प्रदिष्टा नरपञ्चा पञ्चवर्जितया ॥ ८२ ॥ सपलाशा यत्र शमी पश्चिमभागेऽम्बु मानवैः षष्ट्या। अर्धनरेऽहि प्रथमं सवालुका पीतमृत्परतः ॥ ८३ ॥ वल्मीकेन परिवृतः श्वेतो रोहीतको भवेद्यस्मिन्। पूर्वेण हस्तमात्रे सप्तत्या मानवैरम्बु ॥ ८४ ॥ श्वेता कण्टकबहुला यत्र शमी दक्षिणेन तत्र पयः। नरपञ्चकसंयुतया सप्तत्याहिर्नरार्धे च ॥ ८५ ॥ मरुदेशे यच्चिह्नं न जाङ्गले तैर्जलं विनिर्देश्यम्। जम्बूवेतसपूर्वे ये पुरुषास्ते मरौ द्विगुणाः ॥८६॥ जम्बूस्त्रिवृता मूर्वा शिशुमारी सारिवा शिवा श्यामा। वीरुधयो वाराही ज्योतिष्मती च गरुडवेगा ॥ ८७ ॥ सूकरिकमाषपर्णी व्याघ्रपदाश्चेति यद्यहेर्निलये। वल्मीकादुत्तरतस्त्रिभिः करैस्त्रिपुरुषे तोयम् ॥ ८८ ॥ एतदनूपे वाच्यं जाङ्गलभूमौ तु पञ्चभिः पुरुषैः। एतैरेव निमित्तैर्मरुदेशे सप्तभिः कथयेत् ॥ ८९ ॥

उनके मध्यका वल्मीक श्वेत वल्मीकमें पचपन पुरुष खोदनेसे जलकी शिरा निकलती है ॥ ८२ ॥ जहां पलाशवृक्षयुक्त शमी वृक्ष हों, वहां उन वृक्षोंसे पांच हाथ पश्चिम साठ पुरुष नीचे जल होता है. प्रथम आध पुरुष खोदनेसे सर्प और पीछे वालू मिली हुई पीली मट्टी निकलती है ॥ ८३ ॥ जहां वल्मीकसे घिरा हुआ श्वेत रंगका रुहीडेका वृक्ष हो वहां उस वृक्षसे एक हाथ पूर्वको सत्तर पुरुष नीचे जल होता है ॥ ८४ ॥ जहां बहुत कांटोंसे युक्त श्वेत शमीवृक्ष हो, वहां उस वृक्षसे एक हाथ दक्षिणको पचहत्तर पुरुष नीचे जल होता है और आध पुरुष खोदनेपर सर्प निकलता है ॥ ८५ ॥ मरुदेशमें जलज्ञानके जो यह चिह्न कहे इन चिह्नोंसे जांगलदेशमें जल नहीं कहना चाहिये अर्थात् जांगल देशमें इन चिह्नोंसे जलका ज्ञान नहीं होता. जामन, वेदमजनूं आदि वृक्षोंके चिह्नोंसे प्रथम जलज्ञान कहा, यह चिह्न मरुदेशमें दिखाई दे तो जितने पुरुष नीचे पहले उन चिह्नोंसे जल कहा, वे पुरुष यहांपर दूने कहने योग्य है. बहुतही जलवाले देशको अनूपक कहते हैं, जलके अभाववाला देश मरुस्थल कहाता है, इन दोनोंसे अलग जो देश हो अर्थात् जहां बहुत अधिक और अत्यन्त कम जल न होय, वह जांगल देश है. इस भांति तीन प्रकारके देश होवे हैं ॥ ८६ ॥ जामन, निसोत, मूर्वा, शिशुमार, शारिवन, शिवा, श्यामा, वाराहीकंगनी, गरुडवेगा ॥ ८७ ॥ सूकरिका, माषपर्न और व्याघ्रपदा (बघनखी) यह औषधी जो वल्मीकके ऊपर हो तो उस वल्मीकसे तीन हाथ उत्तरको तीन पुरुष नीचे जल होता है ॥ ८८ ॥ तीन पुरुष नीचे जलकी बात अनूप देशमें कहनी चाहिये. जो यह चिह्न जांगलदेशमें

एकनिभा यत्र मही तृणतरुवल्मीकगुल्मपरिहीना। तस्यां यत्र विकारो भवे
धरित्र्यां जलं तत्र॥ ९०॥ यत्र स्निग्धा निम्ना सवालुका सानुनादिनी वा
स्यात्। तत्रार्धपञ्चमैर्वारि मानवैः पञ्चभिर्यदि वा॥ ९१॥ स्निग्धतरूणां दक्षि
णतश्चतुर्भिर्जलं प्रभूतं च। तरुगहनेऽपि हि विकृतो यस्तस्मात्तद्वदेव वदेत्॥९२॥
नमते यत्र धरित्री सार्धे पुरुषेऽम्बु जाङ्गलानूपे। कीटा वा यत्र विनालयेन ब
होऽम्बु तत्रापि॥ ९३॥ उष्णा शीता च मही शीतोष्णाम्भस्त्रिभिर्नरैः सार्धे।
इन्द्रधनुर्मत्स्यो वा वल्मीको वा चतुर्हस्तात्॥ ९४॥ वल्मीकानां पंक्त्यां
यद्येकोऽभ्युच्छ्रिताः शिरा तदधः। शुष्यति न रोहते वा सस्यं यस्यां च तद
ऽम्भः॥ ९५॥ न्यग्रोधपलाशोदुम्बरैः समेतैस्त्रिभिर्जलं तदधः। वटपिप्पल

दिखाई दें तो तीन पुरुषके स्थानमें पांच पुरुष नीचे जल कहे. इनही चिह्नोंके मरुस्थलमें देखनेसे सात पुरुष नीचे जल बतावे॥ ८९॥ एकरंगकी भूमिमें जो तृण, वृक्ष, वल्मीक और गुल्म नहीं हों, ऐसी भूमि जहां विकारयुक्त अर्थात् और प्रकारकी दिखाई दे, वहां पांच पुरुष नीचे जल होता है (भूमिमें एकही जगे बहुतसी शाखायुक्त समूहके उत्पन्न होनेको गुल्म कहते हैं)॥ ९०॥ जहां स्निग्ध नीची वालु रेतदार या जहां पैर रखनेसे शब्द हो, ऐसी भूमि हो तो वहां साढे चार पुरुष नीचे अथवा पांच पुरुष नीचे जल होता है॥९१॥ जहां बहुतसे स्निग्ध वृक्ष हों, वहां उन वृक्षोंसे दक्षिण चार पुरुष नीचे बहुतसे जल होना कहना चाहिये और बहुतसे वृक्षोंमें एक वृक्ष विकृत हो अर्थात् उसके फल पुष्प औरही प्रकारके हों तो उस वृक्षसे दक्षिणको चार पुरुष नीचे जल होता है॥ ९२॥ जिस जांगल या जिस अनूप देशमें पांव रखनेसे भूमि दब जाय वहां डेढ पुरुष नीचे जल होता है और जहां बहुतसे कीडे दिखाई दें और उनके रहनेका घर मट्टक न हो वहांभी डेढ पुरुष नीचे जल होता है॥ ९३॥ जहां सब भूमि गरम हो और एक देशमें ठण्डी हो वहां या जहां सब भूमि शीतल हो और एक जगह गरम हो वहां साढे तीन पुरुष नीचे जल रहता है, इन्द्रधनुष, मत्स्य या वल्मीक जहां जांगल अथवा अनूप देशमें दिखाई दे, वहां चार हाथ नीचे जल होता है॥ ९४॥ जहां जांगल या अनूप देशमें बहुतसे वल्मीकोंकी पांति हो, उनमें एक वल्मीक सबसे ऊंचा हो तो उस ऊंचे वल्मीकके नीचे चार हाथ खोदनेसे शिरा निकलती है और जहां खेती जमकर सूख जाय या जमेही नहीं, वहांभी चार हाथ नीचे जल होता है॥ ९५॥ बड, पीपल और गूलर यह तीन वृक्ष जहां इकट्ठे हों

चापे तद्वद्वाच्यं शिरा चोदक् ॥ ९६ ॥ आग्नेये यदि कोणे ग्रामस्य पुरस्य वा भवति कूपः । नित्यं स करोति भयं दाहं च समानुषं प्रायः ॥ ९७ ॥ नैर्ऋतकोणे बालक्षयं वनिताभयं च वायव्ये । दिक्त्रयमेतत्त्यक्त्वा शेषासु शुभावहाः कूपाः ॥ ९८ ॥ सारस्वतेन मुनिना दकार्गलं यत्कृतं तदवलोक्य । आर्याभिः कृतमेतद् वृत्तैरपि मानवं वक्ष्ये ॥ ९९ ॥ स्निग्धा यतः पादपगुल्मवल्यो निश्छिद्रपत्राश्च ततः शिरास्ति । पद्मेक्षुरोशीरकुलाः सगुण्ड्राः काशाः कुशा वा नलिका नलो वा ॥ १०० ॥ खर्जूरजम्ब्वर्जुनवेतसाः स्युः क्षीरान्विता वा द्रुमगुल्मवल्ल्यः । छत्रेभनागाः शतपत्रनीपाः स्युर्नक्तमालाश्च ससिन्दुवाराः ॥ १०१ ॥ विभीतको वा मदयन्तिका वा यत्रास्ति तस्मिन् पुरुषत्रयेऽम्भः । स्यात्पर्वतस्योपरि पर्वतोऽन्यस्तत्रापि मूले पुरुषत्रयेऽम्भः ॥ १०२ ॥ या मौञ्जकैः काशकुशैश्च युक्ता नीला च मृद्यत्र सशर्करा च । तस्यां प्रभूतं सुरसं च तोयं कृष्णा-

---

वहां इन वृक्षोंके नीचे तीन हाथ खोदनेसे जल निकलता है और जहां बड, पीपल दोनों इकट्ठे हों, उनकेभी तीन हाथ नीचे खोदनेसे जल निकलता है. इन दोनों स्थानोंमें उत्तर शिरा होती है ॥ ९६ ॥ गांवसे अथवा नगरसे अग्निकोणमें कुआँ हो तो नित्य भय देता है और प्रायः ग्राम और नगरमें अग्नि लगती है, जिसमें मनुष्यभी जल जाते हैं ॥ ९७ ॥ नैर्ऋत्यकोणमें कुआँ हो तो बालकोंका क्षय होता है. वायव्यकोणमें कूप हो तो स्त्रियोंको भय होता है. यह तीन दिशा छोडकर बाकी पांच दिशाओंमें कूप शुभ होते हैं ॥ ९८ ॥ सारस्वतमुनिने जो उदकार्गल कहा है, वह देखकर यह उदकार्गल हमने आर्याछन्दके द्वारा कहा. अब मनुका कहा उदकार्गलभी वृत्तोंमें कहते हैं ॥ ९९ ॥ वृक्ष, गुल्म और वल्ली जिस भूमिमें स्निग्ध हों और छिद्रहीन पत्तोंसे युक्त हों, वहां तीन पुरुष नीचे शिरा होती है या स्थलपद्म, गोखरू, खस, कुल, गंड्र (शर), काश, कुश, नालिका, नल यह तृण ॥ १०० ॥ और खजूर, जामन, अर्जुन, वेतस वृक्ष हों या जहां वृक्ष, गुल्म और वल्ली ऐसे हों, जिनमें दूध निकले अथवा छत्री, हस्तिकर्णी, नागकेसर, कमल, कदम्ब, नक्तमाल, सिंधुवार ॥ १०१ ॥ बहेडे और मदयन्तिका जहां हो वहां तीन पुरुष नीचे जल होता है और जहां एक पर्वतके ऊपर दूसरा पर्वत हो वहांभी ऊपरके पर्वतके मूलमें तीन पुरुष नीचे जल होता है ॥ १०२ ॥ मूंज, काश और कुश करके जो भूमि युक्त हो; जहां पत्थरकी कणिकाओंसे मिली नीली मट्टी हो तो वहां बहुत और मीठा जल होता है, जहां काली या लाल

थवा यत्र च रक्तमृद्वा ॥ १०३ ॥ सशर्करा ताम्रमही कषायं क्षारं
कपिला करोति । आपाण्डुरायां लवणं प्रदिष्टं मिष्टं [illegible]
॥ १०४ ॥ शाकाश्वकर्णार्जुनविल्वसर्जा श्रीपर्ण्यरिष्टाधवशिंशपाश्च ।
पर्णैर्द्रुमगुल्मवल्ल्यो रूक्षाश्च दूरेऽम्बु निवेदयन्ति ॥ १०५ ॥ सूर्या-
ग्न्यनुवर्णा या निर्जला सा वसुधा प्रदिष्टा । रक्तांकुराः क्षीरयुताः करीरा
धरा चेज्जलमश्मनोऽधः ॥ १०६ ॥ वैदूर्यमुद्गाम्बुदमेचकाभा पाकोन्मुखो-
दुम्बरसन्निभा वा । भृङ्गाञ्जनाभा कपिलाथवा या ज्ञेया शिला भूरिजला
॥ १०७ ॥ पारावतक्षौद्रघृतोपमा वा क्षौमस्य वस्त्रस्य च तुल्यवर्णा ।
सोमवल्ल्याश्च समानरूपा साप्याशु तोयं कुरुतेऽक्षयं च ॥ १०८ ॥ ताम्रैः
समेता पृषतैर्विचित्रैरापाण्डुभस्मोष्ट्रखरानुरूपा । भृङ्गोपमाङ्गुष्ठिकपुष्प-
सूर्याग्निवर्णा च शिला वितोया ॥ १०९ ॥ चन्द्रातपस्फटिकमौ-

मही हो वहांभी बहुत और मधुर जल होता है ॥ १०३ ॥ ताम्र (कं-
कणोंसे मिली हुई तांबेके रंगकी) भूमि हो तो उसमें कसीले स्वादका जल
है. कपिल रंगकी भूमिमें खारा पानी होता है. पांडुरंगकी भूमिमें
स्वादका जल निकलता है और नीले रंगकी भूमिमें मीठा जल होता है ॥
शाक, अश्वकर्ण, अर्जुन, बिल्व, सर्ज, श्रीपर्णी, अरिष्ट, और [illegible]
जहां छेदवाले पत्तोंसे युक्त हों और जहां वृक्ष, गुल्म, बेलेंभी [illegible]
और रूखी हों वहां जल बहुत दूर होता है ॥ १०५॥ जो भूमि सूर्य, [illegible]
ऊंट, गर्दभके रंगकी हो वह भूमि जलहीन होती है और जिस [illegible]
लाल रंगके अंकुरोंदार करीर वृक्ष हों और उन वृक्षोंमें दूध निकलता हो [illegible]
के नीचे जल होता है ॥ १०६ ॥ वैदूर्य मणि, मुद्ग (मूंग) और [illegible]
जो शिला कृष्णवर्ण हो पकेहुए गूलरके समान रंग हो, जो शिला [illegible]
समान आभावाले रंगकी निकले या कपिल वर्ण हो उस शिलाके [illegible]
जल होता है ॥ १०७ ॥ जो शिला पारावत (कबूतर), शहद, [illegible]
[illegible] या जो वस्त्रके वानमें आनेवाली सोमलताके समान [illegible]
[illegible] अक्षय जल करती है ॥ १०८ ॥ तांबेके रंगके [illegible]
बिन्दुओंसे युक्त जो शिला हो, पांडुरंगकी हो, [illegible]
[illegible] हो, सूर्य या अग्निके समान [illegible] हो उस शिलामें [illegible]
[illegible] है ॥ १०९ ॥ चन्द्रमाकी चांदनी, स्फटिक, मोती, सुवर्ण [illegible]

याश्चेन्द्रनीलमणिहिङ्गुलकाञ्जनाभाः । सूर्योदयांशुहरितालनिभाश्च याः
ाः शोभना मुनिवचोऽत्र च वृत्तमेतत् ॥ ११० ॥ एता ह्यभेद्याश्च शिलाः
श्च यक्षैश्च नागैश्च सदाभिजुष्टाः । येषां च राष्ट्रेषु भवन्ति राज्ञां तेषामवृ-
र्भवेत्कदाचित् ॥ १११ ॥ भेदं यदा नैति शिला तदानीं पालाशकाष्ठैः
तिन्दुकानाम् । प्रज्वालयित्वानलमग्निवर्णा सुधाम्बुसिक्ता प्रविदारमेति
॥ ११२ ॥ तोयं श्रुतं मोक्षकभस्मना वा यत्सप्तकृत्वः परिषेचनं तत् । कार्यं
सारयुतं शिलायाः प्रस्फोटनं वह्निवितापितायाः ॥ ११३ ॥ तक्रकाञ्जिक-
ः सकुलत्था योजितानि बदराणि च तस्मिन् । सप्तरात्रमुषितान्यभितप्तां
यन्ति हि शिलां परिषेकैः ॥ ११४ ॥ नैम्बं पत्रं त्वक् च नालं तिलानां
ामार्गं तिन्दुकं स्याद्गुडूची । गोमूत्रेण स्रावितः क्षार एषां षट्कृत्वोऽतस्ता-
ो भिद्यतेऽश्मा ॥ ११५ ॥ आर्कं पयो हुडुविषाणमषीसमेतं पारावता-

णिके समान रंगकी जो शिला हो, सिंगरफके समान बहुत लाल रंगकी या अंजनके
ान बहुत काली, उदय होते हुए सूर्यके किरणोंकी समान बहुत लाल और
कदार हो अथवा हरितालके तुल्य पीले रंगकी शिला हो तो वह शुभ होती है.
(प्रकरणमें आगे कहा हुआ वृत्त मुनिवचन है अर्थात् प्रामाणिक है ॥ ११० ॥
ले जो शिला कही यह सब शुभ हैं, इसलिये इन शिलाओंको तोडना योग्य
ीं. यह शिला सदा यक्ष और नागोंसे सेवित रहती हैं, जिन राजाओंके राज्यमें
सी शिला हो उनके राज्यमें कभी अवृष्टि नहीं होती ॥ १११ ॥ कूप आदि
ोदनेके समय शिला निकल आवे और वह फूट न सके तो उसके ऊपर ढाक
ौर तेंदूके काठको जलायकर उस शिलाको लाल कर ले फिर उसके ऊपर चूनेकी
लोंके मिला हुआ जल छिडके तो वह शिला टूट जाती है ॥ ११२ ॥ मरुवा
सकी भस्म मिलाय जलको औटावे फिर उसमें शरका खार मिला पीछे अग्निसे
पाई हुई शिलाके ऊपर सात बार उस जलको छिडके तो शिला टूट जाती है
। ११३ ॥ छाछ, कांजी, मद्य, कुलथी और बेरके फल इन सबको एक बरतनमें
ात रात्रि रक्खे फिर शिलाको पहले कही हुई रीतिसे तपाय इन वस्तुओंसे बार
ार छिडके तो वह शिला टूट जाती है ॥ ११४ ॥ नींबके पत्ते, नींबकी छाल,
तिलोंका नाल, अपामार्ग (चिरचिटा), तेंदूके फल गिलोय इनकी भस्मको
ोमूत्रसे छान ले फिर पत्थरको तपायकर छः बार इसमें छिडके तो वह पत्थर टूट
ाता है ॥ ११५ ॥ हुडुमेषके सींगको जलायकर उसकी स्याही कबूतर और मूसेकी

खुशक्तता च युतं प्रलेपः । टङ्कस्य तैलमथितस्य ततोऽस्य पानं पश्चाच्छित
न-शिलासु भवेद्विघातः ॥ ११६ ॥ क्षारे कदल्या मथितेन युक्ते दिनोषिते
पायितमायसं यत् । सम्यक् छितं चाश्मनि नैति भङ्गं न चान्यलोहेष्वपि
तस्य कौण्ठ्यम् ॥ ११७ ॥ वापी प्रागपरायताम्बु सुचिरं धत्ते न याम्योत्तरा
कल्लोलैरवदारमेति मरुता सा प्रायशः प्रेरितैः । तां चेदिच्छति सारदारुभिरपां
संपातमावारयेत् पाषाणादिभिरेव वा प्रतिचयं क्षुण्णं द्विपाश्वादिभिः ॥ ११८ ॥
ककुभवटाम्रप्लक्षकदम्बैः सनिचुलजम्बूवेतसनीपैः । कुरवकतालाशोकमधूकैः
बकुलविमिश्रैश्चावृततीराम् ॥ ११९ ॥ द्वारं च नैर्वाहिकमेकदेशे कार्यं शिला
सञ्चितवारिमार्गम् । कोशस्थितं निर्विवरं कपाटं कृत्वा ततः पांशुभिरावपेत्तम्
॥ १२० ॥ अञ्जनमुस्तोशीरैः सराजकोशातकामलकचूर्णैः । कतकफलसम
युक्तैर्योगः कूपे प्रदातव्यः ॥ १२१ ॥ कलुषं कटुकं लवणं विरसं सलिलं

बीटके साथ पीसकर मिला ले और इन सबको आकके दूधमें डालकर लेप करके शस्त्रपर लगावे और फिर तेलसे मथित टंक (पाषाणदारकयंत्र) पर पान देकर तेज कर ले. शिलापर मारनेसेभी इस शस्त्रकी धार नहीं टूटेगी ॥११६॥ कदलीके क्षारमें छाछ मिलाकर एक दिन रहने दे फिर जिस लोहेमें उसको मिलाकर पान दी जाय और वह भलीभांतिसे तेज धारवाला हो जाय तो फिर वह पत्थरपरभी मारनेसे नहीं टूटता और लोहेपर लगनेसे भी खुटला नहीं होता ॥ ११७ ॥ पूर्व पश्चिमको लम्बी वापीमें जल बहुत कालतक रहता है और दक्षिण उत्तरको लंबी में नहीं ठहरता क्योंकि पवनसे उठाये हुए बडे तरंगोंसे वह टूट जाती है; जो दक्षिण उत्तर लंबी पुष्करणी बनाया चाहे तो जलकी चोटका बचाव करनेके लिये उसके किनारोंको दृढ काष्ठसे बांध दे या पत्थर, ईंट आदिसे चिनवा दे और बनाते समय उसके प्रत्येक मिट्टीके आसारको घोडे हाथी आदिसे रुंदवाता जाय, जिससे वह मिट्टी दब जाय और जलके धक्केसे नहीं टूटे ॥ ११८ ॥ अर्जुन, बड, आम, पिलखन, कदम्ब, निचुल, जामुन, वेतस, नीम (एक प्रकारका कदम्ब), कुरवक, ताल, अशोक, महुआ और मौलसिरी ये वृक्ष उस वापीके तटपर लगावे ॥ ११९ ॥ जल निकलनेके लिये एक ओर एक मार्ग रक्खे. जिसको पत्थरोंसे बँधवाकर दृढ कर देवे और उस मार्गको छिद्ररहित काठके तख्तेसे ढककर ऊपरसे मिट्टीसे ढक दे ॥ १२० ॥ अंजन (सुरमा), मोथा, खस, राजकोशातकी (बडी तुरई), आमला और कतक (निर्मली) इन सबका चूर्ण कर कूपमें डाले ॥ १२१ ॥ जो कू

यदि वा धूम्रगन्धि भवेत् । तद्नेन भवत्यमलं सुरसं सुसुगन्धिगुणैरपरैश्च युतम् ॥ १२२ ॥ हस्तो मघानुराधापुष्यधनिष्ठोत्तराणि रोहिण्यः । शतभिषगित्यारम्भे कूपानां शस्यते भगणः ॥ १२३ ॥ कृत्वा वरुणस्य बलिं वटवेतसकीलकं शिरास्थाने । कुसुमैर्गन्धैर्धूपैः सम्पूज्य निधापयेत्प्रथमम् ॥ १२४ ॥ मेघोद्भवं प्रथममेव मया प्रदिष्टं ज्येष्ठामतीत्य बलदेवमतादि दृष्ट्वा । भौमं दकार्गलमिदं कथितं द्वितीयं सम्यग्वराहमिहिरेण मुनिप्रसादात् ॥ १२५ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्सं० दकार्गलं नाम चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५४॥

अथ पंचपंचाशत्तमोऽध्यायः ।

वृक्षायुर्वेद.

प्रान्तच्छायाविनिर्मुक्ता न मनोज्ञा जलाशयाः । यस्मादतो जलप्रान्तेष्वारामान् विनिवेशयेत् ॥ १ ॥ मृद्वी भूः सर्ववृक्षाणां हिता तस्यां तिलान् वपेत् ।

गदला, कडुआ, खारा, बेस्वाद या दुर्गन्धदार हो तौ वह इस चूर्णके डालनेसे निर्मल, मीठा, सुगन्ध और भी कई उत्तम गुणों करके युक्त हो जाता है ॥ १२२ ॥ हस्त, मघा, अनुराधा, पुष्य, धनिष्ठा, तीनों उत्तरा, रोहिणी और शतभिषा नक्षत्रमें कूपका आरंभ करना श्रेष्ठ है ॥ १२३ ॥ वरुणको बलि देकर गंध, पुष्प, धूप आदिसे वड या बेतसके काठके कीलका पूजन करे फिर शिराके स्थानमें प्रथम उस कीलको गाड दे ॥ १२४ ॥ ज्येष्ठकी पूर्णिमा होनेसे पीछे वर्षाऋतुमें जो जलका ज्ञान है वह मेघसम्बन्धी उदकार्गल है, वह हमने बलदेव आदि आचार्योंके मतको देखकर पहलेही कह दिया, वह भूमिसम्बन्धी दूसरा उदकार्गल मुनियोंके प्रसादसे भलीभांति वराहमिहिरने अर्थात् हमने कहा है, उदक शब्द जलका वाचक है और अर्गल रुकावटका नाम है, जलकी रुकावट जिस शास्त्रसे जानी जावे वह उदकार्गल कहाता है " नारं नीरं भुवनमुदकं जीवनीयं दकं च " इति हलायुधः ॥ १२५ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य–पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटी० चतुःपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

वापी, कूप, तालाब आदि जलाशयके ओर पास जो छायासे हीन हो तो चित्तको आनंद नहीं देवे, इस कारण जलाशयोंके किनारोंपर आराम (बगीचे) लगावें ॥ १ ॥ कोमल भूमि सब वृक्षोंके लिये अच्छी होती है, जिस भूमिमें बाग

---

१ अत्र श्लोकोऽयं प्रक्षिप्तटीकायामनुल्लेखात् ।

पुष्पितांस्तांश्च गृह्णीयात् कर्मैतत्प्रथमं भुवि ॥ २ ॥ ...
सप्रियङ्गवः । मङ्गल्याः पूर्वमारामे रोपणीया गृहेषु वा ॥ ३ ॥ पनसाशोक
दलीजम्बूलकुचदाडिमाः । द्राक्षापालीवताश्चैव बीजपूरातिमुक्तकाः ॥
एते द्रुमाः काण्डा रोप्या गोमयेन प्रलेपिताः । मूलच्छेदेऽथ वा स्कन्धे
णीयाः प्रयत्नतः ॥ ५ ॥ अजातशाखांश्शिशिरे जातशाखान् हिमागमे ।
गमे च सुस्कन्धान्यथादिक् प्रतिरोपयेत् ॥ ६ ॥ ...
गोमयैः । आमूलस्कन्धलिप्तानां सङ्क्रामणविरोपणम् ॥ ७ ॥ ...
पूजां कृत्वा स्नानानुलेपनैः । रोपयेद्रोपितश्चैव पत्रैस्तैरेव जायते ॥ ८ ॥
प्रातश्च घर्मान्ते शीतकाले दिनान्तरे । वर्षासु च भुवः शोषे सेक्तव्या ...
द्रुमाः ॥ ९ ॥ जम्बूवेतसवानीरकदम्बोदुम्बरार्जुनाः । ...
चाश्च सदाडिमाः ॥ १० ॥ वञ्जुलो नक्तमालश्च तिलकः पनसस्तथा ।
रोऽम्रातकश्चैव षोडशानूपजाः स्मृताः ॥ ११ ॥ उत्तमं विंशतिर्हस्ता ...

लगाना हो पहिले उसमें तिल बोवे, जब वे तिल फूलें तब उनका मर्दन करे भूमिका प्रथम कर्म है ॥ २ ॥ नींब, अशोक, पुन्नाग, शिरीष और प्रियंगु मंगलरूप हैं इस कारण बागमें अथवा घरमें पहिले लगाने चाहिये ॥ ३ ॥ कटहर, अशोक, केला, जामुन, लिकुच (बडहर), दाडिम, दाख, पालीवत, विजौरा और कुन्द इन वृक्षोंकी कलम लेकर उसको गोबरसे लीपकर या दूसरे वृक्षको मूलसे अथवा डालसे काट उसके ऊपर लगावे ॥ ४ ॥ ५ ॥ जिनके शाखा उत्पन्न नहीं हुई हों ऐसे वृक्षोंको एक स्थानसे उठाकर दूसरे स्थानमें अपनी दिशाके बीच शिशिर ऋतुमें लगावे. जिनके शाखा हो गई हों उनको हेमंतमें और अच्छे २ डालवाले वृक्षोंको वर्षाऋतुमें लगावे ॥ ६ ॥ घृत, खस, तिल, शहत, वायविडंग, दूध गोबर इन सबको पीसकर मूलसे लेकर डालतक वृक्षोंको लेप दे पीछे एक स्थानसे उठाकर दूसरे स्थानमें लगावे ॥ ७ ॥ पवित्र हो, स्नान अनुलेपन से वृक्षकी पूजा करे पीछे उस वृक्षको दूसरे स्थानमें लगावे तो वह वृक्ष उन्हीं पत्तोंसे करके युक्त लग जाता है अर्थात् सूखता नहीं ॥ ८ ॥ लगाये हुए वृक्षोंमें ग्रीष्ममें सांझ सवेरे दोनों समय सींचने चाहिये; शीतकालमें एक दिनके अंतरसे सींचे और वर्षाऋतुमें भूमि सूखनेपर सींचना चाहिये ॥ ९ ॥ जामुन, वेतस, ... कदम्ब, गूलर, अर्जुन, विजौरा, दाख, बडहर, दाडिम ॥ १० ॥ वंजुल, नक्तमाल, तिलक, कटहर, तिमिर और अंबाडा यह सोलह वृक्ष अनूपज अर्थात् बहुत जलवाले देशमें होते हैं ॥ ११ ॥ एक वृक्षसे बीस हाथके अंतरपर दूसरा वृक्ष उत्तम

ान्तरम् । स्थानात् स्थानान्तरं कार्यं वृक्षाणां द्वादशावरम् ॥ १२ ॥
याशजातास्तरवः संस्पृशन्तः परस्परम् । मिश्रैर्मूलैश्च न फलं सम्यग्यच्छन्ति
ड़ेताः ॥ १३ ॥ शीतवातातपै रोगो जायते पाण्डुपत्रता । अवृद्धिश्च
ालानां शाखाशोषो रसस्रुतिः ॥ १४॥ चिकित्सितमथैतेषां शस्त्रेणादौ विशो-
म् । विडङ्गघृतपङ्काक्तान् सेचयेत् क्षीरवारिणा ॥ १५ ॥ फलनाशे कुल-
श्च माषैर्मुद्गैस्तिलैर्यवैः । शृतशीतपयःसेकः फलपुष्पाभिवृद्धये ॥ १६ ॥
ाविकाजशकृच्चूर्णस्याढके द्वे तिलाढकम् । सक्तुप्रस्थो जलद्रोणो गोमांसतु-
या सह ॥ १७ ॥ सप्तरात्रोषितैरेतैः सेकः कार्यो वनस्पतेः । वल्लीगुल्मलतानां
फलपुष्पाय सर्वदा ॥ १८ ॥ वासराणि दश दुग्धभावितं बीजमाज्ययुतह-
तयोजितम् । गोमयेन बहुशो विरूक्षितं क्रौडमार्गपिशितैश्च धूपितम् ॥ १९ ॥
मत्स्यशूकरवसासमन्वितं रोपितं च परिकर्मितावनौ । क्षीरसंयुतजलावसेचितं

जाय तो उत्तम है, सोलह हाथ अंतरपर मध्यम और बारह हाथके अंतरपर लगाया जाय तो अधम होता है ॥ १२ ॥ जो वृक्ष बहुत समीप उत्पन्न हो, परस्पर स्पर्श करे और जिनकी जड मिल जावें वे पीडित होते हैं और इसी कारणसे भलीभांति नहीं फलते ॥ १३ ॥ बहुत शीत पवन और धूपसे वृक्षोंको रोग हो जाता है; तब उनके पत्ते पीले हो जावें, अंकुर नहीं बढते, डाली सूखती और रस टपकने लगता है ॥१४॥ रोगी वृक्षकी इस भांति चिकित्सा करे कि पहले जिस अंगको सडा सूखा आदि देखे उसको शस्त्रसे काट देवे फिर बायबिडंग घृत और कीचको मिलाय-कर वृक्षोंके लेप करे पीछे दूध मिले जलसे सींचे ॥ १५ ॥ वृक्षमें फल न लगे तो कुलथ, उडद, मूंग, तिल और जौ दूधमें डालकर औटावे, फिर उस दूधको ठंडा कर उस दूधसे फल और पुष्पोंकी वृद्धिके लिये वृक्षको सींचे ॥ १६ ॥ भेड और बकरीके मेंगनका चूर्ण दो आढक, तिल एक आढक, सत्तू एक प्रस्थ, जल एक द्रोण और गोमांस एक तुला इन सबको एक पात्रमें डालकर ॥ १७ ॥ सात रात्रितक रक्खे, पीछे फल और पुष्पोंके लिये इस जलसे वृक्ष, बेल, गुल्म और लताओंको सींचे ॥ १८ ॥ चाहे जिस वृक्षके बीजको घृतसे चिकने हाथ करके चुपडे पीछे उसको दूधमें डाल दे इसी भांति नित्य दश दिनतक चिकने हाथसे चुपड दूधमें डालता जाय पीछे उसको गोबरसे बहुत बार रूखा करे, सूअर और हरिणके मांसकी उस बीजको धूप देवे ॥ १९ ॥ फिर मत्स्य और सूअरकी

जायते कुसुमयुक्तमेव तत् ॥ २० ॥ तिन्तिडीत्यपि करोति प्र
तिलचूर्णसक्तुभिः । पूतिमांससहितैश्च सेचिता धूपिता च सततं
कपित्थवल्लीकरणाय मूलान्यास्फोतधात्रीधववासिकानाम् ।
सूर्यवल्ली श्यामातिमुक्तैः सहिताष्टमूली ॥ २२ ॥ क्षीरे शृते
नाज्यशतं स्थाप्य कपित्थबीजम् । दिने दिने शोषितमर्कपादै
ततोऽधिरोप्यम् ॥ २३ ॥ हस्तायतं तद्द्विगुणं गभीरं खात्वावटं
शुष्कं प्रदग्धं मधुसर्पिषा तत् प्रलेपयेद्भस्मसमन्वितेन ॥ २४ ॥
तिलैर्यवैश्च प्रपूरयेन्मृत्तिकयान्तरस्थैः । मत्स्यामिषाम्भःसहितं च
नत्वं समुपागतं तत् ॥ २५ ॥ उप्तं च बीजं चतुरङ्गुलाधो मत्स्या
सैश्च सिक्तम् । वल्ली भवत्याशु शुभप्रवाला विस्मापनी मण्डपमा

[illegible]

ङ्कोठसम्भूतफलकल्केन भावितम् । एतत्तैलेन वा बीजं श्लेष्मातकफलेन
॥ २७ ॥ वापितं करकोन्मिश्रं मृदि तत्क्षणजन्मकम् । फलभारान्विता
भवतीति किमद्भुतम् ॥ २८ ॥ श्लेष्मातकस्य बीजानि निष्कुलीकृत्य
व भावतः । अङ्कोलविज्जलाभिश्छायायां सप्तकृत्वैवम् ॥ २९ ॥ माहिष-
घृष्टान्यस्य करीषे च तानि निक्षिप्य । करकाजलमृद्योगे न्युप्तान्यह्ना
राणि ॥ ३० ॥ ध्रुवमृदुमूलविशाखा गुरुभं श्रवणस्तथाश्विनी हस्तः ।
नि दिव्यदृग्भिः पादपसंरोपणे भानि ॥ ३१ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां वृक्षायुर्वेदो नाम
पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

से सींचे तो शीघ्रही उत्तम पत्तों करके युक्त वल्ली हो जावे और मंडपको ढक
जिसको देखनेसे सबको विस्मय हो ॥ २६ ॥ अंकोलवृक्षके फलके कल्क
है) से, अंकोलफलके तेलसे अथवा लसोडेके फलसे अर्थात् उनके कल्कसे
या तेलसे चाहे जिस बीजको सौ भावना देवे अर्थात् सौ बार भिजावे ॥२७॥
उसे ओलोंसे भीगी हुई मिट्टीमें बोवे तो उसी क्षण जम आता है, वृक्षके
जे झुकी हुई लता हो जाती है इसमें क्या अद्भुत है अर्थात् अवश्यही होती
२८ ॥ बुद्धिमान् मनुष्य लसोडेके बीज लेकर उनका छिलका उतारे और
लफलकी विजली अर्थात् फलके भीतरका पिच्छिल जल उनमें छायामें इन
को सात भावना देवे अर्थात् भावना दे देकर छायामें सुखाता जावे ॥ २९ ॥
उन बीजोंको भैंसके गोबरसे घिसकर भैंसके सूखे गोबरके ढेरमें रख छोडे
जब ओले पडनेपर मिट्टी भीज जावे तब उस ओलेसे भीगी हुई मिट्टीमें उन
जोंको बोवे तो एकही दिनमें वृक्ष होकर फल लग जावेगा ॥ ३० ॥ तीनों
रा, रोहिणी, मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा, मूल, विशाखा, पुष्य, श्रवण,
श्विनी और हस्त यह नक्षत्र दिव्य दृष्टिवाले मुनीश्वरोंने वृक्ष लगानेके लिये
कहे हैं ॥ ३१ ॥

श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्सं० रामीबोधरदेवैरलंकृताकारकारकल्प-
पंडितबलदेवप्रसादमिश्रकृत० भाषाटीकायां पंचपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

अथ षट्पंचाशत्तमोऽध्यायः ।

प्रासादलक्षण.

कृत्वा प्रभूतं सलिलमारामान्विनिवेश्य च । देवतायतनं कुर्याद्यशोधर्माभिवृद्धये ॥ १ ॥ इष्टापूर्तेन लभ्यन्ते ये लोकास्तान् बुभूषता । देवानामालयः कार्यो द्वयमप्यत्र दृश्यते ॥ २ ॥ सलिलोद्यानयुक्तेषु कृतेष्वकृतकेषु च । स्थानेष्वेतेषु सान्निध्यमुपगच्छन्ति देवताः ॥ ३ ॥ सरःसु नलिनीछत्रनिरस्तरविरश्मिषु । हंसांसाक्षिप्तकह्लारवीचीविमलवारिषु ॥ ४ ॥ हंसकारण्डवक्रौञ्चचक्रवाकविराविषु । पर्यन्तनिचुलच्छायाविश्रान्तजलचारिषु ॥ ५ ॥ क्रौञ्चकाञ्चीकलापाश्च कलहंसकलस्वनाः । नद्यस्तोयांशुका यत्र शफरीकृतमेखलाः ॥ ६ ॥ फुल्लतीरद्रुमोत्तंसाः सङ्गमश्रोणिमण्डलाः । पुलिनाभ्युन्नतोरस्या हंसहासाश्च निम्नगाः ॥ ७ ॥ वनोपान्तनदीशैलनिर्झर-

---

बहुत जल करके युक्त जलाशय बनाकर और उनके तटपर बाग लगाकर यश और धर्मकी वृद्धिके लिये देवताका मंदिर बनाना चाहिये ॥ १ ॥ यज्ञादि करना इष्ट कहाता है और वापी कूप तडागादि बनाना पूर्त कहाता है. इष्टपूर्तसे जो उत्तम लोक मिलते हैं उनके पानेकी इच्छावाला पुरुष देवमंदिर बनानेके द्वारा इष्ट और पूर्त दोनोंहीका फल मिलाता है ॥ २ ॥ जल और उपवनसे युक्त स्थान चाहे किसीके बनाये हुए हों, चाहे स्वाभाविक बने रहें तो उन स्थानोंमें देवता निवास करते हैं ॥ ३ ॥ ऐसे सरोवरमें देवता सदा विहार करते हैं कि जिनमें कमलरूप छत्रसे सूर्य किरण दूर किये हों, हंसपक्षियोंके कंधोंसे प्रेरित श्वेत कमल कि जिनका मार्ग उसमें है. निर्मल जल जिन सरोवरोंमें भरे हैं ॥ ४ ॥ हंस कारंड क्रौंच और चक्रवाक जिनमें शब्द कर रहे हैं और किनारोंके निचुलवृक्षोंकी छायामें जहां जलके जीव विश्राम करते हैं ॥ ५ ॥ क्रौंचपक्षी जिनका कांचीदाम है, कलहंसोंका मधुर शब्द जिनका शब्द है, जल जिनका वस्त्र है, मच्छी जिनकी मेखला है, किनारोंपर फूले वृक्ष जिनके कर्णपूर हैं, जल थलका संगम जिनका श्रोणिमण्डल है, पुलिन जिसके उठे स्तन और हंसही हैं हास्य जिनका उस नीचेको वहनेवाली नदियोंके समीपवर्ती स्थानोंमें देवता सदा रमते हैं ॥ ६ ॥ ७ ॥ वनके निकट नदी पर्वत और झरनोंके समीपकी भूमिमें क्रि-

रान्तभूमिषु । रमन्ते देवता नित्यं पुरेषूद्यानवत्सु च ॥ ८ ॥ भूमयो ब्राह्मणादीनां याः प्रोक्ता वास्तुकर्मणि । ता एव तेषां शस्यन्ते देवतायतनेष्वपि ॥ ९ ॥ चतुःषष्टिपदं कार्यं देवतायतनं सदा । द्वारं च मध्यमं तत्र समदिक्स्थं प्रशस्यते ॥ १० ॥ यो विस्तारो भवेद्यस्य द्विगुणा तत्समुन्नतिः । उच्छ्रायाद्यस्तृतीयोंऽशस्तेन तुल्या कटिः स्मृता ॥ ११ ॥ विस्तारार्धं भवेद्गर्भो भित्तयोऽन्याः समन्ततः । गर्भपादेन विस्तीर्णं द्वारं द्विगुणमुच्छ्रितम् ॥ १२ ॥ उच्छ्रायात्पादविस्तीर्णा शाखा तद्वदुदुम्बरः । विस्तारपादप्रतिमं बाहुल्यं शाखयोः स्मृतम् ॥ १३ ॥ त्रिपञ्चसप्तनवभिः शाखाभिस्तत्प्रशस्यते । अधः शाखाचतुर्भागे प्रतीहारौ निवेशयेत् ॥ १४ ॥ शेषं मङ्गल्यविहगैः श्रीवृक्षस्वस्तिकैर्घटैः । मिथुनैः पत्रवल्लीभिः प्रमथैश्चोपशोभयेत् ॥ १५ ॥ द्वारमानाष्टभा-

---

देवता रमण करते हैं और उपवनोंसे युक्त नगरोंमेंभी देवता विहार करते हैं ॥ ८ ॥ ब्राह्मण आदि चार वर्णोंको जैसी भूमि पहले गृह बनानेके लिये कह आये हैं वैसीही भूमि उन वर्णोंको देवताके मंदिर बनानेके अर्थ श्रेष्ठ है ॥ ९ ॥ देवमंदिरमें सदा पूर्वोक्त चौसठ पदका वास्तु करना चाहिये उस देवमंदिरमें मध्यम द्वार सम दिशामें स्थित हो तो श्रेष्ठ है ॥ १० ॥ देवमंदिरका जितना विस्तार हो उससे दूनी उसकी ऊंचाई होती है, ऊंचाईकी तिहाई बराबर देवमंदिरकी कटि होती है, सीढीके ऊपर जहांसे देवगृहका आरंभ होता है उसको कटि कहते हैं ॥ ११ ॥ विस्तारसे आधा गर्भ होता है, शेष आधे विस्तारमें चारों ओरकी भीत बनती है, गर्भकी चौथाईके समान द्वारका विस्तार और द्वारके विस्तारसे द्विगुण द्वारकी ऊंचाई होती है ॥१२॥ द्वारकी ऊंचाईकी चौथाईके बराबर शाखा (चौखटका बाजू) और उदुम्बर (चौखटके ऊपरके काठ) की चौडाई होती है, शाखाकी चौडाईकी चौथाईके तुल्य शाखाओंकी मोटाई होती है॥१३॥ शाखाकी जितनी चोडाई कही उसके बीचमें तीन, पांच, सात अथवा नौ शाखा हों तो द्वार श्रेष्ठ होता है; दोनों शाखाओंके नीचेके चतुर्थांशमें देवताओंके दो प्रतिहारोंकी मूर्ति खोदनी चाहिये ॥१४॥ शाखाओंके शेष तीन चौथाई अंशोंमें हंसादि मंगलदायक पक्षी, बेल, स्वस्तिक, साथिया, कलश, मिथुन (स्त्रीपुरुषका जोडा), पत्र और लतागणोंसे शोभित करे ॥ १५ ॥ द्वारकी ऊंचाईके प्रमाणमें उसका अष्टमांश घटाकर जो बचे वह पिंडिका (देवतास्थापनका पीठ) सहित देवप्रतिमाकी ऊंचाईका प्रमाण होता है. उस पीठके सहित प्रतिमाकी ऊंचाईके तीन भाग करके दो भागके बराबर ऊंची प्रतिमा और एक-

-गोना प्रतिमा स्यात्सपिण्डिका। द्वौ भागौ प्रतिमा तत्र तृतीयांशश्च पिण्डिका ॥ १६ ॥ मेरुमन्दरकैलासविमानच्छन्दनन्दनाः। समुद्रपद्मगरुडनन्दिवर्द्धनकुञ्जराः ॥ १७ ॥ गुहराजो वृषो हंसः सर्वतोभद्रको घटः। सिंहो वृत्तश्चतुष्कोणः षोडशाष्टाश्रयस्तथा ॥ १८ ॥ इत्येते विंशतिः प्रोक्ताः प्रासादाः संज्ञया मया। यथोक्तानुक्रमेणैव लक्षणानि वदाम्यतः ॥ १९ ॥ तत्र षडश्रिर्मेरुर्द्वादशभौमो विचित्रकुहरश्च। द्वारैर्युतश्चतुर्भिर्द्वात्रिंशद्धस्तविस्तीर्णः ॥ २० ॥ त्रिंशद्धस्तायामो दशभौमो मन्दरः शिखरयुक्तः। कैलासोऽपि शिखरवानष्टाविंशोऽष्टभौमश्च ॥ २१ ॥ जालगवाक्षकयुक्तो विमानसंज्ञस्त्रिसप्तकायामः। नन्दन इति षड्भौमो द्वात्रिंशः षोडशाण्डयुतः ॥ २२ ॥ वृत्तः समुद्रनामा पद्माकृतिः शयानष्टौ। शृङ्गेणैकेन भवेदेकैव च भूमिका तस्य ॥ २३ ॥ गरुडाकृतिश्च गरुडो नन्दीति च षट्चतुष्कविस्तीर्णः। कार्यश्च सप्तभौमो

भागके समान ऊंची पिंडिका (पीठ) बनाना चाहिये. यह प्रमाण सब प्रतिमाओंके लिये कहा है ॥ १६ ॥ मेरु, मंदर, कैलास, विमानच्छंद, नंदन, समुद्र, पद्म, गरुड़, नंदिवर्धन, कुंजर ॥ १७ ॥ गुहराज, वृष, हंस, सर्वतोभद्र, घट, सिंह, वृत्त, चतुष्कोण, षोडशाश्रि और अष्टाश्रि ॥ १८ ॥ यह बीस नाम हमने प्रासादोंके कहे अब नामके क्रमसे इनके लक्षण कहते हैं ॥ १९ ॥ छः कोणवाला मेरुनाम प्रासाद होता है, जिसमें बारह भूमिका खंड होता है और अनेक भांतिके मोखोंसे गवाक्षों करके युक्त होता है; उसमें चार द्वार चारों दिशाओंमें होते हैं और उसका विस्तार बत्तीस हाथ होता है, चौसठ हाथ ऊंचाई होती है ॥ २० ॥ षट्कोण तीस हाथके विस्तारवाला, दश भूमिकाओंसे युक्त और शिखरोंसे युक्त मंदर प्रासाद होता है; कैलास प्रासादभी शिखरोंसे युक्त, अठ्ठाईस हाथ विस्तारवाला, आठ भूमिकाओं करके युक्त और षट्कोण होता है ॥ २१ ॥ जाली झरोखेदार इक्कीस हाथ विस्तारका और आठ भूमिकाओंसे युक्त षट्कोण विमानच्छंद नामक प्रासाद होता है, नंदन प्रासाद षट्कोण, छः भूमिकाओंसे युक्त, बत्तीस हाथ विस्तारवाला और सोलह अंडों[1] करके युक्त होता है ॥ २२ ॥ समुद्रनाम प्रासाद गोल होता है, ये दोनों प्रासाद आठ हाथ चौडे होते हैं, इनके ऊपर एक शृंग होता है और दोनों एक २ भूमिकासे युक्त होते हैं ॥ २३ ॥ गरुड़ प्रासाद गरुडके आकारवाला होता है परन्तु उसके पंख और पूंछ नहीं होते, व

---

१ अंड प्रासादके ऊपर हुआ करते हैं जिनको शिखर या शृंग कहते हैं।

विभूषितोऽण्डैश्च विंशत्या ॥ २४ ॥ कुञ्जर इति गजपृष्ठः षोडशहस्तः समन्ततो मूलात् । गुहराजः षोडशकस्त्रिचन्द्रशाला भवेद्वलभी ॥ २५ ॥ वृष एकभूमिशृङ्गो द्वादशहस्तः समन्ततो वृत्तः । हंसो हंसाकारो घटोऽष्टहस्तः कलशरूपः ॥ २६ ॥ द्वारैर्युतश्चतुर्भिर्बहुशिखरो भवति सर्वतोभद्रः । बहुरुचिरचन्द्रशालः षड्विंशः पञ्चभौमश्च ॥ २७ ॥ सिंहः सिंहाक्रान्तो द्वादशकोणेऽष्टहस्तविस्तीर्णः । चत्वारोऽञ्जनरूपाः पञ्चाऽण्डयुतस्तु चतुरस्रः ॥ २८ ॥ भूमिकांऽगुलमानेन मयस्याष्टोत्तरं शतम् । सार्धं हस्तत्रयं चैव कथितं विश्वकर्मणा ॥ २९ ॥ प्राहुः स्थपतयश्चात्र मतमेकं विपश्चितः । कपोतपालिसंयुक्ता

दोनों प्रासाद चौवीस हाथ विस्तारके सात भूमियोंसे युक्त चौवीस अंडोंसे भूषित करने चाहिये ॥ २४ ॥ कुंजर प्रासाद हाथीकी पीठके आकारका होता है और मूलसे चारों ओर सोलह हाथ विस्तारवाला होता है. गुहराज प्रासाद गुह (कार्तिकेय) के आकार बनता है और सोलह हाथ इसका विस्तार होता है. इन दोनों प्रासादोंकी वलभी तीन २ चंद्रशालाओंसे युक्त होती है ॥ २५ ॥ वृष नाम प्रासाद एक भूमिका और एक शृंगदार होता है. इसका विस्तार बारह हाथ है और यह चारों ओरसे गोल (वर्तुल) होता है. हंसप्रासाद हंसपक्षीके आकारके चोंच पंख और पूंछसे युक्त होता है; यहभी बारह हाथ चौडा, एक भूमिका और एक शृंगसे युक्त होता है. घटनामक प्रासाद कलशके आकारका होता है और आठ हाथ उसका विस्तार होता है. यहभी एक भूमिका और एक शृङ्गयुक्त होता है ॥ २६ ॥ सर्वतोभद्रनामक प्रासाद चारों दिशाओंमें चार द्वारोंसे युक्त बहुत शिखरों करके शोभित, बहुत और सुन्दर चंद्रशालाओंसे भूषित छब्वीस हाथका विस्तारमें चतुरस्र और पांच भूमिकाओंसे युक्त होता है ॥ २७ ॥ सिंह नामक प्रासाद सिंहकी प्रतिमाके द्वारा भूषित बारह कोणोंसे युक्त और आठ हाथ चौडा होता है. शेष चार प्रासाद वृक्ष, चतुष्कोण, षोडशास्र और अष्टास्र अपने नामके समान आकारवाले होते हैं; यह चारों अंजनरूप होते हैं अर्थात् इनके भीतर अंधकार रहता है, बाहरसे प्रकाश नहीं पहुंचता ॥ २८ ॥ मयके मतसे एक भूमिका प्रमाण एक सौ आठ अंगुल होता है और विश्वकर्माने एक २ भूमिका प्रमाण साढे तीन हाथ कहा है ॥ २९ ॥ विद्वान् कारीगर मय और विश्वकर्माके मतको एकही कहते हैं उनका यह कथन है कि विश्वकर्माने साढे तीन हाथ अर्थात् चौरासी अंगुल भूमिका प्रमाण कहा, वह कपोतपालिकाको छोडकर कहा है; जो

न्यूना गच्छन्ति तुल्यताम् ॥ ३० ॥ प्रासादलक्षणमिदं कथितं पद्विरचितं तदिहास्ति सर्वम् । मन्वादिभिर्विरचितानि पृथूनि यानि तत्स्पृति मयात्र कृतोऽधिकारः ॥ ३१ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां प्रासादलक्षणं नाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

अथ सप्तपंचाशत्तमोऽध्यायः ।

वज्रलेपलक्षण.

आमं तिन्दुकमामं कपित्थकं पुष्पमपि च शाल्मल्याः । बीजानि सल्लकीनां धन्वनवल्को वचा चेति ॥ १ ॥ एतैः सलिलद्रोणः क्वाथयितव्योऽष्टभागशेषश्च । अवतार्योऽस्य च कल्को द्रव्यैरेतैः समनुयोज्यः ॥ २ ॥ श्रीवाससगुग्गुलभल्लातककुन्दुरुकसर्जरसैः । अतसीबिल्वैश्च युतः कल्कोऽयं वज्रलेपाख्यः ॥ ३ ॥ प्रासादहर्म्यवलभीलिङ्गप्रतिमासु कुड्यकूपेषु । सन्तप्तो दातव्यो वर्षसहस्रायुतस्थायी ॥ ४ ॥ लाक्षाकुन्दुरुगुग्गुलुगृहधूमकपित्थबिल्वमध्यानि

उसमें कपोतपालिकाका प्रमाण जोड दिया जावे तो वह मयके कहे प्रमाणके तुल्य हो जाता है ॥ ३० ॥ यह प्रासादलक्षण हमने संक्षेपसे कहा. परन्तु गर्गजीने जो प्रासादलक्षण रचा है वह सब इसमें आ गया है और मनु, वशिष्ठ, मय, नग्नजित् आदि आचार्योंने जो बडे २ प्रासादलक्षणग्रंथ रचे हैं उनकी स्मृतिके लिये हमने यहां अधिकार किया ॥ ३१ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहि॰पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविर॰ भाषाटीकायां षट्पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

तेंदूके कच्चे फल, कैथके कच्चे फल, सेमलके फूल, सल्लकीवृक्षके बीज, धंवनाकी छाल और वच ॥ १ ॥ इन सबको एक द्रोण जलमें क्वाथ करे जब आठवां भाग रह जाय तब उतारे ॥ २ ॥ पीछे उसमें [illegible] (देवदारु वृक्षका निर्यास), राल, अल [illegible] यह वज्रलेप नामक कल्क है ॥ ३ ॥ इस वज्रलेपको देवप्रासाद, [illegible] शिवलिंग, देवप्रतिमा, भित्ति और कूओंमें गर्म करके लगावे. यह [illegible] वर्षतक ठहरता है ॥ ४ ॥ लाख, कुन्दरू, गूगल, घरके धुआंका जाला, कैथ [illegible]

ागबलाफलतिन्दुकमदनफलमधूकमञ्जिष्ठाः ॥ ५ ॥ सर्जरसामलकानि चेति कल्कः कृतो द्वितीयोऽयम्। वज्राख्यः प्रथमगुणैरयमपि तस्यैव कार्येषु ॥ ६ ॥ गोमहिषाजविषाणैः खररोम्णा महिषचर्मगव्यैश्च। निम्बकपित्थरसैः सह वज्रतरो नाम कल्कोऽन्यः ॥ ७ ॥ अष्टौ सीसकभागाः कांसस्य द्वौ तु रीतिकाभागः। मयकथितो योगोऽयं विज्ञेयो वज्रसङ्घातः ॥ ८ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां वज्रलेपो नाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

अथाष्टपंचाशत्तमोऽध्यायः।

प्रतिमालक्षण.

जालान्तरगे भानौ यदणुतरं दर्शनं रजो याति। तद्विन्द्यात्परमाणुं प्रथमं तद्धि प्रमाणानाम् ॥ १ ॥ परमाणुरजो बालाग्रलिक्षयूका यवोऽङ्गुलं चेति। अष्टगु-

बेलकी गिरी, नागबाला (गंगेरण) के फल, महुएके फल, मजीठ ॥ ५ ॥ राल, मोल, आंवले इन सब वस्तुओंके कल्कको भी पहली भांति सिद्ध किये द्रोणभर जलमें मिलानेसे दूसरा वज्रलेप सिद्ध होता है, इसमेंभी वही गुण है जो पहले वज्रलेपमें कहे हैं और यहभी प्रासाद आदिके लेपमें हो पहले वज्रलेपकी भांति काम आता है ॥ ६ ॥ गौ, भैंस और बकरा इन तीनोंके सींग, गर्दभ, महिष और गौ इन तीनोंके चर्म, नींबके फल कैथके फल और नील इन सबसे पहली भांति तीसरा कल्क सिद्ध होता है, इसका नाम वज्रतर है. इसमेंभी पहले कहे हुए गुण हैं और पहले कार्योंमें काम आता है ॥ ७ ॥ आठ भाग सीसा, दो भाग कांसा, एक भाग पीतल इन सबको इकट्ठा गलावे यह मयका कहा हुआ योग है और इसका नाम वज्रसंघात है ॥ ८ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां सप्तपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

जालोंके बीचमें सूर्यका प्रकाश आता है, उसमें जो अत्यन्तसूक्ष्म रज देख पड़ता है, उसको परमाणु जाने, वही सब प्रमाणोंमें पहला है ॥ १ ॥ आठ परमाणुका

णानि यथोत्तरमंगुलमेकं भवति संख्या ॥ २ ॥ दे...
पस्तृतीयोऽशः । तत्पिण्डिकाप्रमाणं प्रतिमा तद्द्विगुणपरिमाणा ॥ ३ ॥ ...
ङ्गुलप्रमाणैर्द्वादश विस्तीर्णमायतं च मुखम् । नग्नजिता तु चतुर्दश...
कथितम् ॥ ४ ॥ नासाललाटचिबुकग्रीवाश्चतुरंगुलास्तथा कर्णौ । द्वे अंगुले
हनुके चिबुकं तु द्व्यंगुलं विस्तृतम् ॥ ५ ॥ अष्टांगुलं ललाटं विस्ता...
परे शंखौ । चतुरंगुलौ तु शंखौ कर्णौ तु द्व्यंगुलं पृथुलौ ॥ ६ ॥ कर्णोप...
कार्योऽर्धपञ्चमे भ्रूसमेन सूत्रेण । कर्णश्रोत्रः सुकुमारकं च नयनबन्धान्
॥ ७ ॥ चतुरंगुलं वसिष्ठः कथयति नेत्रान्तकर्णयोर्विवरम् । अधरोऽङ्गु...
माणस्तस्यार्धेनोत्तरोष्ठश्च ॥ ८ ॥ अर्धांगुला तु गोच्छा वक्त्रं चतुरङ्गु...

रज, आठ रजका वालाग्र, आठ वालाग्रकी लिक्षा, आठ लिक्षाकी यूका, आठ ...
यव और आठ यवका एक अंगुल होता है, इस प्रकार यह प्रमाण ... ...
है. एक अंगुल संख्या होती है ॥ २ ॥ देवमंदिरके द्वारकी ऊँचाईमें उसका अष्ट...
घटाकर जो बच रहे उसकी जो तिहाई हो वह पिण्डिका (मूर्तिकी पीठ) प्रमाण
है और पिण्डिका प्रमाणसे प्रतिमा (मूर्त्ति)का प्रमाण दूना होना चाहिये ॥ ३ ॥
जितनी ऊंचाई प्रतिमाकी आवे उसके बारह भाग कर एक २ भागके फि...
भाग करे. वह एक अंगुल होता है, क्योंकि सब प्रतिमा अपने २ अंगुल ...
एक सौ आठ अंगुल होती है. प्रतिमाका मुख अपने अंगुल प्रमाणसे बारह
चौडा और चौदह अंगुल लम्बा हो ऐसा नग्नजित् नाम आचार्यने कहा है, ...
मान द्रविडदेशका है ॥ ४ ॥ प्रतिमाके नासिका, ललाट, ठोडी, गरदन और ...
अपने अंगुल प्रमाणसे चार २ अंगुल लम्बे बनाने चाहिये. हनु दो २ ...
लम्बे बनावे, चिबुककी चौडाई दो अंगुल होती है ॥ ५ ॥ आठ अंगुल ...
माथा होता है; माथेसे दोनों ओर परे दो दो अंगुल प्रमाण (कनपटी) ...
कनपटीकी लम्बाई चार २ अंगुल रक्खे, कर्ण दो दो अंगुल चौडे बनावे ॥ ६ ॥
कर्णका उपान्त अर्थात् कर्णाग्र नेत्रांतसे लेकर भ्रू सम सूत्रसे, साढे चार अंगुल
करना चाहिये; कानका छेद और सुकुमारक अर्थात् कर्णपालीके पर्यंतका ...
भाग नेत्रबन्धके समान करना चाहिये ॥ ७ ॥ वशिष्ठमुनि कहते हैं कि नेत्र ...
कर्णान्तका अंतर चार अंगुल करना ठीक है. नीचेका ओष्ठ एक अंगुल ...
ऊपरका ओष्ठ आध अंगुल रखना चाहिये ॥ ८ ॥ गोच्छा आध अंगुल ...
करनी चाहिये, मुख चार अंगुल लम्बा और डेढ अंगुल चौडा रखना और ...

र्यम् । विपुलं तु सार्धमंगुलं मध्यात्त्र्यंगुलं व्यात्तम् ॥ ९ ॥ द्व्यंगुलतुल्यौ
सापुटौ च नासा पुटाग्रतो ज्ञेया । स्याद् द्व्यंगुलमुच्छ्रायश्चतुरंगुलमन्तरं
क्ष्णोः ॥ १० ॥ द्व्यंगुलमितोऽक्षिकोशो द्वे नेत्रे तत्त्रिभागिका तारा । दृक्
ारापञ्चांशो नेत्रविकाशोऽङ्गुलं भवति ॥ ११ ॥ पर्यन्तात्पर्यन्तं दश भ्रुवोऽ-
ंगुलं भ्रुवोर्लेखाः । भ्रूमध्यं द्व्यंगुलकं भ्रूर्दैर्घ्येणांगुलचतुष्कम् ॥ १२ ॥
र्ध्वां तु केशरेखा भ्रूबन्धसमांगुलार्धविस्तीर्णा । नेत्रान्ते करवीरकमुपन्यसे-
ंगुलमानमिमम् ॥ १३ ॥ द्वात्रिंशत्परिणाहाच्चतुर्दशायामतोऽङ्गुलानि शिरः ।
ादश तु चित्रकर्मणि दृश्यन्ते विंशतिरदृश्याः ॥ १४ ॥ आस्यं सकेशनिचयं
ोडश दैर्घ्येण नग्नजित्प्रोक्तम् । ग्रीवा दश विस्तीर्णा परिणाहाद्विंशतिः सैका
। १५ ॥ कण्ठाद्द्वादश हृदयं हृदयान्नाभिश्च तत् प्रमाणेन । नाभीमध्यान्मेढ्रा-
न्तरं च तत्तुल्यमेवोक्तम् ॥ १६ ॥ ऊरू चांगुलमानैश्चतुर्युता विंशतिस्तथा

ुख अर्थात् नृसिंह आदि देवताओंका फैला हुआ मुख तीन अंगुल चौडा करे ॥९॥
ासिकाके दोनों पुट दो दो अंगुलके करे और पुटोंके अग्रसे नासिकाभी दो अंगुल
ाने. नासिकाकी ऊँचाई दो अंगुल और दोनों नेत्रोंके बीच चार अंगुल अन्तर
ुखना चाहिये ॥ १० ॥ नेत्रका कोश दो अंगुल, नेत्र दोना दो २ अंगुल, नेत्रकी
तेहाईके तुल्य तारा, ताराके पचमांशके तुल्य दृक् बनावे और नेत्रकी चौडाई
एक अंगुलकी करे ॥ ११ ॥ एक भौंके अन्तसे दूसरे भौंके अन्ततक दश
अंगुल रखना चाहिये; आध अंगुल भ्रूकी चौडाई दोनों भ्रूका मध्यभाग दो अंगुल
और एक भौंकी लम्बाई चार चार अंगुल करनी चाहिये ॥ १२ ॥ माथेके ऊपर
केशरेखा भ्रूबन्धके तुल्य करे और आध अंगुल चौडी केशरेखा रक्खे, नेत्रके
अंतमें एक अंगुलका करवीरक करे जिसको भूषिकाभी कहते हैं ॥ १३ ॥ बत्तीस
अंगुल लम्बा, चौदह अंगुल चौडा शिर बनाना चाहिये, जो चित्र बनाया जाय
तो उसमें शिर बारह अंगुल दिखलाई पडता है और बीस अंगुल जो पिछली
ओर रहते हैं वह नहीं दीख पडते ॥ १४ ॥ नग्नजित् आचार्यने केशरेखासहित
मुखका विस्तार सोलह अंगुल कहा है, ग्रीवाका विस्तार दश अंगुल और उसकी
लम्बाई इक्कीस अंगुल कही है ॥ १५ ॥ कंठके आधे भागसे हृदयतक बारह
अंगुल अंतर रक्खे, हृदयसे नाभितक और नाभिके मध्यसे लिंगके मध्यतक बारह
अंगुलही अंतर कहा है ॥ १६ ॥ ऊरु और जंघा चौबीस २ अंगुल लम्बे
करने चाहिये, गोडोंके ऊपरकी पाळी चार अंगुल और पादभी चार

पानि यथोत्तरमंगुलमेकं भवति संख्या ॥ २ ॥ देवागारद्वारस्याष्टांशोन यस्तृतीयोंऽशः । तत्पिण्डिकाप्रमाणं प्रतिमा तद्द्विगुणपरिमाणा ॥ ३ ॥ स्वै गुलप्रमाणैर्द्वादश विस्तीर्णमायतं च मुखम् । नग्नजिता तु चतुर्दश दैर्घ्येण द्रावि कथितम् ॥ ४॥ नासाललाटचिबुकग्रीवाश्चतुरंगुलास्तथा कर्णौ । द्वे अंगुले हनुके चिबुकं तु व्यंगुलं विस्तृतम्॥५॥ अष्टांगुलं ललाटं विस्ताराद् व्यंगुला परे शंखौ । चतुरंगुलौ तु शंखौ कर्णौ तु व्यंगुलं पृथुलौ ॥ ६ ॥ कर्णोपान्तः कार्योऽर्धपञ्चमे भ्रूसमेन सूत्रेण । कर्णश्रोत्रः सुकुमारकं च नयनप्रबन्धसम ॥ ७ ॥ चतुरंगुलं वसिष्ठः कथयति नेत्रान्तकर्णयोर्विवरम् । अधरोंऽगुलप्र माणस्तस्यार्धेनोत्तरोष्ठश्च ॥ ८ ॥ अर्धांगुला तु गोच्छा वक्त्रं चतुरंगुलाय

रज, आठ रजका वालाग्र, आठ वालाग्रकी लिक्षा, आठ लिक्षाकी यूका, आठ यूका यव और आठ यवका एक अंगुल होता है, इस प्रकार यह प्रमाण उत्तरोत्तर आठगुना है. एक अंगुल संख्या होती है ॥ २ ॥ देवमंदिरके द्वारकी ऊँचाईमें उसका अष्टमांश घटाकर जो बच रहे उसकी जो तिहाई हो वह पिण्डिका (मूर्तिकी पीठ) का प्रमाण है और पिण्डिका प्रमाणसे प्रतिमा (मूर्त्ति) का प्रमाण दूना होना चाहिये ॥ ३ ॥ जितनी ऊंचाई प्रतिमाकी आवे उसके बारह भाग कर एक २ भागके फिर नौ नौ भाग करे. वह एक अंगुल होता है, क्योंकि सब प्रतिमा अपने २ अंगुल प्रमाणसे एक सौ आठ अंगुल होती है. प्रतिमाका मुख अपने अंगुल प्रमाणसे बारह अंगुल चौड़ा और चौदह अंगुल लम्बा हो ऐसा नग्नजित् नाम आचार्यने कहा है. यह मान द्रविडदेशका है ॥ ४ ॥ प्रतिमाके नासिका, ललाट, ठोडी, गरदन और कर्ण अपने अंगुल प्रमाणसे चार २ अंगुल लम्बे बनाने चाहिये. हनु दो २ अंगुल लम्बे बनावे, चिबुककी चौडाई दो अंगुल होती है ॥ ५ ॥ आठ अंगुल चौड़ा माथा होना है; माथेसे दोनों ओर परे दो दो अंगुल प्रमाण (कनपटी) करे, कनपटीकी लम्बाई चार २ अंगुल रक्खे, कर्ण दो दो अंगुल चौड़े बनावे ॥ ६ ॥ कर्णका उपान्त अर्थात् कर्णाग्र नेत्रांतसे लेकर भ्रू सम सूत्रसे, साढे चार अंगुल [illegible] हुये; कानका छेद और सुकुमारक अर्थात् कर्णश्रोतके समीपका उठा [illegible] समान करना चाहिये ॥ ७ ॥ वशिष्ठमुनि कहते हैं कि नेत्र और [illegible] चार अंगुल करना ठीक है. नीचेका ओठ एक अंगुल और आध अंगुल रखना चाहिये ॥ ८ ॥ गोच्छा आध अंगुल लिखे मुख चार अंगुल लम्बा और डेढ अंगुल चौड़ा रखना और [illegible]

कार्यम् । विपुलं तु सार्धमंगुलं मध्यात्त्र्यंगुलं व्यात्तम् ॥ ९ ॥ व्यंगुलतुल्यौ नासापुटौ च नासा पुटाग्रतो ज्ञेया । स्याद् व्यंगुलमुच्छ्रायश्चतुरंगुलमन्तरं चाक्ष्णोः ॥ १० ॥ व्यंगुलमितोऽक्षिकोशो द्वे नेत्रे तत्त्रिभागिका तारा । दृक् तारापञ्चांशो नेत्रविकाशोंऽगुलं भवति ॥ ११ ॥ पर्यन्तात्पर्यन्तं दश भ्रुवोऽर्धांगुलं भ्रुवोर्लेखाः । भ्रूमध्यं व्यंगुलकं भ्रूर्दैर्घ्येणांगुलचतुष्कम् ॥ १२ ॥ कार्या तु केशरेखा भ्रूबन्धसमांगुलार्धविस्तीर्णा । नेत्रान्ते करवीरकमुपन्यसेदंगुलप्रतिमम् ॥ १३ ॥ द्वात्रिंशत्परिणाहाच्चतुर्दशायामतोंऽगुलानि शिरः । द्वादश तु चित्रकर्मणि दृश्यन्ते विंशतिरदृश्याः ॥ १४ ॥ आस्यं सकेशनिचयं षोडश दैर्घ्येण नग्नजित्प्रोक्तम् । ग्रीवा दश विस्तीर्णा परिणाहाद्विंशतिः सैका ॥ १५ ॥ कण्ठाद्द्वादश हृदयं हृदयान्नाभिश्च तत् प्रमाणेन । नाभीमध्यान्मेढ्रान्तरं च तत्तुल्यमेवोक्तम् ॥ १६ ॥ ऊरू चांगुलमानैश्चतुर्युता विंशतिस्तथा

मुख अर्थात् नृसिंह आदि देवताओंका फैला हुआ मुख तीन अंगुल चौडा करे ॥९॥ नासिकाके दोनों पुट दो दो अंगुलके करे और पुटोंके अग्रसे नासिकाभी दो अंगुल जाने. नासिकाकी ऊँचाई दो अंगुल और दोनों नेत्रोंके बीच चार अंगुल अन्तर रखना चाहिये ॥ १० ॥ नेत्रका कोश दो अंगुल, नेत्र दाना दो २ अंगुल, नेत्रकी तिहाईके तुल्य तारा, ताराके पचमांशके तुल्य दृक् बनावे और नेत्रकी चौडाई एक अंगुलकी करे ॥ ११ ॥ एक भौंके अन्तसे दूसरे भौंके अन्ततक दश अंगुल रखना चाहिये; आध अंगुल भ्रूकी चौडाई दोनों भ्रूका मध्यभाग दो अंगुल और एक भौंकी लम्बाई चार चार अंगुल करनी चाहिये ॥ १२ ॥ माथेके ऊपर केशरेखा भ्रूवन्धके तुल्य करे और आध अंगुल चौडी केशरेखा रक्खे, नेत्रके अंतमें एक अंगुलका करवीरक करे जिसको मूषिकाभी कहते हैं ॥ १३ ॥ बत्तीस अंगुल लम्बा, चौदह अंगुल चौडा शिर बनाना चाहिये, जो चित्र बनाया जाय तौ उसमें शिर बारह अंगुल दिखलाई पडता है और बीस अंगुल जो पिछली ओर रहते हैं वह नहीं दीख पडते ॥ १४ ॥ नग्नजित् आचार्यने केशरेखासहित मुखका विस्तार सोलह अंगुल कहा है, ग्रीवाका विस्तार दश अंगुल और उसकी लम्बाई इक्कीस अंगुल कही है ॥ १५ ॥ कंठके आधे भागसे हृदयतक बारह अंगुल अंतर रक्खे, हृदयसे नाभितक और नाभिके मध्यसे लिंगके मध्यतक बारह अंगुलही अंतर कहा है ॥ १६ ॥ ऊरु और जंघा चौबीस २ अंगुल लम्बे करने चाहिये, गोडोंके ऊपरकी पाळी चार अंगुल और पादभी चार

णानि यथोत्तरमंगुलमेकं भवति संख्या ॥ २ ॥ देवागारद्वारस्याष्टांशोनस्य यस्तृतीयोंऽशः । तत्पिण्डिकाप्रमाणं प्रतिमा तद्विगुणपरिमाणा ॥ ३ ॥ स्वांगुलप्रमाणैर्द्वादश विस्तीर्णमायतं च मुखम् । नग्नजिता तु चतुर्दश दैर्घ्येण द्राविडं कथितम् ॥ ४ ॥ नासाललाटचिबुकग्रीवाश्चतुरंगुलास्तथा कर्णौ । द्वे अंगुले च हनुके चिबुकं तु द्व्यंगुलं विस्तृतम् ॥ ५ ॥ अष्टांगुलं ललाटं विस्ताराद् द्व्यंगुलात् परे शंखौ । चतुरंगुलौ तु शंखौ कर्णौ तु द्व्यंगुलं पृथुलौ ॥ ६ ॥ कर्णोपान्तः कार्योऽर्धपञ्चमे भ्रूसमेन सूत्रेण । कर्णश्रोत्रः सुकुमारकं च नयननबन्धसमम् ॥ ७ ॥ चतुरंगुलं वसिष्ठः कथयति नेत्रान्तकर्णयोर्विवरम् । अधरोंऽगुलप्रमाणस्तस्यार्धेनोत्तरोष्ठश्च ॥ ८ ॥ अर्धांगुला तु गोच्छा वक्त्रं चतुरंगुलायतं

रज, आठ रजका वालाग्र, आठ वालाग्रकी लिक्षा, आठ लिक्षाकी यूका, आठ यूकाका यव और आठ यवका एक अंगुल होता है, इस प्रकार यह प्रमाण उत्तरोत्तर आठगुना है. एक अंगुल संख्या होती है ॥ २ ॥ देवमंदिरके द्वारकी ऊँचाईमें उसका अष्टमांश घटाकर जो बच रहे उसकी जो तिहाई हो वह पिण्डिका (मूर्तिकी पीठ) का प्रमाण है और पिण्डिका प्रमाणसे प्रतिमा (मूर्ति) का प्रमाण दूना होना चाहिये ॥ ३ ॥ जितनी ऊंचाई प्रतिमाकी आवे उसके बारह भाग कर एक २ भागके फिर नौ नौ भाग करे. वह एक अंगुल होता है, क्योंकि सब प्रतिमा अपने २ अंगुल प्रमाणसे एक सौ आठ अंगुल होती है. प्रतिमाका मुख अपने अंगुल प्रमाणसे बारह अंगुल चौड़ा और चौदह अंगुल लम्बा हो ऐसा नग्नजित् नाम आचार्यने कहा है. यह मान द्रविडदेशका है ॥ ४ ॥ प्रतिमाके नासिका, ललाट, ठोडी, गरदन और कर्ण अपने अंगुल प्रमाणसे चार २ अंगुल लम्बे बनाने चाहिये. हनु दो २ अंगुल लम्बे बनावे, चिबुककी चौडाई दो अंगुल होती है ॥ ५ ॥ आठ अंगुल चौड़ा माथा होता है; माथेसे दोनों ओर परे दो दो अंगुल प्रमाण (कनपटी) रखे, कनपटीकी लम्बाई चार २ अंगुल रखले, कर्ण दो दो अंगुल चौड़े बनावे ॥ ६ ॥ कर्णका उपान्त अर्थात् कर्णाग्र नेत्रांतसे लेकर भ्रू सम सूत्रसे, साढे चार अंगुल करना चाहिये; कानका छेद और सुकुमारक अर्थात् कर्णस्रोतके समीपका स्थान नेत्रबन्धके समान करना चाहिये ॥ ७ ॥ वशिष्ठमुनि कहते हैं कि नेत्र और कर्णान्तरका अंतर चार अंगुल करना ठीक है. नीचेका ओष्ठ एक अंगुल और ऊपरका ओष्ठ आध अंगुल रखना चाहिये ॥ ८ ॥ गोच्छा आध अंगुल विस्तीर्ण करनी चाहिये, मुख चार अंगुल लम्बा और डेढ अंगुल चौड़ा रखना और बड़ा

कार्यम् । विपुलं तु सार्धमंगुलं मध्यात्त्र्यंगुलं व्यात्तम् ॥ ९ ॥ व्यंगुलतुल्यौ नासापुटौ च नासा पुटाग्रतो ज्ञेया । स्याद् व्यंगुलमुच्छ्रायश्चतुरंगुलमन्तरं चाक्ष्णोः ॥ १० ॥ व्यंगुलमितोऽक्षिकोशो द्वे नेत्रे तत्त्रिभागिका तारा । दृक् तारापञ्चांशो नेत्रविकाशोऽङ्गुलं भवति ॥ ११ ॥ पर्यन्तात्पर्यन्तं दश भ्रुवोऽर्धांगुलं भ्रुवोर्लेखाः । भ्रूमध्यं व्यंगुलकं भ्रूर्दैर्घ्येणांगुलचतुष्कम् ॥ १२ ॥ कार्या तु केशरेखा भ्रूबन्धसमांगुलार्धविस्तीर्णा । नेत्रान्ते करवीरकमुपन्यसेदंगुलप्रतिमम् ॥ १३ ॥ द्वात्रिंशत्परिणाहाच्चतुर्दशायामतोऽङ्गुलानि शिरः । द्वादश तु चित्रकर्मणि दृश्यन्ते विंशतिरदृश्याः ॥ १४ ॥ आस्यं सकेशनिचयं षोडश दैर्घ्येण नग्नजित्प्रोक्तम् । ग्रीवा दश विस्तीर्णा परिणाहाद्विंशतिः सैका ॥ १५ ॥ कण्ठाद्द्वादश हृदयं हृदयान्नाभिश्च तद् प्रमाणेन । नाभीमध्यान्मेढ्रान्तरं च तत्तुल्यमेवोक्तम् ॥ १६ ॥ ऊरू चांगुलमानैश्चतुर्युता विंशतिस्तथा

मुख अर्थात् नृसिंह आदि देवताओंका फैला हुआ मुख तीन अंगुल चौडा करे ॥९॥ नासिकाके दोनों पुट दो दो अंगुलके करे और पुटोंके अग्रसे नासिकाभी दो अंगुल जाने. नासिकाकी ऊँचाई दो अंगुल और दोनों नेत्रोंके बीच चार अंगुल अन्तर रखना चाहिये ॥ १० ॥ नेत्रका कोश दो अंगुल, नेत्र दाना दो २ अंगुल, नेत्रकी तिहाईके तुल्य तारा, ताराके पचमांशके तुल्य दृक् बनावे और नेत्रकी चौडाई एक अंगुलकी करे ॥ ११ ॥ एक भौंके अन्तसे दूसरे भौंके अन्ततक दश अंगुल रखना चाहिये; आध अंगुल भ्रूकी चौडाई दोनों भ्रूका मध्यभाग दो अंगुल और एक भौंकी लम्बाई चार चार अंगुल करनी चाहिये ॥ १२ ॥ माथेके ऊपर केशरेखा भ्रूबन्धके तुल्य करे और आध अंगुल चौडी केशरेखा रक्खे, नेत्रके अंतमें एक अंगुलका करवीरक करे जिसको भूपिकाभी कहते हैं ॥ १३ ॥ बत्तीस अंगुल लम्बा, चौदह अंगुल चौडा शिर बनाना चाहिये, जो चित्र बनाया जाय तो उसमें शिर बारह अंगुल दिखलाई पडता है और बीस अंगुल जो पिछली ओर रहते हैं वह नहीं दीख पडते ॥ १४ ॥ नग्नजित्‌आचार्यने केशरेखासहित मुखका विस्तार सोलह अंगुल कहा है, ग्रीवाका विस्तार दश अंगुल और उसकी लम्बाई इक्कीस अंगुल कही है ॥ १५ ॥ कंठके आधे भागसे हृदयतक बारह अंगुल अंतर रक्खे, हृदयसे नाभितक और नाभिके मध्यसे लिंगके मध्यतक बारह अंगुलही अंतर कहा है ॥ १६ ॥ ऊरु और जंघा चौबीस २ अंगुल लम्बे करने चाहिये, गोडोंके ऊपरकी पाली चार अंगुल और पादभी चार

णानि यथोत्तरमंगुलमेकं भवति संख्या ॥ २ ॥ देवागारद्वारस्याष्टांशोनस्य यस्तृतीयोंऽशः । तत्पिण्डिकाप्रमाणं प्रतिमा तद्द्विगुणपरिमाणा ॥ ३ ॥ स्वैरंगुलप्रमाणैर्द्वादश विस्तीर्णमायतं च मुखम् । नग्नजिता तु चतुर्दश दैर्घ्येण द्राविडं कथितम् ॥ ४॥ नासाललाटचिबुकग्रीवाश्चतुरंगुलास्तथा कर्णौ । द्वे अंगुले च हनुके चिबुकं तु व्यंगुलं विस्तृतम्॥५॥ अष्टांगुलं ललाटं विस्ताराद् व्यंगुलात् परे शंखौ । चतुरंगुलौ तु शंखौ कर्णौ तु व्यंगुलं पृथुलौ ॥ ६ ॥ कर्णोपान्तः कार्योऽर्धपञ्चमे भ्रूसमेन सूत्रेण । कर्णश्रोत्रः सुकुमारकं च नयनप्रबन्धसमं ॥ ७ ॥ चतुरंगुलं वसिष्ठः कथयति नेत्रान्तकर्णयोर्विवरम् । अधरोंऽगुलप्रमाणस्तस्यार्धेनोत्तरोष्ठश्च ॥ ८ ॥ अर्धांगुला तु गोच्छा वक्त्रं चतुरंगुलायतं

रज, आठ रजका वालाग्र, आठ वालाग्रकी लिक्षा, आठ लिक्षाकी यूका, आठ यूकाका यव और आठ यवका एक अंगुल होता है.
हैं. एक अंगुल संख्या होती है ॥ २ ॥
घटाकर जो बच रहे उसकी जो तिहाई हो वह पिण्डिका (मूर्तिकी पीठ) का प्रमाण है और पिण्डिका प्रमाणसे प्रतिमा (मूर्त्ति)का प्रमाण दूना होना चाहिये ॥ ३ ॥
जितनी ऊंचाई प्रतिमाकी आवे उसके बारह भाग कर एक २ भागके फिर नौ नौ भाग करे. वह एक अंगुल होता है, क्योंकि सब प्रतिमा अपने २ अंगुल प्रमाणसे एक सौ आठ अंगुल होती है. प्रतिमाका मुख अपने अंगुल प्रमाणसे बारह अंगुल चौडा और चौदह अंगुल लम्बा हो ऐसा नग्नजित् नाम आचार्यने कहा है. यह मान द्रविडदेशका है ॥ ४ ॥ प्रतिमाके नासिका, ललाट, ठोडी, गरदन और कर्ण अपने अंगुल प्रमाणसे चार २ अंगुल लम्बे बनाने चाहिये. हनु दो २ अंगुल लम्बे बनावे, चिबुककी चौडाई दो अंगुल होती है ॥ ५ ॥ आठ अंगुल चौडा माथा होता है; माथेसे दोनों ओर परे दो दो अंगुल प्रमाण (कनपटी) बनावे, कनपटीकी लम्बाई चार २ अंगुल रक्खे, कर्ण दो दो अंगुल चौडे बनावे ॥ ६ ॥
कर्णका उपान्त अर्थात् कर्णाग्र नेत्रांतसे लेकर भ्रू सम सूत्रसे, साढे चार अंगुलका करना चाहिये; कानका छेद और सुकुमारक अर्थात् कर्णस्रोतके समीपका उठा भाग नेत्रप्रबन्धके समान करना चाहिये ॥ ७ ॥ वशिष्ठमुनि कहते हैं कि नेत्र और कर्णान्तका अंतर चार अंगुल करना ठीक है. नीचेका ओष्ठ एक अंगुल और ऊपरका ओष्ठ आध अंगुल रखना चाहिये ॥ ८ ॥ गोच्छा आध अंगुल विस्तीर्ण करनी चाहिये, मुख चार अंगुल लम्बा और डेढ अंगुल चौडा रखना और व्यात्त

कार्यम्। विपुलं तु सार्धमंगुलं मध्यात्तदंगुलं व्यात्तम् ॥ ९ ॥ द्व्यंगुलतु
नासापुटौ च नासा पुटाग्रतो ज्ञेया। स्याद् द्व्यंगुलमुच्छ्रायश्चतुरंगुलमं
चाक्ष्णोः ॥ १० ॥ द्व्यंगुलमितोऽक्षिकोशो द्वे नेत्रे तत्त्रिभागिका तारा। दृ
तारापञ्चांशो नेत्रविकाशोऽंगुलं भवति ॥ ११ ॥ पर्यन्तात्पर्यन्तं दश भ्रुवो
र्धांगुलं भ्रुवोर्लेखाः। भ्रूमध्यं द्व्यंगुलकं भ्रूर्दैर्घ्येणांगुलचतुष्कम् ॥ १२ ॥
कार्या तु केशरेखा भ्रूबन्धसमांगुलार्धविस्तीर्णा। नेत्रान्ते करवीरकमुप्यन्स्
दंगुलमातिमम् ॥ १३ ॥ द्वात्रिंशत्परिणाहाच्चतुर्दशायामतोऽंगुलानि शिरः।
द्वादश तु चित्रकर्मणि दृश्यन्ते विंशतिरदृश्याः ॥ १४ ॥ आस्यं सकेशनिचयं
षोडश दैर्घ्येण नग्नजित्प्रोक्तम्। ग्रीवा दश विस्तीर्णा परिणाहाद्विंशतिः सैका
॥ १५ ॥ कण्ठाद्द्वादश हृदयं हृदयान्नाभिश्च तद्वत् प्रमाणेन। नाभीमध्यान्मेढ्रा-
न्तरं च तत्तुल्यमेवोक्तम् ॥ १६ ॥ ऊरू चांगुलमानश्चतुर्युता विंशतिस्तथा

मुख अर्थात् नृसिंह आदि देवताओंका फैला हुआ मुख तीन अंगुल चौड़ा करे ॥ ९ ॥
नासिकाके दोनों पुट दो दो अंगुलके करे और पुटोंके अग्रसे नासिकाभी दो अंगुल
जाने. नासिकाकी ऊँचाई दो अंगुल और दोनों नेत्रोंके बीच चार अंगुल अन्तर
रखना चाहिये ॥ १० ॥ नेत्रका कोश दो अंगुल, नेत्र दोनों दो २ अंगुल, नेत्रके
तिहाईके तुल्य तारा, ताराके पञ्चमांशके तुल्य दृष्टि बनावे और नेत्रकी चौड़ाई
एक अंगुलकी करे ॥ ११ ॥ एक भौंके अन्तसे दूसरे भौंके अन्ततक दश
अंगुल रखना चाहिये, आध अंगुल भूकी चौड़ाई दोनों भूका मध्यभाग दो अंगुल
और एक भौंकी लम्बाई चार चार अंगुल करनी चाहिये ॥ १२ ॥ माथेके ऊपर
केशरेखा भ्रूबन्धके तुल्य करे और आध अंगुल चौड़ी केशरेखा रक्खे, नेत्रके
अन्तमें एक अंगुलका करवीरक करे जिसको मूर्तिकारभी कहते हैं ॥ १३ ॥ बत्तीस
अंगुल लम्बा, चौदह अंगुल चौड़ा शिर बनाना चाहिये, जो चित्र बनाना हो तो
उसमें शिर बारह अंगुल दिखाई पड़ता है और बीस अंगुल जो पीछेकी
ओर रहते हैं वह नहीं दीख पड़ते ॥ १४ ॥ नग्नजित्आचार्यने केशोंसहित
मुखका विस्तार सोलह अंगुल कहा है, ग्रीवाका विस्तार दश अंगुल और उसकी
मुटाई इक्कीस अंगुल कही है ॥ १५ ॥ कंठके नीचे भागसे हृदयतक बारह
अंगुल अंतर रक्खे, हृदयसे नाभितक और नाभिके मध्यसे लिंगके मध्यतक बारह
बारह अंगुलकी अंतर कहा है ॥ १६ ॥ ऊरु और जंघा चौबीस २ अंगुल लम्बे
करने चाहिये, घोंटोंके ऊपरकी चाकी चार अंगुल और चारकी चार

णानि यथोत्तरमंगुलमेकं भवति संख्या ॥ २ ॥ देवागारद्वारस्याष्टांशोनस्य परस्तृतीयोंऽशः । तत्पिण्डिकाप्रमाणं प्रतिमा तद्द्विगुणपरिमाणा ॥ ३ ॥ स्वैरंगुलप्रमाणैर्द्वादश विस्तीर्णमायतं च मुखम् । नग्नजिता तु चतुर्दश दैर्घ्येण द्राविडं कथितम् ॥ ४॥ नासाललाटचिबुकग्रीवाश्चतुरंगुलास्तथा कर्णौ । द्वे अंगुले च हनुके चिबुकं तु द्व्यंगुलं विस्तृतम्॥५॥ अष्टांगुलं ललाटं विस्ताराद् द्व्यंगुलात्परे शंखौ । चतुरंगुलौ तु शंखौ कर्णौ तु द्व्यंगुलं पृथुलौ ॥ ६ ॥ कर्णोपान्तः कार्योऽर्धपञ्चमे भ्रूसमेन सूत्रेण । कर्णश्रोत्रः सुकुमारकं च नयनप्रबन्धसमम् ॥ ७ ॥ चतुरंगुलं वसिष्ठः कथयति नेत्रान्तकर्णयोर्विवरम् । अधरोऽङ्गुलप्रमाणस्तस्यार्धेनोत्तरोष्ठश्च ॥ ८ ॥ अर्धांगुला तु गोच्छा वक्त्रं चतुरंगुलायतं

रज, आठ रजका वालाग्र, आठ वालाग्रकी लिक्षा, आठ लिक्षाकी यूका, आठ यूकाका यव और आठ यवका एक अंगुल होता है, इस प्रकार यह प्रमाण उत्तरोत्तर बढ़ता है. एक अंगुल संख्या होती है ॥ २ ॥ देवमंदिरके द्वारकी ऊँचाईमें उसका आठवां घटाकर जो बच रहे उसकी जो तिहाई हो वह पिण्डिका (मूर्तिकी पीठ) का प्रमाण है और पिण्डिका प्रमाणसे प्रतिमा (मूर्त्ति)का प्रमाण दूना होना चाहिये ॥ ३ ॥ जितनी ऊंचाई प्रतिमाकी आवे उसके बारह भाग कर एक २ भागके फिर नौ भाग करे. वह एक अंगुल होता है, क्योंकि सब प्रतिमा अपने २ अंगुल प्रमाणसे एक सौ आठ अंगुल होती है. प्रतिमाका मुख अपने अंगुल प्रमाणसे बारह अंगुल चौडा और चौदह अंगुल लम्बा हो ऐसा नग्नजित् नाम आचार्यने कहा है. यह मान द्रविडदेशका है ॥ ४ ॥ प्रतिमाके नासिका, ललाट, ठोडी, गरदन और कान अपने अंगुल प्रमाणसे चार २ अंगुल लम्बे बनाने चाहिये. हनु दो २ अंगुल लम्बे बनावे, चिबुककी चौडाई दो अंगुल होती है ॥ ५ ॥ आठ अंगुल चौडा माथा होता है; माथेसे दोनों ओर परे दो दो अंगुल प्रमाण (कनपटी) रखे, कनपटीकी लम्बाई चार २ अंगुल रखे, कर्ण दो दो अंगुल चौडे बनावे ॥ ६ ॥ कर्णका उपान्त अर्थात् कर्णाग्र नेत्रांतसे लेकर भ्रू सम सूत्रसे, साढे चार अंगुल करना चाहिये; कानका छेद और सुकुमारक अर्थात् कर्णश्रोतके समीपका भाग नेत्रबन्धके समान करना चाहिये ॥ ७ ॥ वशिष्ठमुनि कहते हैं कि नेत्र और कर्णान्तरका अंतर चार अंगुल करना ठीक है. नीचेका ओठ एक अंगुल और ऊपरका ओठ आध अंगुल रखना चाहिये ॥ ८ ॥ गोच्छा आध अंगुल लिखनी चाहिये, मुख चार अंगुल लम्बा और डेढ अंगुल चौडा रखना और ...

कार्यम् । विपुलं तु सार्धमंगुलं मध्यात्त्र्यंगुलं व्यात्तम् ॥ ९ ॥ व्यंगुल
॥सापुटौ च नासा पुटाग्रतो ज्ञेया । स्याद् व्यंगुलमुच्छ्रायश्चतुरंगुलम
चाक्ष्णोः ॥ १० ॥ व्यंगुलमितोऽक्षिकोशो द्वे नेत्रे तत्त्रिभागिका तारा ।
ताराप्चांशो नेत्रविकाशोऽङ्गुलं भवति ॥ ११ ॥ पर्यन्तात्पर्यन्तं दश भ्रुवो
र्धांगुलं भ्रुवोर्लेखाः । भ्रूमध्यं व्यंगुलकं भ्रूर्दैर्घ्येणांगुलचतुष्कम् ॥ १२ ॥
कार्या तु केशरेखा भ्रूबन्धसमांगुलार्धविस्तीर्णा । नेत्रान्ते करवीरकमुपन्यसे-
दंगुलप्रतिमम् ॥ १३ ॥ द्वात्रिंशत्परिणाहाच्चतुर्दशायामतोऽङ्गुलानि शिरः ।
द्वादश तु चित्रकर्मणि दृश्यन्ते विंशतिरदृश्याः ॥ १४ ॥ आस्यं सकेशनिचयं
षोडश दैर्घ्येण नग्नजित्प्रोक्तम् । ग्रीवा दश विस्तीर्णा परिणाहाद्विंशतिः सैका
॥ १५ ॥ कण्ठाद्द्वादश हृदयं हृदयान्नाभिश्च तत्प्रमाणेन । नाभीमध्यान्मेढ्रा-
न्तरं च तत्तुल्यमेवोक्तम् ॥ १६ ॥ ऊरू चांगुलमानैश्चतुर्युता विंशतिस्तथा

मुख अर्थात् नृसिंह आदि देवताओंका फैला हुआ मुख तीन अंगुल चौडा करे ॥९॥
नासिकाके दोनों पुट दो दो अंगुलके करे और पुटोंके अग्रसे नासिकाभी दो अंगुल
जाने. नासिकाकी ऊँचाई दो अंगुल और दोनों नेत्रोंके बीच चार अंगुल अन्तर
रखना चाहिये ॥ १० ॥ नेत्रका कोश दो अंगुल, नेत्र दोनों दो २ अंगुल, नेत्रके
तिहाईके तुल्य तारा, ताराके पञ्चमांशके तुल्य दृष्टि बनावे और नेत्रकी चौडाई
एक अंगुलकी करे ॥ ११ ॥ एक भौंके अन्तसे दूसरे भौंके अन्ततक दश
अंगुल रखना चाहिये, आध अंगुल भ्रूकी चौडाई दोनों भ्रूका मध्यभाग दो अंगुल
और एक भौंकी लम्बाई चार चार अंगुल करनी चाहिये ॥ १२ ॥ माथेके ऊपर
केशरेखा भ्रूबन्धके तुल्य करे और आध अंगुल चौडी केशरेखा रक्खे, नेत्रके
अन्तमें एक अंगुलका करवीरक करे जिसको भृकुटीभी कहते हैं ॥ १३ ॥ बत्तीस
अंगुल लम्बा, चौदह अंगुल चौडा शिर बनाना चाहिये, जो चित्र बनाया जाय
उसमें शिर बारह अंगुल दिखलाई पडता है और बीस अंगुल जो छिपे
रहते हैं वह नहीं दीख पडते ॥ १४ ॥ नग्नजित् आचार्यने केशोंसहित
मुखका विस्तार सोलह अंगुल कहा है, ग्रीवाका विस्तार दश अंगुल और उसकी
मोटाई इक्कीस अंगुल कही है ॥ १५ ॥ कंठके आगे भागसे हृदयतक बारह
अंगुल अंतर रक्खे, हृदयसे नाभितक और नाभिके मध्यसे लिंगके मध्यतक बारह
अंगुल अंतर कहा है ॥ १६ ॥ ऊरु और जंघा चौबीस २ अंगुल लम्बे
चाहिये, गोडोंके ऊपरकी पाडी चार अंगुल और पडनी चार

णानि यथोत्तरमंगुलमेकं भवति संख्या ॥ २ ॥ देवागारद्वारस्याष्टांशोनस्य यस्तृतीयोंऽशः । तत्पिण्डिकाप्रमाणं प्रतिमा तद्द्विगुणपरिमाणा ॥ ३ ॥ स्वैरं-गुलप्रमाणैर्द्वादश विस्तीर्णमायतं च मुखम् । नग्नजिता तु चतुर्दश दैर्घ्येण द्राविडं कथितम् ॥ ४॥ नासाललाटचिबुकग्रीवाश्चतुरंगुलास्तथा कर्णौ । द्वे अंगुले च हनुके चिबुकं तु द्व्यंगुलं विस्तृतम्॥५॥ अष्टांगुलं ललाटं विस्तारात् द्व्यंगुलात् परे शंखौ । चतुरंगुलौ तु शंखौ कर्णौ तु द्व्यंगुलं पृथुलौ ॥ ६ ॥ कर्णोपान्तः कार्योऽर्धपञ्चमे भ्रूसमेन सूत्रेण । कर्णश्रोत्रः सुकुमारकं च नयनप्रबन्धसमम् ॥ ७ ॥ चतुरंगुलं वसिष्ठः कथयति नेत्रान्तकर्णयोर्विवरम् । अधरोऽङ्गुलप्रमाणस्तस्यार्धेनोत्तरोष्ठश्च ॥ ८ ॥ अर्धांगुला तु गोच्छा वक्त्रं चतुरंगुलायतं

रज, आठ रजका वालाग्र, आठ वालाग्रकी लिक्षा, आठ लिक्षाकी यूका, आठ यूकाका यव और आठ यवका एक अंगुल होता है, इस प्रकार यह प्रमाण उत्तरोत्तर आठगुने हैं. एक अंगुल संख्या होती है ॥ २ ॥ देवमंदिरके द्वारकी ऊँचाईमें उसका अष्टमांश घटाकर जो बच रहे उसकी जो तिहाई हो वह पिण्डिका (मूर्तिकी पीठ) का प्रमाण है और पिण्डिका प्रमाणसे प्रतिमा (मूर्त्ति) का प्रमाण दूना होना चाहिये ॥ ३ ॥ जितनी ऊंचाई प्रतिमाकी आवे उसके बारह भाग कर एक २ भागके फिर नौ नौ भाग करे. वह एक अंगुल होता है, क्योंकि सब प्रतिमा अपने २ अंगुल प्रमाणसे एक सौ आठ अंगुल होती है. प्रतिमाका मुख अपने अंगुल प्रमाणसे बारह अंगुल चौडा और चौदह अंगुल लम्बा हो ऐसा नग्नजित् नाम आचार्यने कहा है. यह मान द्रविडदेशका है ॥ ४ ॥ प्रतिमाके नासिका, ललाट, ठोडी, गरदन और कर्ण अपने अंगुल प्रमाणसे चार २ अंगुल लम्बे बनाने चाहिये. हनु दो २ अंगुल लम्बे बनावे, चिबुककी चौडाई दो अंगुल होती है ॥ ५ ॥ आठ अंगुल चौडा माथा होता है; माथेसे दोनों ओर परे दो दो अंगुल प्रमाण (कनपटी) बनावे. कनपटीकी लम्बाई चार २ अंगुल रक्खे, कर्ण दो दो अंगुल चौडे बनावे ॥ ६ ॥ कर्णका उपान्त अर्थात् कर्णाग्र नेत्रांतसे लेकर भ्रू सम सूत्रसे, साढे चार अंगुल करना चाहिये; कानका छेद और सुकुमारक अर्थात् कर्णस्रोतके समीपका भाग नेत्रप्रबन्धके समान करना चाहिये ॥ ७ ॥ वशिष्ठमुनि कहते हैं कि नेत्र और कर्णान्तका अंतर चार अंगुल करना ठीक है. नीचेका ओष्ठ एक अंगुल और ऊपरका ओष्ठ आध अंगुल रखना चाहिये ॥ ८ ॥ गोच्छा आध अंगुल लिखनी करनी चाहिये, मुख चार अंगुल लम्बा और डेढ अंगुल चौडा रखना और

कार्यम् । विपुलं तु सार्धमंगुलं मध्यात्त्र्यंगुलं व्यात्तम् ॥ ९ ॥ द्व्यंगुलतुल्यौ नासापुटौ च नासा पुटाग्रतो ज्ञेया । स्याद् द्व्यंगुलमुच्छ्रायश्चतुरंगुलमन्तरं चाक्ष्णोः ॥ १० ॥ द्व्यंगुलमितोऽक्षिकोशो द्वे नेत्रे तत्त्रिभागिका तारा । दृक्तारापञ्चांशो नेत्रविकाशोऽङ्गुलं भवति ॥ ११ ॥ पर्यन्तात्पर्यन्तं दश भ्रुवोऽर्धांगुलं भ्रुवोर्लेखाः । भ्रूमध्यं द्व्यंगुलकं भ्रूर्दैर्घ्येणांगुलचतुष्कम् ॥ १२ ॥ कार्या तु केशरेखा भ्रूबन्धसमांगुलार्धविस्तीर्णा । नेत्रान्ते करवीरकमुपन्यसेद्द्व्यंगुलप्रमितम् ॥ १३ ॥ द्वात्रिंशत्परिणाहाच्चतुर्दशायामतोऽङ्गुलानि शिरः । द्वादश तु चित्रकर्मणि दृश्यन्ते विंशतिरदृश्याः ॥ १४ ॥ आस्यं सकेशनिचयं षोडश दैर्घ्येण नग्नजित्प्रोक्तम् । ग्रीवा दश विस्तीर्णा परिणाहाद्विंशतिः सैका ॥ १५ ॥ कण्ठाद्द्वादश हृदयं हृदयान्नाभिश्च तत् प्रमाणेन । नाभीमध्यान्मेढ्रान्तरं च तत्तुल्यमेवोक्तम् ॥ १६ ॥ ऊरू चांगुलमानैश्चतुर्युता विंशतिस्तथा

मुख अर्थात् नृसिंह आदि देवताओंका फैला हुआ मुख तीन अंगुल चौडा करे ॥ ९ ॥ नासिकाके दोनों पुट दो दो अंगुलके करे और पुटोंके अग्रसे नासिकाभी दो अंगुल जाने. नासिकाकी ऊँचाई दो अंगुल और दोनों नेत्रोंके बीच चार अंगुल अन्तर रखना चाहिये ॥ १० ॥ नेत्रका कोश दो अंगुल, नेत्र दोनों दो २ अंगुल, नेत्रकी तिहाईके तुल्य तारा, ताराके पञ्चमांशके तुल्य दृक् बनावे और नेत्रकी चौडाई एक अंगुलकी करे ॥ ११ ॥ एक भौंके अन्तसे दूसरे भौंके अन्ततक दश अंगुल रखना चाहिये, आध अंगुल भूकी चौडाई दोनों भूका मध्यभाग दो अंगुल और एक भौंकी लम्बाई चार चार अंगुल करनी चाहिये ॥ १२ ॥ माथेके ऊपर केशरेखा भ्रूबन्धके तुल्य करे और आध अंगुल चौडी केशरेखा रक्खे, नेत्रके अंतमें एक अंगुलका करवीरक करे जिसको मुखिकाभी कहते हैं ॥ १३ ॥ बत्तीस अंगुल लम्बा, चौदह अंगुल चौडा शिर बनाना चाहिये, जो चित्र बनाया जाय तो उसमें शिर बारह अंगुल दिखलाई पडता है और बीस अंगुल जो पीछेकी ओर रहते हैं वह नहीं दीख पडते ॥ १४ ॥ नग्नजित् आचार्यने केशसहित मुखका विस्तार सोलह अंगुल कहा है, ग्रीवाका विस्तार दश अंगुल और उसकी लम्बाई इक्कीस अंगुल कही है ॥ १५ ॥ कंठसे आगे मापके हृदयतक बारह अंगुल अंतर रक्खे, हृदयसे नाभितक और नाभिके मध्यसे लिंगके मध्यतक बारह अंगुलही अंतर कहा है ॥ १६ ॥ ऊरु और जंघा चौबीस २ अंगुल लम्बे करने चाहिये, घोंटोंके ऊपरकी चाकी चार अंगुल और पादकी चार

णानि यथोत्तरमंगुलमेकं भवति संख्या ॥ २ ॥ देवागारद्वारस्याष्टांशोनस्य यस्तृतीयोंऽशः । तत्पिण्डिकाप्रमाणं प्रतिमा तद्द्विगुणपरिमाणा ॥ ३ ॥ स्वैरंगुलप्रमाणैर्द्वादश विस्तीर्णमायतं च मुखम् । नग्नजिता तु चतुर्दश दैर्घ्येण द्राविडं कथितम् ॥ ४॥ नासाललाटचिबुकग्रीवाश्चतुरंगुलास्तथा कर्णौ । द्वे अंगुले च हनुके चिबुकं तु द्व्यंगुलं विस्तृतम्॥५॥ अष्टांगुलं ललाटं विस्ताराद् द्व्यंगुलात् परे शंखौ । चतुरंगुलौ तु शंखौ कर्णौ तु द्व्यंगुलं पृथुलौ ॥ ६ ॥ कर्णोपान्तः कार्योऽर्धपञ्चमे भ्रूसमेन सूत्रेण । कर्णश्रोत्रः सुकुमारकं च नयनप्रबन्धसमम् ॥ ७ ॥ चतुरंगुलं वसिष्ठः कथयति नेत्रान्तकर्णयोर्विवरम् । अधरोंऽगुलप्रमाणस्तस्यार्धेनोत्तरोष्ठश्च ॥ ८ ॥ अर्धांगुला तु गोच्छा वक्त्रं चतुरंगुलायतं

रज, आठ रजका वालाग्र, आठ वालाग्रकी लिक्षा, आठ लिक्षाकी यूका, आठ यूकाका यव और आठ यवका एक अंगुल होता है. एक अंगुल संख्या होती है ॥ २ ॥

घटाकर जो बच रहे उसकी जो तिहाई हो वह पिण्डिका (मूर्त्तिकी पीठ) का प्रमाण है और पिण्डिका प्रमाणसे प्रतिमा (मूर्त्ति)का प्रमाण दूना होना चाहिये ॥ ३ ॥ जितनी ऊंचाई प्रतिमाकी आवे उसके बारह भाग कर एक २ भागके नौ भाग करे. वह एक अंगुल होता है, क्योंकि सब प्रतिमा अपने २ अंगुल प्रमाणसे एक सौ आठ अंगुल होती है. प्रतिमाका मुख अपने अंगुल प्रमाणसे बारह अंगुल चौडा और चौदह अंगुल लम्बा हो ऐसा नग्नजित् नाम आचार्यने कहा है. यह मान द्रविडदेशका है ॥ ४ ॥ प्रतिमाके नासिका, ललाट, ठोडी, गर्दन और कान अपने अंगुल प्रमाणसे चार २ अंगुल लम्बे बनाने चाहिये. हनु दो २ अंगुल लम्बे बनावे, चिबुककी चौडाई दो अंगुल होती है ॥ ५ ॥ आठ अंगुल चौडा माथा होता है; माथेसे दोनों ओर परे दो दो अंगुल प्रमाण (कनपटी) करे, कनपटीकी लम्बाई चार २ अंगुल रक्खे, कर्ण दो दो अंगुल चौडे बनावे ॥ ६ ॥ कर्णका उपान्त अर्थात् कर्णाग्र नेत्रांतसे लेकर भ्रू सम सूत्रसे, साढे चार अंगुल करना चाहिये; कानका छेद और सुकुमारक अर्थात् कर्णस्रोतके समीपका भाग नेत्रप्रबन्धके समान करना चाहिये ॥ ७ ॥ वशिष्ठमुनि कहते हैं कि नेत्र और कर्णान्तका अंतर चार अंगुल करना ठीक है. नीचेका ओष्ठ एक अंगुल और ऊपरका ओष्ठ आध अंगुल रखना चाहिये ॥ ८ ॥ गोच्छा आध अंगुल लिखी करनी चाहिये, मुख चार अंगुल लम्बा और डेढ अंगुल चौडा रखना और व्या

कार्यम् । विपुलं तु सार्धमङ्गुलं मध्यात्त्र्यङ्गुलं व्यात्तम् ॥ ९ ॥ द्व्यङ्गुलतुल्यौ नासापुटौ च नासा पुटाग्रतो ज्ञेया । स्याद् द्व्यङ्गुलमुच्छ्रायश्चतुरङ्गुलमन्तरं चाक्ष्णोः ॥ १० ॥ द्व्यङ्गुलमितोऽक्षिकोशो द्वे नेत्रे तत्त्रिभागिका तारा । दृक् तारापञ्चांशो नेत्रविकाशोऽङ्गुलं भवति ॥ ११ ॥ पर्यन्तात्पर्यन्तं दश भ्रुवोऽर्धाङ्गुलं भ्रुवोर्लेखा । भ्रूमध्यं द्व्यङ्गुलकं भ्रूर्दैर्घ्येणाङ्गुलचतुष्कम् ॥ १२ ॥ कार्या तु केशरेखा भ्रूबन्धसमाङ्गुलार्धविस्तीर्णा । नेत्रान्ते करवीरकमुपन्यसेदङ्गुलप्रमितम् ॥ १३ ॥ द्वात्रिंशत्परिणाहाच्चतुर्दशायामतोऽङ्गुलानि शिरः । द्वादश तु चित्रकर्मणि दृश्यन्ते विंशतिरदृश्याः ॥ १४ ॥ आस्यं सकेशनिचयं षोडश दैर्घ्येण नग्नजित्प्रोक्तम् । ग्रीवा दश विस्तीर्णा परिणाहाद्विंशतिः सैका ॥ १५ ॥ कण्ठाद्द्वादश हृदयं हृदयान्नाभिश्च तत् प्रमाणेन । नाभीमध्यान्मेढ्रान्तरं च तत्तुल्यमेवोक्तम् ॥ १६ ॥ ऊरू चाङ्गुलमानैश्चतुर्युता विंशतिस्तथा

मुख अर्थात् नृसिंह आदि देवताओंका फैला हुआ मुख तीन अंगुल चौडा करे ॥ ९ ॥ नासिकाके दोनों पुट दो दो अंगुलके करे और पुटोंके अग्रसे नासिकाकी दो अंगुल जाने. नासिकाकी ऊँचाई दो अंगुल और दोनों नेत्रोंके बीच चार अंगुल अन्तर रखना चाहिये ॥ १० ॥ नेत्रका कोश दो अंगुल, नेत्र दोनों दो २ अंगुल, नेत्रकी तिहाईके तुल्य तारा, ताराके पञ्चमांशके तुल्य दृक् बनावे और नेत्रकी चौडाई एक अंगुलकी करे ॥ ११ ॥ एक भौंके अन्तसे दूसरे भौंके अन्ततक दश अंगुल रखना चाहिये, आध अंगुल भ्रूकी चौडाई दोनों भ्रूका मध्यभाग दो अंगुल और एक भौंकी लम्बाई चार चार अंगुल करनी चाहिये ॥ १२ ॥ माथेके ऊपर केशरेखा भ्रूबन्धके तुल्य करे और आध अंगुल चौडी केशरेखा रक्खे, नेत्रके अंतमें एक अंगुलका करवीरक करे जिसको सुपेदाभी कहते हैं ॥ १३ ॥ बत्तीस अंगुल लम्बा, चौदह अंगुल चौडा शिर बनाना चाहिये, जो चित्र बनाना हो तो उसमें शिर बारह अंगुल दिखलाई पडता है और बीस अंगुल जो पीछेको ओर रहते हैं वह नहीं दीख पडते ॥ १४ ॥ नग्नजित्आचार्यने केशोंसहित मुखका विस्तार सोलह अंगुल कहा है, ग्रीवाका विस्तार दश अंगुल और उसकी लम्बाई इकीस अंगुल कही है ॥ १५ ॥ कंठके नीचे मापसे हृदयतक बारह अंगुल अंतर रक्खे, हृदयसे नाभितक और नाभिके मध्यसे लिंगके मध्यतक बारह अंगुलही अंतर कहा है ॥ १६ ॥ ऊरु और जंघा चौबीस २ अंगुल लम्बे करने चाहिये, गोडोंके ऊपरकी टांकी चार अंगुल और पादकी ऊंच

णानि यथोत्तरमंगुलमेकं भवति संख्या ॥ २ ॥ देवागारद्वारस्याष्टांशोन्म परस्तृतीयोंऽशः। तत्पिण्डिकाप्रमाणं प्रतिमा तद्विगुणपरिमाणा ॥ ३ ॥ स्वैः गुलप्रमाणैर्द्वादश विस्तीर्णमायतं च मुखम्। नग्नजिता तु चतुर्दश दैर्घ्येण द्राविडं कथितम् ॥ ४॥ नासाललाटचिबुकग्रीवाश्चतुरंगुलास्तथा कर्णौ। द्वे अंगुले च हनुके चिबुकं तु व्यंगुलं विस्तृतम्॥५॥ अष्टांगुलं ललाटं विस्तारात् द्व्यंगुलात् परे शंखौ। चतुरंगुलौ तु शंखौ कर्णौ तु व्यंगुलं पृथुलौ ॥ ६ ॥ कर्णोपान्तः कार्योऽर्धपञ्चमे भ्रूसमेन सूत्रेण। कर्णश्रोत्रः सुकुमारकं च नयनप्रबन्धसमम् ॥ ७ ॥ चतुरंगुलं वसिष्ठः कथयति नेत्रान्तकर्णयोर्विवरम्। अधरोऽङ्गुलप्रमाणस्तस्यार्धेनोत्तरोष्ठश्च ॥ ८ ॥ अर्धांगुला तु गोच्छा वक्त्रं चतुरंगुलायतं

रज, आठ रजका वालाग्र, आठ वालाग्रकी लिक्षा, आठ लिक्षाकी यूका, आठ यूकाका यव और आठ यवका एक अंगुल होता है, इस प्रकार यह प्रमाण उत्तरोत्तर आठगुना है. एक अंगुल संख्या होती है ॥ २ ॥ देवमंदिरके द्वारकी ऊँचाईमें उसका आठवां घटाकर जो बच रहे उसकी जो तिहाई हो वह पिण्डिका (मूर्तिकी पीठ) का प्रमाण है और पिण्डिका प्रमाणसे प्रतिमा (मूर्त्ति) का प्रमाण दूना होना चाहिये ॥ ३ ॥ जितनी ऊंचाई प्रतिमाकी आवे उसके वारह भाग कर एक २ भागके फिर नौ नौ भाग करे. वह एक अंगुल होता है, क्योंकि सब प्रतिमा अपने २ अंगुल प्रमाणसे एक सौ आठ अंगुल होती है. प्रतिमाका मुख अपने अंगुल प्रमाणसे बारह अंगुल चौडा और चौदह अंगुल लम्बा हो ऐसा नग्नजित नाम आचार्यने कहा है. यह मान द्रविडदेशका है ॥ ४ ॥ प्रतिमाके नासिका, ललाट, ठोडी, गरदन और कान अपने अंगुल प्रमाणसे चार २ अंगुल लम्बे बनाने चाहिये. हनु दो २ अंगुल लम्बे बनावे, चिबुककी चौडाई दो अंगुल होती है ॥ ५ ॥ आठ अंगुल चौडा माथा होता है; माथेसे दोनों ओर परे दो दो अंगुल प्रमाण (कनपटी) करे, कनपटीकी लम्बाई चार २ अंगुल रक्खे, कर्ण दो दो अंगुल चौडे बनावे ॥ ६ ॥ कर्णका उपान्त अर्थात् कर्णाग्र नेत्रांतसे लेकर भ्रू सम सूत्रसे, साढे चार अंगुल करना चाहिये; कानका छेद और सुकुमारक अर्थात् कर्णस्रोतके समीपका भाग नेत्रप्रबन्धके समान करना चाहिये ॥ ७ ॥ वशिष्ठमुनि कहते हैं कि नेत्र और कर्णान्तका अंतर चार अंगुल करना ठीक है. नीचेका ओष्ठ एक अंगुल और ऊपरका ओष्ठ आध अंगुल रखना चाहिये ॥ ८ ॥ गोच्छा आध अंगुल विस्तीर्ण करनी चाहिये, मुख चार अंगुल लम्बा और डेढ अंगुल चौडा रखना और ...

प्रतिबाहू त्र्यंगुलचतुष्कम् ॥ २५ ॥ षोडश बाहू मूले परिणाहाद्द्वा-
दशाग्रे च । विस्तारेण करतलं षडंगुलं सप्त दैर्घ्येण ॥ २६ ॥ पञ्चांगु-
ला प्रदेशिनी मध्यपर्वदलहीना । अनया तुल्या चानामिका कनिष्ठा तु
॥ २७ ॥ पर्वद्वयमंगुष्ठः शेषांगुलयस्त्रिभिस्त्रिभिः कार्याः । नखपरिमाणं
[illegible] पर्वणोऽर्धेन ॥ २८ ॥ देशानुरूपभूषणवेषालङ्कारमूर्तिभिः कार्या ।
लक्षणयुक्ता सन्निहिता वृद्धिदा भवति ॥ २९ ॥ दशरथतनयो रामो
वैरोचनिः शतं विंशम् । द्वादशहान्या शेषाः प्रवरसमन्यूनपरिमाणाः
। कार्योऽष्टभुजो भगवांश्चतुर्भुजो द्विभुज एव वा विष्णुः । श्रीवत्साङ्कित-
कौस्तुभमणिभूषितोरस्कः ॥ ३१ ॥ अतसीकुसुमश्यामः पीताम्बरनिवसनः

बाहुका चार अंगुल रखना चाहिये ॥ २५ ॥ बाहुके मूलमें सोलह अंगुल
रमें अर्थात् प्रकोष्ठके समीप बारह अंगुल परिणाह रखना चाहिये और
की चौडाई छः अंगुल और लम्बाई सात अंगुल रखनी चाहिये ॥ २६ ॥
समीपकी अंगुली प्रदेशिनी, उसके आगेकी मध्यमा, उससे आगे अना-
और अनामिकासे आगेकी अंगुली कनिष्ठा कहाती है और एक २ अंगुलीमें
न पोरुवे होते हैं. मध्यमा पांच अंगुल लम्बी करे, मध्यमाके बिचले पोरु-
आधा घटा देवे तो प्रदेशिनीकी लम्बाई होती है और प्रदेशिनीके तुल्य
का होती है, अनामिकामें एक पोरुवा घटानेसे कनिष्ठाकी लम्बाई होती
७ ॥ अंगूठेके दो पोरुवे और शेष चार अंगुलियोंके तीन २ पोरुवे करने
और सब अंगुलियोंके नखोंकी लम्बाई अपने २ पर्वके अर्धके तुल्य
२८ ॥ अपने २ देशके अनुसार प्रतिमाके भूषण, वेष, अलंकार (शृंगार)
और बनावे; लक्षणयुक्त प्रतिमामें देवताका सान्निध्य होता है, इससे वह
वालेकी सब प्रकारसे वृद्धि करती है ॥ २९ ॥ दशरथके पुत्र
रामचन्द्रजीकी और विरोचनके पुत्र बलिकी प्रतिमा एक सौ
अंगुल लम्बी बनावे और सब प्रतिमा एक सौ आठ अंगुल ऊंची उत्तम,
बीस अंगुल लम्बी मध्यम, चौरासी अंगुल लम्बी प्रतिमा निकृष्ट होती है.
भगवान्की प्रतिमा अष्टभुज, चतुर्भुज अथवा द्विभुज बनावे, श्रीवत्सचिह्न
और कौस्तुभमणिसे प्रतिमाके वक्षःस्थलको शोभायमान करे ॥ ३० ॥ ३१ ॥
के फूलके समान प्रतिमाका रंग करे, पीत वस्त्र पहिरावे, प्रतिमा प्रसन्न-
मुख, किरीट पहने हो और प्रतिमाके दाहिने तीन हाथोंमें खड्ग, गदा,

जंघे । जानुकपिच्छे चतुरंगुले च पादौ च तत्तुल्यौ ॥ १७ ॥
षट् पृथुतया च पादौ त्रिकायतांगुष्ठौ । पञ्चांगुलपरिणाहौ ...
दीर्घा ॥ १८ ॥ अष्टांशाष्टांशोनाः शेषांगुल्यः क्रमेण कर्त्तव्याः ।
गुलमुत्सेधोऽगुष्ठकस्योक्तः ॥ १९ ॥ अंगुष्ठनखः क...
तज्ज्ञैः । शेषनखानामर्धांगुलं क्रमात् किञ्चिदूनं वा ॥ २० ॥ ...
हश्चतुर्दशोक्तस्तु विस्तरः पञ्च । मध्ये तु सप्त विपुला परिणाह...
सप्त ॥ २१ ॥ अष्टौ तु जानुमध्ये वैपुल्यं त्र्यष्टकं तु परिणाहः ।
दशोरू मध्ये द्विगुणश्च तत्परिधिः ॥ २२ ॥ कटिरष्टादश विं...
शचतुर्युता परिधौ । अंगुलमेकं नाभिर्वेधेन तथा प्रमाणेन ॥ २३ ॥
शद् द्वियुता नाभीमध्येन मध्यपरिणाहः । स्तनयोः षोडश ...
षडंगुलिके ॥ २४ ॥ कार्यावष्टावंसौ द्वादश बाहू तथा प्रबाहू च ।

अंगुल करे ॥ १७ ॥ बारह अंगुल लम्बे और छः अंगुल चौड़े चाहिये, दोनों पांवोंके अंगूठे तीन अंगुल लम्बे बनावे और (अंगुष्ठके समीपकी अंगुली) तीन अंगुल लम्बी रक्खे ॥ १८ ॥ अंगुली प्रदेशिनीसे अष्टांश अष्टांश कम करके क्रमके अनुसार बनावे, ऊँचाई सवा अंगुल कही है, इसी हिसाबसे और अंगुलियोंकी ऊँचाई ... प्रतिमाका लक्षण जाननेवालोंने अंगूठेके नखकी लम्बाई पौन अंगुल कही ... शेष अंगुलियोंके नखोंकी लम्बाई आध २ अंगुल करे अथवा कुछ न्यून बनाया जाय जिसमें अंगुली और नख सुन्दर दीखें ॥ २० ॥ ... भागकी विशालता चौदह अंगुल और विस्तार पांच अंगुल कहा है, ... भागका विस्तार सात अंगुल और विशालता इकीस अंगुल कही है ॥ २१ ॥ जानुके मध्यका विस्तार आठ अंगुल और विशालता चौबीस अंगुल ... मध्यभागमें चौदह अंगुल विस्तीर्ण होते हैं और अट्ठाईस अंगुल ... है ॥ २२ ॥ कटिका विस्तार अठारह अंगुल और कटिकी परिधि ... होती है, नाभिका विस्तार और वेध (गहराई) एक २ अंगुल होवे ॥ २३ ॥ नाभिकी बीचमें होकर मध्यभागका परिणाह बयालीस अंगुल होवे ... स्तनोंका अंतर सोलह अंगुल और स्तनोंके ऊपर सिरे छः छः अंगुल ... होते हैं ॥ २४ ॥ कंधोंकी लम्बाई गर्दनसे लेकर आठ अंगुल ... बारह २ अंगुल लम्बे बाहु और प्रबाहु करने ठीक हैं, बाहुका विस्तार ...

पूजां वृक्षं संस्पृश्य च ब्रूयात् ॥९॥ अर्चार्थममुकस्य त्वं देवस्य परिकल्पितः । नमस्ते वृक्ष पूजेयं विधिवत्संप्रगृह्यताम् ॥ १० ॥ यानीह भूतानि वसन्ति तानि बलिं गृहीत्वा विधिवत्प्रयुक्तम् । अन्यत्र वासं परिकल्पयन्तु क्षमन्तु तान्यद्य नमोऽस्तु तेभ्यः ॥ ११ ॥ वृक्षं प्रभाते सलिलेन सिक्त्वा पूर्वोत्तरस्यां दिशि सन्निकृत्य । मध्वाज्यलिप्तेन कुठारकेण प्रदक्षिणं शेषमतोऽभिहन्यात् ॥ १२ ॥ पूर्वेण पूर्वोत्तरतोऽथवोदक् पतेद्यदा वृद्धिकरस्तदा स्यात् । आग्नेयकोणात् क्रमशोऽग्निदाहः क्षुद्रोगरोगास्तुरगक्षयश्च ॥ १३ ॥ यन्नोक्तमस्मिन्वनसंप्रवेशे निपातविच्छेदनवृक्षगर्भाः । इन्द्रध्वजे वास्तुनि च प्रदिष्टाः पूर्वं मया तेऽत्र तथैव योज्याः ॥ १४ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां वनसंप्रवेशो नामै-
कोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

विनायकादिकी रात्रिके समय पूजा करके वृक्षको स्पर्श करके यह मंत्र पढे ॥ ९ ॥ हे वृक्ष ! तुम अमुक देवताकी पूजाके लिये कल्पित हुए तुमको नमस्कार है, इस पूजाको विधिविधानसे ग्रहण करो. इस वृक्षपर जो प्राणी वास करते हैं, वे विधि-युक्त पूजाको ग्रहण करके और कहीं वास कल्पित करें आज वह क्षमा करें तिनको नमस्कार करता हूं. 'अमुकस्य' के स्थानमें षष्ठ्यंत देवताका नाम लगावे ॥ १० ॥ ११ ॥ प्रभातके समय वृक्षको जलसे सींच कुठारको शहत और घीसे चुपडे और फिर उस कुठारसे ईशानकोणमें पहले वृक्षको काटे पीछे प्रदक्षिण क्रमसे शेष वृक्षको काट ले ॥ १२ ॥ कटा हुआ वृक्ष जो पूर्व ईशानकोण अथवा उत्तरदिशामें गिरे तो वृद्धि करनेवाला होता है; आग्नेयकोण आदि पांच दिशाओंमें गिरे तो क्रमसे अग्निदाह, रोग और घोडोंका नाश यह फल होते हैं ॥ १३ ॥ इस वनप्रवेशाध्यायमें जो हमने नहीं कहा अर्थात् वृक्षके निपात, विच्छेदन, वृक्षगर्भ आदिके शुभ अशुभ फल नहीं कहे, वह सब पहले इन्द्रध्वजाध्याय और वास्तुविद्याध्यायमें हम कह आये हैं, उसी भांति यहाभी उनको समझना चाहिये अर्थात् वैसाही शुभ अशुभ फल यहांभी जाने ॥ १४ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्सं० पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-
पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायामेकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

मजाः । चैत्यसरित्सङ्गमसम्भवाश्च घटतोयसिक्ताश्च ॥ २ ॥ कुब्जानुजातवल्ली-
निपीडिता वज्रमारुतोपहताः । स्वपतितहस्तिनिपीडितशुष्काग्निप्लुष्टमधुनिलयाः
॥ ३ ॥ तरवो वर्जयितव्याः शुभदाः स्युः स्निग्धपत्रकुसुमफलाः । अभिमतवृक्षं
गत्वा कुर्यात् पूजां सबलिपुष्पाम् ॥ ४ ॥ सुरदारुचन्दनशमीमधूकतरवः शुभा
द्विजातीनाम् । क्षत्रस्याऽरिष्टाश्वत्थखदिरबिल्वा विवृद्धिकराः ॥ ५ ॥ वैश्यानां
जीवकखदिरसिन्धुकस्यन्दनाश्च शुभफलदाः । तिन्दुककेसरसर्जार्जुनाम्रशा-
लाश्च शूद्राणाम् ॥ ६ ॥ लिङ्गं वा प्रतिमा वा द्रुमवत् स्थाप्या यथादिशं
यस्मात् । तस्माच्चिह्नयितव्या दिशो द्रुमस्योर्ध्वमथवाऽधः ॥ ७ ॥ परमान्नमो-
दकौदनदधिपललोल्लोपिकाभिर्भक्ष्यैः । मद्यैः कुसुमैर्धूपैर्गन्धैश्च तरुं समभ्यर्च्य
॥ ८ ॥ सुरपितृपिशाचराक्षसभुजगासुरगणविनायकाद्यानाम् । कृत्वा रात्रौ

बाग, तपस्वियोंके आश्रम, चैत्य और नदियोंके सङ्गमस्थानोंमें उत्पन्न हुए वृक्ष, घडोंके जलसे सिंचे हुए वृक्ष, कुबडे वृक्ष, एक वृक्षके सहारेसे उपजे हुए वृक्ष, बेलोंसे पीडित वृक्ष, बिजलीके मारे वृक्ष, पवन करके तोडे हुए वृक्ष, हाथियोंके तोडे हुए, सूखे, अग्निसे जले हुए वृक्ष और मधुनिलय अर्थात् जिनमें शहदका छत्ता लगा हो ॥ २ ॥ ३ ॥ ऐसे वृक्ष त्यागने चाहिये; इनके काठसे प्रतिमा बनानेमें अशुभ होता है; जिन वृक्षोंके पत्ते, फूल, फल स्निग्ध हों वे वृक्ष शुभ होते हैं. वनमें इस भांति शुभ वृक्ष देखकर उसके समीप जाय बलि और पुष्पोंसे उस वृक्षकी पूजा करे ॥ ४ ॥ देवदारु, चन्दन, शमी और महुआ यह वृक्ष ब्राह्मणोंके लिये शुभ हैं अर्थात् ब्राह्मण इनके काठकी देवप्रतिमा बनावे. रीठा, पीपल, खैर और बेल यह क्षत्रियोंको वृद्धि करनेवाले वृक्ष हैं ॥ ५ ॥ जीवक, खैर, सिंधुक और स्पन्दन यह वृक्ष वैश्योंको शुभ फल देते हैं. तेंदू, नागकेसर, सर्ज, अर्जुन और साल यह शूद्रोंके लिये शुभदायक हैं ॥ ६ ॥ लिंग अथवा प्रतिमा वृक्षकी दिशाओंके अनुसार स्थापित करे; इसी भांति वृक्षके ऊपरके भागमें प्रतिमाके पद बनाने चाहिये, इस कारण काटनेसे पहले वृक्षमें चारों दिशाओंके ऊर्ध्वभाग अथवा अधोभागके चिह्न कर देने उचित हैं ॥ ७ ॥ खीर, लड्डू, भात, दही, तिल, उल्लोपिका (एक प्रकारका भोजनपदार्थ) आदि भक्ष्य, मद्य, पुष्प, धूप और गन्धसे वृक्षकी पूजा करे ॥ ८ ॥ देवता, पितर, पिशाच, राक्षस, नाग, असुरगण और

भद्रासनकृतशीर्षोपधानपादां न्यसेत्प्रतिमाम् ॥ ७ ॥ प्लक्षाश्वत्थोदुम्बरशिरीष-वटसम्भवैः कषायजलैः । मङ्गल्यसंज्ञिताभिः सर्वौषधिभिः कुशाद्याभिः ॥ ८ ॥ द्विपवृषभोद्धृतपर्वतवल्मीकसरित्समागमतटेषु । पद्मसरःसु च मृद्भिः सपञ्चगव्यैश्च तीर्थजलैः ॥ ९ ॥ पूर्वशिरस्कां स्नातां सुवर्णरत्नाम्बुभिश्च ससुगन्धैः । नानातूर्यनिनादैः पुण्याहैर्वेदनिर्घोषैः ॥ १० ॥ ऐन्द्र्यां दिशीन्द्रलिङ्गा मन्त्राः प्राग्दक्षिणेऽग्निलिङ्गाश्च । जप्तव्या द्विजमुख्यैः पूज्यास्ते दक्षिणाभिश्च ॥ ११ ॥ यो देवः संस्थाप्यस्तन्मन्त्रैश्चानलं द्विजो जुहुयात् । अग्निनिमित्तानि मया प्रोक्तानीन्द्रध्वजोच्छ्राये ॥ १२ ॥ धूमाकुलोऽपसव्यो मुहुर्मुहुर्विस्फुलिङ्गकृन्न शुभः । होतुः स्मृतिलोपो वा प्रसर्पणं चाशुभं प्रोक्तम् ॥ १३ ॥ स्नातामभुक्त-वस्त्रां स्वलंकृतां पूजितां कुसुमगन्धैः । प्रतिमां स्वास्तीर्णायां शय्यायां स्थापकः कुर्यात् ॥ १४ ॥ सुप्तां सुनृत्यगीतैर्जागरणैः सम्यगेवमधिवास्य । दैवज्ञसम्प्रदिष्टे

सिंहासन) के ऊपर रक्खे और प्रतिमाके पांव उपधान तकियाके ऊपर रक्खे ॥ ७ ॥ पाकर, पीपल, गूलर, सिरस और बड इन वृक्षोंके पत्तोंका कषायजल कुशाको आदि लेकर मंगल नामवाली जया, पुनर्नवा, विष्णुक्रांता आदि औषधि ॥ ८ ॥ हाथी और वृषकी उद्धारी मृत्तिका, कमलयुक्त सरोवरोंकी मृत्तिका, पंचगव्य सहित तीर्थोंके जल ॥ ९ ॥ सुवर्ण और रत्नयुक्त जल इन सबसे प्रतिमाको स्नान करावे, उसका शिर पूर्वकी ओर करके स्थापन करे. उस समय भांति २ के तुरही आदि बाजे बजें. पुण्याहवाचन और वेदध्वनि ब्राह्मण करें ॥ १० ॥ उत्तम ब्राह्मण पूर्वदिशामें इन्द्रके मंत्र और अग्निकोणमें अग्निके मंत्र जपें, यजमान उन ब्राह्मणोंकी दक्षिणासे पूजा करे ॥ ११ ॥ जिस देवताकी प्रतिष्ठा करनी हो उसके मंत्रोंसे ब्राह्मण अग्निमें हवन करे, अग्निके शुभ अशुभ लक्षण हमने इन्द्रध्वजाध्यायमें कहे हैं ॥ १२ ॥ जो हवनके समय अग्नि धूमसे आकुल हो, उसकी ज्वाला बांई ओर घूमती हो, बारंबार शब्द करे और उसमें चिनगारी उडें तो वह शुभ नहीं होता, हवन करनेवालेकी स्मृतिलोप हो जाय (मंत्र आदिका स्मरण न रहे) अथवा उसका प्रसर्पण हो अर्थात् जहां हवन करने पहले बैठा है वहांसे सरक जाय तौभी अशुभ है ॥ १३ ॥ प्रतिमाको स्नान कराय नये वस्त्र धारण कराय, भूषण आदिसे अलंकृत कर, पुष्प और गंधसे उसको पूजन कर उत्तम भांतिसे बिछी हुई शय्याके ऊपर उस प्रतिमाको प्रतिष्ठा करनेवाला पुरुष स्थापन करे ॥ १४ ॥ सोई हुई उस प्रतिमाका नृत्यगीतसहित जागरणों करके इस प्रकार भलीभांति

अथ षष्टितमोऽध्यायः

प्रतिमाप्रतिष्ठापन.

दिशि सौम्यायां कुर्यादधिवासनमण्डपं बुधः प्राग्वा । तोरणचतुष्टयाढ्यं शस्तद्रुमपल्लवच्छन्नम् ॥ १ ॥ पूर्वे भागे चित्राः स्रजः पताकाश्च मण्डपस्योक्ताः । आग्नेय्यां दिशि रक्ताः कृष्णाः स्युर्याम्यनैर्ऋतयोः ॥ २ ॥ श्वेता दिश्यपरस्यां वायव्यायां तु पाण्डुरा एव । चित्राश्चोत्तरपार्श्वे पीताः पूर्वोत्तरे कार्याः ॥ ३ ॥ आयुःश्रीबलजयदा दारुमयी मृण्मयी तथा प्रतिमा । लोकहिताय मणिमयी सौवर्णी पुष्टिदा भवति ॥ ४ ॥ रजतमयी कीर्तिकरी प्रजाविवृद्धिं करोति ताम्रमयी । भूलाभं तु महान्तं शैली प्रतिमाऽथवा लिङ्गम् ॥ ५ ॥ शंकूपहता प्रतिमा प्रधानपुरुषं कुलं च घातयति । श्वभ्रोपहता रोगान् उपद्रवांश्चाक्षयान् कुरुते ॥ ६ ॥ मण्डपमध्ये स्थण्डिलमुपलिप्यास्तीर्य सिकतयाऽथ कुशैः ।

प्रतिष्ठा करनेवाला विद्वान् पूर्वदिशामें अधिवासन नामक प्रतिमाका संस्कार करनेको मंडप बनावे, वह चारों दिशाओंमें चार तोरणोंसे युक्त हो और वृक्षोंके कोमल पत्रोंसे ढका हो ॥ १ ॥ उस मंडपकी पूर्वदिशामें पुष्पमाला और पताका चित्रवर्णकी लगावे, अग्निकोणमें लाल रंगकी, दक्षिण और नैर्ऋतकोणमें कृष्णवर्ण ॥ २ ॥ पश्चिममें श्वेत, वायव्यकोणमें पांडुर, उत्तरमें चित्रवर्ण और मंडपके ईशानकोणमें शोभाके लिये पीले रंगकी पुष्पमाला और पताका लगानी उचित है ॥ ३ ॥ काठकी और मिट्टीकी देवप्रतिमा, आयुष, लक्ष्मी, बल और जय देती है. मणिकी बनाई देवप्रतिमा लोगोंका हित करती है, सुवर्णकी प्रतिमा शरीरपुष्टि देती है ॥ ४ ॥ चांदीकी कीर्ति करती है, तांबेकी संतानकी वृद्धि करती है. शिला अर्थात् पाषाणकी बनी प्रतिमा अथवा शिवलिंग बहुत भूमिका लाभ करते हैं ॥ ५ ॥ वह प्रतिमा जिसके किसी अंगमें कील जैसा खडा रह जाय वह प्रतिमा मुख्य पुरुषका और वंशका नाश करती है और जिस प्रतिमामें गढा हो वह अपार रोग और अनेक प्रकारके उपद्रव करती है ॥ ६ ॥ अधिवासन मंडपके बीचमें स्थंडिल बनाय उसको गोवर आदिसे लीपे, उसके ऊपर वालु रेत और वालु रेतके ऊपर कुश बिछाय प्रतिमाको उसके ऊपर सुला दे प्रतिमाका शिर भद्रासन (दक्षि-

शस्तम् ॥ २१ ॥ सामान्यमिदं समासतो लोकानां हितदं मया कृतम्। अधि-
वासनसंनिवेशने सावित्रे पृथगेव विस्तरात् ॥ २२ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्सं० प्रतिष्ठापनं नाम षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

अथैकषष्टितमोऽध्यायः।

गोलक्षण.

पराशरः प्राह बृहद्रथाय गोलक्षणं यत्क्रियते ततोऽयम्। मया समासः
शुभलक्षणास्ताः सर्वास्तथाप्यागमतोऽभिधास्ये ॥ १ ॥ सास्राविलरूक्षाक्ष्यो
मूषकनयनाश्च न शुभदा गावः। प्रचलचिपिटविषाणाः करटाः खरसदृशवर्णाः
॥ २ ॥ दशसप्तचतुर्दन्त्यः प्रलम्बमुण्डानना विनतपृष्ठाः। ह्रस्वस्थूलग्रीवा यव-
मध्या दारितखुराश्च ॥ ३ ॥ श्यावातिदीर्घजिह्वा गुल्फैरतितनुभिरतिबृहद्भिर्वा।

स्वाति नक्षत्र हो, मंगलके सिवाय और वार हो, प्रतिष्ठा करनेवालेका अनुकूल दिन
हो तो ऐसे समयमें देवताका स्थापन शुभ है ॥ २१ ॥ सर्व देव साधारण प्रतिमा
प्रतिष्ठाविधान लोगोंको कल्याण देनेवाला जो हमने संक्षेपसे कहा है, सूर्यप्रतिमाका
अधिवासन और प्रतिष्ठापनविधान विस्तारपूर्वक अलगही है अथवा सावित्र
(सौरशास्त्र) में सब देवताओंका अधिवासन और प्रतिष्ठापन अलग २
विस्तारसे कहा है ॥ २२ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरा-
दाबादवास्तव्यपंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां
षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

पराशरमुनिने अपने शिष्य बृहद्रथको जो गोलक्षण कहा है, उस ग्रंथसे लेकर
हम संक्षेप कहते हैं. सबही गौ शुभलक्षण होती हैं तथापि शास्त्रसे उनके शुभ
अशुभ लक्षण कहते हैं ॥ १ ॥ जिन गौओंकी आंखें आंसुओंसे भरी हों, मट्टी
हों और रूखी हों वह गौ शुभ नहीं होती, मूषकके समान नेत्रवाली भी शुभ नहीं,
जिनके सींग हिलते हों और चपटे हों वह गौ शुभ नहीं. काला और लाल मिला
हुआ जिनका रंग हो और गधेके तुल्य जिनका रंग हो, वह गौभी शुभ नहीं होती
है ॥ २ ॥ जिनके मुखमें दस, सात वा चार दांत हों, जिनका मुख लम्बा और
मुंड अर्थात् बिना सींगका हो, जिनकी पीठ झुकी हुई हो, जिनकी गरदन छोटी

काले संस्थापनं कुर्यात् ॥ १५ ॥ अभ्यर्च्य कुसुमवस्त्रानुलेपनैः शंखतू
र्यघोषैः । प्रादक्षिण्येन नयेदायतनस्य प्रयत्नेन ॥ १६ ॥ कृत्वा बलिं
सम्पूज्य ब्राह्मणांश्च सभ्यांश्च । दत्त्वा हिरण्यशकलं विनिक्षिपेत्पिण्डि
श्वभ्रे ॥ १७ ॥ स्थापकदैवज्ञद्विजसभ्यस्थपतीन् विशेषतोऽभ्यर्च्य । कल्या
भागी भवतीह परत्र च स्वर्गी ॥ १८ ॥ विष्णोर्भागवतान् मगांश्च स
शम्भोः सभस्मद्विजान् मातॄणामपि मण्डलक्रमविदो विप्रान्विदुर्ब्रह्म
शाक्यान् सर्वहितस्य शान्तमनसो नग्नान् जिनानां विदुर्ये यं देवमुपाश्रि
स्वविधिना तैस्तस्य कार्या क्रिया ॥ १९ ॥ उदगयने सितपक्षे शिशिरगभ
च जीववर्गस्थे । लग्ने स्थिरे स्थिरांशे सौम्यैर्धीधर्मकेन्द्रगतैः ॥ २० ॥ पापै
चयसंस्थैर्ध्रुवमृदुहरितिष्यवायुदेवेषु । विकुजे दिनेऽनुकूले देवानां स्था

अधिवासन कर ज्योतिषीके बतलाये हुए शुभ मुहूर्तमें उसका स्थापन करे ॥ १
उस प्रतिमाको पुष्प, वस्त्र और चन्दनादि अनुलेपनोंसे पूजित कर अधिवा
मंडपसे उठाय प्रासादसे प्रदक्षिण हो यत्नपूर्वक गर्भगृहमें ले जावे उस समय
तूर्य आदि बाजे बजाये जावें ॥ १६ ॥ वहां जाय बहुतसा बलि देकर ब्रा
और सभ्य अर्थात् उस सभामें स्थित मनुष्योंका वस्त्र दक्षिणा आदिसे पूजन
पिंडिका (पीठ) के गढेमें सोनेका टुकडा डाल उसके ऊपर प्रतिमाको स्थापन करे ॥ १
स्थापक (प्रतिष्ठा करनेवाला), ज्योतिषी, ब्राह्मण, सभ्य (कारीगर) इन सब
विशेष पूजन करे. इस भांति देवप्रतिष्ठा करनेवाला पुरुष इस लोकमें कल्याणों
भागी होता है और परलोकमें स्वर्गवास पाता है ॥ १८ ॥ विष्णुकी प्रतिष्ठा भाग
(वैष्णव) करें. सूर्यकी प्रतिष्ठा मग (शाकद्वीपके रहनेवाले ब्राह्मण) करें. शिव
प्रतिष्ठा भस्म धारण करनेवाले ब्राह्मण करें. ब्राह्मी आदि मातृकाओंकी प्रतिष्ठा मं
क्रम अर्थात् उनके पूजनका विधान जाननेवाले ब्राह्मण करें. ब्रह्माकी प्रतिष्ठा वे
ब्राह्मण करें. सर्वहितकी अर्थात् बुद्धकी प्रतिष्ठा शान्त चित्तवाले शाक्य (बौद्ध)
करें. जिनकी प्रतिष्ठा नग्न (दिगम्बरक्षपणक) करें. जो मनुष्य जिस देव
उसके भक्त होवें उस देवताकी प्रतिष्ठा आदि सब क्रिया स्वकर्तव्य विधानसे
॥ १९ ॥ उत्तरायण हो, शुक्लपक्ष हो, चन्द्रमा बृहस्पतिके षड्वर्गमें स्थित हो, स्थि
लग्न और स्थिर नवांश हो, सौम्य ग्रह, पंचम, नवम, लग्न, चतुर्थ, सप्तम
दशम स्थानमें हों ॥ २० ॥ पापग्रह तृतीय, षष्ठ, दशम और एकादश स्थान
हों; ध्रुव उत्तरा, रोहिणी, मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा, श्रवण, पुष्य

तनुह्रस्वोच्चश्रवणाः सुकुक्षयः स्पष्टजंघाश्च ॥ १० ॥ आताम्रसंहतखुरा व्यूढोरस्का बृहत्ककुद्युक्ताः । स्निग्धश्लक्ष्णतनुत्वग्रोमाणस्ताम्रतनुशृङ्गाः ॥ ११ ॥ तनुभूस्पृग्वालधयो रक्तान्तविलोचना महोच्छ्वासाः । सिंहस्कन्धास्तन्वल्पकम्बलाः पूजिताः सुगताः ॥ १२ ॥ वामावर्तैर्वामे दक्षिणपार्श्वे च दक्षिणावर्तैः । शुभदा भवन्त्यनडुहो जंघाभिश्चैणकनिभाभिः ॥ १३ ॥ वैदूर्यमल्लिकाबुद्बुदेक्षणाः स्थूलनेत्रवर्माणः । पार्ष्णिभिरस्फुटिताभिः शस्ताः सर्वेऽपि भारवहाः ॥ १४ ॥ घ्राणोद्देशे सवलिर्मार्जारमुखः सितश्च दक्षिणतः । कमलोत्पललाक्षाभः सुवालधिर्वाजितुल्यजवः ॥ १५ ॥ लम्बैर्वृषणैर्मेषोदरश्च संक्षिप्तवंक्षणाक्रोडः । ज्ञेयो भाराध्वसहो जवेऽश्वतुल्यश्च शस्तफलः ॥ १६ ॥ सितवर्णः पिङ्गाक्षस्ताम्र-

---

छोटे पतले और ऊंचे जिनके कान हों, सुन्दर पेट हो, सीधी जंघा हो ॥ १० ॥ तांबेके वर्ण और मिले हुए खुर हों, छाती दृढ हो, बडा ककुद (थूही) हो, स्निग्ध (चिकने) कोमल और तनु (पतले) जिनके त्वचा और रोम हों, तांबेके रंगके शरीर और सींग हों ॥ ११ ॥ पतली और भूमिको स्पर्श करनेवाली जिनकी पूंछ हो, जिनके नेत्रोंके अंत लाल हों, बडा श्वास लेनेवाले हों, सिंहकेसे जिनके कंधे हों, पतला और छोटा जिनका गलकंबल, सुन्दर जिनकी गति हो ऐसे वृषभ अच्छे होते हैं ॥ १२ ॥ जिनके वामभागमें बांई ओर घूमे हुए आवर्त (भौंरी) और दक्षिणभागमें दहिनी ओर घूमे हुए आवर्त और जिनकी जंघा मेढेकी जंघाओंके समान हों ऐसे बैल शुभ होते हैं ॥ १३ ॥ वैदूर्यमणिकी समान जिनके नेत्र हों, निवारीपुष्पके समान जिनके नेत्र हों अर्थात् नेत्रोंके बाहिर चारों ओर शुक्ल रेखा हो, जल बुद्बुदके समान जिनके नेत्र हों, जिनके नेत्र और शरीर स्थूल हों, खुरके पिछले भाग जिनके फूटे हुए न हों सो सब बैल शुभ होते हैं और भार उठा सकते हैं ॥ १४ ॥ जिस बैलकी नाकमें वलि पडे, बिलावके तुल्य जिसका मुख हो, दहिना भाग जिसका श्वेत हो, कमल (नीलकमल) या लाखके समान जिसकी कांति हो, अच्छी पूंछ हो, गमनमें घोडेकासा वेग हो ॥ १५ ॥ लम्बे वृषण हों, मेढेकासा पेट हो, वंक्षण (पिछली जंघा और वृषणोंका मध्यभाग) और क्रोड (अगली जंघाओंका मध्यभाग) जिसके संकुचित हों ऐसा बैल भार उठानेमें और मार्ग चलनेमें समर्थ होता है, घोडेकी बराबर जिसका वेग हो वह बैल शुभही होता है ॥ १६ ॥ जिस बैलका श्वेत वर्ण हो, तांबेके रंगके सींग

अतिकृशा कृशदेहा नेष्टा हीनाधिकाङ्ग्यश्च ॥ ४ ॥ वृषतोऽप्येवं स्थूलाति लम्बवृषणः शिराततक्रोडः । स्थूलशिराचितगण्डस्त्रिस्थानं मेहते यश्च ॥ ५ ॥ मार्जाराक्षः कपिलः करटो वा न शुभदो द्विजस्यैव । कृष्णोष्ठतालुजिह्वः श्वसनो यूथस्य घातकरः ॥ ६ ॥ स्थूलशकृन्मणिशृङ्गः सितोदरः कृष्णसारवर्णश्च गृहजातोऽपि त्याज्यो यूथविनाशावहो वृषभः ॥ ७ ॥ श्यामकपुष्पचिताङ्गो भस्मारुणसन्निभो बिडालाक्षः । विप्राणामपि न शुभं करोति वृषभः परिगृहीत ॥ ८ ॥ ये चोद्धरन्ति पादान् पङ्कादिव योजिताः कृशग्रीवाः। कातरनयना हीनाश्च पृष्ठतस्ते न भारसहाः ॥ ९ ॥ मृदुसंहतताम्रोष्ठास्तनुस्फिजस्ताम्रतालुजिह्वाश्च।

और मोटी हो, जिनका मध्यभाग जौके तुल्य हो अर्थात् बीचसे बहुत मोटा हो, जिनके खुर बहुत फट रहे हों, जिनकी नाभि श्यामरंगकी और बहुत लम्बी हो, जिनके ढॅकने बहुत छोटे अथवा बहुत बडे हों, जिनका थूही बहुत ऊंचा हो, जिनका देह सदा दुबला रहे और जिनका कोई अंग हीन अथवा अधिक हो ऐसी गौ शुभ नहीं होती है ॥ ३ ॥ ४ ॥ पहले कहे हुए लक्षणोंसे युक्त वृष हो तो वहभी शुभ नहीं होता और स्थूल व बहुत लम्बे हैं अंडकोश जिसके, शिराओं करके व्याप्त है क्रोड जिसका, स्थूल शिराओं करके व्याप्त हैं कपोल जिसके तीन स्थानोंसे जो मेहन करे अर्थात् जिसके दोनों नेत्रोंसे आंसू टपकें और शिश्नसे मूत्र गिरे ॥ ५ ॥ विडालकेसे जिसके नेत्र हों, जिसका कपिल अथवा करट नाम रक्त रंग हो ऐसा वृष ब्राह्मणकोभी शुभ नहीं होता फिर और वर्णोंकी तो बातही क्या है; जिसके ओष्ठ, तालु और जिह्वा काले रंगके हों और जो वृष श्वसन अर्थात् डरनेवाला हो वह अपने यूथका नाश करता है ॥ ६ ॥ जिसका गोबर, मणि (लिंगका अग्रभाग) और शृंग स्थूल हों, श्वेतवर्णका पेट हो और शरीरका रंग कृष्ण और श्वेत मिलकर हो ऐसा वृष घरमें उत्पन्न हुआ हो तौभी उसका त्यागही करना चाहिये, बल्कि वहभी यूथका नाश करनेवाला होता है ॥७॥ जिसके शरीरमें काले फूल पड रहे हों और बिल्लीके समान जिसके नेत्र हों ऐसा वृष ग्रहण किया हुआ ब्राह्मणोंकोभी शुभ नहीं होगा ॥ ८ ॥ भारके नीचे जोता हुआ बैल ऐसे पैर उठावे जैसे कर्दममें गडे हुए पैरोंको बडे यत्नसे उखाडते हैं, जिनकी ग्रीवा दुर्बल हो, नेत्र काचरे हों, पीठ छोटी या दबी हुई हो वह बैल भार उठानेमें समर्थ नहीं होते हैं ॥ ९ ॥ कोमल मिले हुए और तांबेके रंगके जिनके ओष्ठ हों, छोटी स्फिक् (कटिस्थमांसपिंड) हों; तांबेके रंगके तालु और जीभ हो,

अथ पंचषष्टितमोऽध्यायः ।

छागलक्षण.

छागशुभाशुभलक्षणमभिधास्ये नवदशाष्टदन्तास्ते । धन्याः स्थाप्या वेश्मनि
सन्त्याज्याः सप्तदन्ता ये ॥ १ ॥ दक्षिणपार्श्वे मण्डलमसितं शुक्लस्य शुभफलं
भवति । ऋष्यनिभकृष्णलोहितवर्णानां श्वेतमपि शुभदम् ॥२॥ स्तनवदवलम्बते
यः कण्ठेऽजानां मणिः स विज्ञेयः । एकमणिः शुभफलकृद्धन्यतमा द्वित्रिमणयो
ये ॥ ३ ॥ मुण्डाः सर्वे शुभदाः सर्वसिताः सर्वकृष्णदेहाश्च । अर्धासिताः सिता-
धा धन्याः कपिलार्धकृष्णाश्च ॥ ४ ॥ विचरति यूथस्याग्रे प्रथमं चाम्भोऽव-
गाहते योऽजः । स शुभः सितमूर्धा वा मूर्धनि वा कृत्तिका यस्य ॥ ५ ॥ सपृ-
षतकण्ठशिरा वा तिलपिष्टनिभश्च ताम्रदृक् शस्तः । कृष्णचरणः सितो वा

अब बकरोंका शुभ अशुभ लक्षण कहते हैं, जिनके नौ वा दश वा आठ दांत
वह छाग शुभ होते हैं और घरमें रखने चाहिये. जिनके सात दांत हों उनको न
रखे कारण कि वे अशुभ होते हैं ॥ १ ॥ श्वेत रंगके छागके दहिने पार्श्वमें काले
रंगका मंडल हो तो शुभ होता है. जिस छागका रंग ऋष्यमृगके तुल्य नीला, काला
अथवा लाल हो तो उसके दक्षिण पार्श्वमें श्वेतमण्डलभी शुभ होता है ॥ २ ॥
बकरोंके गलेमें जो स्तनकी भांति लटकता है उसे मणि कहते हैं. जिस छागके एक
मणि हो वह शुभ फल करता है और जिसके दो अथवा तीन मणि हों वे छाग तो
बडे ही शुभ होते हैं ॥ ३ ॥ बिना सींगके सब छाग शुभ होते हैं; जिनका सब शरीर
श्वेत हो अथवा सब शरीर कृष्ण हो वे छाग शुभ होते हैं, जो छाग आधे काले और
आधे श्वेत हों वे शुभ होते हैं. जो छाग आधे कपिल और आधे कृष्ण हों वेभी
शुभ होते हैं ॥ ४ ॥ जो छाग अपने यूथके आगे चले और सबसे पहले जलमें घुसे
वह शुभ होता है या जिसका शिर श्वेत हो अथवा जिसके शिरमें कृत्तिका नक्षत्रकी
भांति छः बिन्दु हों अर्थात् छः बिन्दु हों वह शुभ होता है ऐसे छागका नाम कुकुट
है ॥ ५ ॥ जिसके कंठ और शिरमें दूसरे रंगके बिन्दु हों, तिलपिष्टके समान अर्थात्
श्वेत और पीत मिला हुआ जिसका रंग और तांबेके रंगके तुल्य जिसके लाल नेत्र
हों वह शुभ होता है. जिसके शरीरका रंग श्वेत हो और चारों पैर काले हों अथवा

अथ चतुःषष्टितमोऽध्यायः ।

कूर्मलक्षण.

स्फटिकरजतवर्णो नीलराजीविचित्रः कलशसदृशमूर्तिश्चारुवंशश्च कूर्मः । अरुणसमवपुर्वा सर्षपाकारचित्रः सकलनृपमहत्त्वं मन्दिरस्थः करोति ॥ १ ॥ अञ्जनभृङ्गश्यामतनुर्वा बिन्दुविचित्रोऽव्यङ्गशरीरः । सर्पशिरा वा स्थूलगलो यः सोऽपि नृपाणां राष्ट्रविवृद्ध्यै ॥ २ ॥ वैडूर्यत्विट् स्थूलकण्ठस्त्रिकोणो गूढच्छिद्रश्चारुवंशश्च शस्तः । क्रीडावाप्यां तोयपूर्णे मणौ वा कार्यः कूर्मो मङ्गलार्थं नरेन्द्रैः ॥ ३ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां कूर्मलक्षणं नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

सुन्दर हो ऐसी कुकुटी राजाओंको चिरकालतक लक्ष्मी, यश, विजय, बल सम्पत्ति देती है ॥ ३ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य—पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

जो कछुआ स्फटिक अथवा चांदीके तुल्य शुक्ल वर्ण हो और नीली रेखाओंसे चित्रित हो, कलशके समान जिसका आकार हो, सुन्दर जिसका वंश (पीठकी हड्डी) हो अथवा लाल रंगका कछुआ हो और सरसोंके बिन्दुओंसे चित्रित हो ऐसा कूर्म घरमें स्थित हो तो सब राजाओंमें बडाई करता है ॥ १ ॥ अञ्जन या भ्रमरके तुल्य जिस कूर्मका श्याम शरीर हो और बिन्दुओंसे विचित्र हो, सम्पूर्ण अंग पूर्ण हों, सर्पके समान जिसका शिर हो और गला मोटा हो ऐसा कूर्म राजाओंका राज्य बढानेके लिये होता है ॥ २ ॥ वैडूर्यमणिके समान जिस कछुएकी कान्ति हो, कंठ स्थूल हो, त्रिकोण आकार हो, सब छिद्र ढके हुए हों और पृष्ठवंश सुन्दर हो ऐसे कूर्मको मंगलके लिये राजा बावली क्रीडाके अथवा जलसे भरे घडे मटकेमें रक्खे ॥ ३ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य—पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

तनयो लिङ्गे शिरासन्तते स्थूलग्रन्थियुते सुखी मृदु करोत्यन्तं प्रमेहादिभिः ॥ ७ ॥ कोपनिगूढैर्भूपा दीर्घैर्भग्नैश्च वित्तपरिहीनाः। ऋजुवृत्तशेफसो लघुशिरालशिश्नाश्च धनवन्तः ॥ ८ ॥ जलमृत्युरेकवृषणो विषमैः स्त्रीलंपटः समैः क्षितिपः। ह्रस्वायुश्चोद्बद्धैः प्रलम्बवृषणस्य शतमायुः ॥ ९ ॥ रक्तैराढ्या मणिभिर्निर्द्रव्याः पाण्डुरैश्च मलिनैश्च। सुखिनः सशब्दमूत्रा निःस्वा निःशब्दधाराश्च ॥ १० ॥ द्वित्रिचतुर्धाराभिः प्रदक्षिणावर्तवलितमूत्राभिः। पृथ्वीपतयो ज्ञेया विकीर्णमूत्राश्च धनहीनाः ॥ ११ ॥ एकैव मूत्रधारा वलिता रूपप्रधानसुतदात्री। स्निग्धोन्नतसममणयो धनवनितारत्नभोक्तारः ॥ १२ ॥ मणिभिश्च मध्यनिम्नैः कन्यापितरो भवन्ति निःस्वाश्च। बहुपशुभाजो मध्योन्नतैश्च नात्यु-

---

तो पुत्रवान् होता है, जिसका लिंग नीचेको बहुत झुका हो वह दरिद्री होता है. नाडियोंसे व्याप्त लिंग हो तो वह पुरुष अल्पपुत्रवाला होता है अर्थात् उसके थोडे पुत्र होते हैं. स्थूल ग्रंथिसे युक्त जिसका लिंग हो वह सुखी होता है, मृदु लिंगवाला पुरुष प्रमेह आदि रोगोंसे मरता है ॥ ७ ॥ कोश (चर्मकी थैलीसी) में जिनका लिंग निगूढ हो वे राजा होते हैं; दीर्घ और टूटे हुए लिंगवाले धनहीन होते हैं, सीधे और गोल व छोटे या नाडियोंसे व्याप्त लिंगवाले पुरुष धनवान् होते हैं ॥ ८ ॥ एकही वृषणवाला पुरुष जलमें डूबकर मरता है, विषम (छोटे बडे) वृषण हों तो स्त्रीलंपट होता है, वृषण समान हों तो राजा होता है, ऊपरको खींचे हुए वृषणवाला हो तो अल्पायुष होता है और जिस पुरुषके वृषण लम्बे हों उसका आयुष सौ वर्ष होता है ॥ ९ ॥ लिंगके अग्रभागको मणि कहते हैं. लाल रंगकी मणिवाले पुरुष धनवान् होते हैं श्वेत और मलिन मणि हो तो धनहीन होते हैं, मूत्र करनेके समय शब्द हो वे पुरुष सुखी होते हैं. शब्दरहित जिनकी मूत्रधारा हो वे निर्धन होते हैं ॥ १० ॥ जिनके मूत्रकी धारा दो तीन अथवा चार हों और दक्षिणावर्त करके वे धारा मूत्रको गेरें तो वे पुरुष राजा होते हैं. मूत्र करनेके समय जिसका मूत्र बिखरता हो वे धनहीन होते हैं ॥ ११ ॥ एक धार मूत्रकी हो और वह वलित (वेष्टित) हो तो रूपवान् पुत्र देती है, जिन पुरुषोंके मणि स्निग्ध, ऊंचे और समान हों वे पुरुष धन, स्त्री और रत्नोंको भोग करनेवाले होते हैं ॥ १२ ॥ जिनके मणि मध्यभागमें निम्न हो वे कन्याओंके पिता होते हैं अर्थात् उनके घरमें कन्याही जन्मती हैं और वे पुरुष निर्धनभी होते हैं, जिनके मणि मध्यके ऊंचे हों वे बहुत पशुओंके स्वामी होते हैं. बहुत

दुःखप्रदौ । मार्गायोत्कटकौ कषायसदृशौ वंशस्य विच्छित्तिदौ ब्रह्मघ्नौ
पक्वमृद्द्युतितलौ पीतावगम्यारतौ ॥ ३ ॥ प्रविरलतनुरोमवृत्तजङ्घा द्विरदक
तिभैर्वरोरुभिश्च । उपचितसमजानवश्च भूपा धनरहिताः श्वशृगालतुल्यज
॥ ४ ॥ रोमैकैकं कूपके पार्थिवानां द्वे द्वे ज्ञेये पण्डितश्रोत्रियाणाम् । त्र्या
निःस्वा मानवा दुःखभाजः केशाश्चैवं निन्दिता पूजिताश्च ॥ ५ ॥ निर्मांसजा
म्रियते प्रवासे सौभाग्यमल्पैर्विकटैर्दरिद्राः । स्त्रीनिर्जिताश्चापि भवन्ति नि
राज्यं समांसैश्च महद्भिरायुः ॥ ६ ॥ लिङ्गेऽल्पे धनवानपत्यरहितः स्थूले विही
धनैर्मेढ्रे वामनते सुतार्थरहितो वक्रेऽन्यथा पुत्रवान् । दारिद्र्यं विनते त्वधो

आगेसे चौडे, श्वेतरंगके नखोंसे युक्त, टेढे, नाडियोंसे व्याप्त, रूखे और
अंगुलियोंवाले चरण हों तो दारिद्र और दुःख देते हैं. मध्यसे ऊंचे मेंडकके आ
चरण हों तो सदा मार्गमें चलाते हैं. कषायरंग (थोडेसे लाल) के चरण हों
वंशका विच्छेद करते अर्थात् जिस पुरुषके कषाय रंगके चरण हों उसका
नहीं चलता. परिपक्व (अग्निमें पकी हुई) मृत्तिकाके तुल्य जिसके पाद
कांति हो वह पुरुष ब्रह्महत्या करता है और पीले रंगके चरणवाला पुरुष अग
स्त्रीमें आसक्त होता है ॥ ३ ॥ विरल और सूक्ष्म रोमोंवाला, गोल हाथीकी सूं
समान सुन्दर ऊरुवाला, मांसयुक्त और समान जानुवाला यह सब लक्षणोंवाला रा
होता है. श्वान और शृगालके तुल्य जिनकी जंघा हो वे धनहीन होते हैं ॥ ४ ॥
जिनकी जंघाओंके रोमकूपोंमें एक २ रोम हो वह राजा होते हैं, जिनके
रोमकूपमें दो दो रोम हों वह पंडित और श्रोत्रिय होते हैं, जिनके एक २
कूपमें तीन २ चार २ आदि रोम होंय वे मनुष्य निर्धन और दुःखी होते
इसमें मस्तकके केशोंसभी शुभ अशुभ फल जाने ॥ ५ ॥ जिनकी जानु
न हो वह पुरुष प्रवासमें मरता है, छोटे जानुवाला सौभागी होता है. विक
वाले दरिद्री होते हैं. जिनके जानु निम्न (नीचे) हों वह पुरुष स्त्रीजित
हैं, मांसयुक्त जानुवालेको राज्य मिलता है और बडे जानु जिन
हों वे दीर्घायु पाते हैं ॥ ६ ॥ छोटे लिंगवाला पुरुष धनवान और
रहित होता है. स्थूल लिंगवाला धनहीन होता है. लिंगका बांई ओर
झुका हो वह पुरुष धन और पुत्रोंसे रहित होता है. टेढी ओर लिंग झुका

ठिनाः स्युर्मानवा विषमकुक्षाः। सर्पोदरा दरिद्रा भवन्ति बह्वाशिनश्चैव
॥ २० ॥ परिमण्डलोन्नताभिर्विस्तीर्णाभिश्च नाभिभिः सुखिनः। स्वल्पा त्वदृ-
श्यनिम्ना नाभिः क्लेशावहा भवति ॥ २१ ॥ वलिमध्यगता विषमा शूलाबाधं
करोति नैःस्व्यं च । शाठ्यं वामावर्ता करोति मेधां प्रदक्षिणतः ॥ २२ ॥
पार्श्वायता चिरायुषमुपरिष्टाच्चेश्वरं गवाढ्यमधः। शतपत्रकर्णिकाभा नाभिर्मनु-
जेश्वरं कुरुते ॥ २३ ॥ शस्त्रान्तं स्त्रीभोगिनमाचार्यं बहुसुतं यथासंख्यम्।
एकद्वित्रिचतुर्भिर्वलिभिर्विद्यान्नृपं त्ववलिम् ॥ २४ ॥ विषमवलयो मनुष्या
भवन्त्यगम्याभिगामिनः पापाः । ऋजुवलयः सुखभाजः परदारद्वेषिणश्चैव
॥ २५ ॥ मांसलमृदुभिः पार्श्वैः प्रदक्षिणावर्तरोमभिर्भूपाः। विपरीतैर्निर्द्रव्याः
सुखपरिहीनाः परप्रेष्याः ॥ २६ ॥ सुभगा भवन्त्यनुद्बद्धचूचुका निर्धना विषम-

---

बहुत लम्बा हो वे पुरुष दरिद्री होते हैं और बहुत भोजन करते हैं ॥ २० ॥
गोल, ऊंची और विस्तीर्ण नाभिवाले सुखी होते हैं, छोटी अदृश्य (न देख पडे)
और अनिम्न अर्थात् गहरी न हो ऐसी नाभि दुःखदायक होती है ॥ २१ ॥
जिसकी नाभि पेटकी वलिके बीच आवे और विषम हो, वह पुरुष शूलीपर चढाया
जाता है और निर्धनभी होता है, वामावर्त जिसकी नाभि हो वह पुरुष शठ होता
है. दक्षिणावर्त नाभि हो तो उसकी उत्तम बुद्धि हो. दोनों ओर लम्बी नाभि
दीर्घायुष करती है, ऊपरको नाभि दीर्घ हो तो ऐश्वर्ययुक्त पुरुषको करती है.
नीचेको लम्बी हो तो बहुत भोगोंसे युक्त करती है. कमलकी कर्णिकाके तुल्य
नाभि हो तो पुरुषको राजा करती है ॥ २२ ॥ २३ ॥ उदरके मध्यमें जो रेखा हों
उनको वलि कहते हैं. जिस पुरुषको एक वलि हो उसकी मृत्यु शस्त्रसे होती है.
दो वलि हों तो वह पुरुष बहुत स्त्रियोंसे भोग करनेवाला होता है. तीन वलि हों तो
आचार्य (उपदेशकर्त्ता) होता है और चार वलि जिस पुरुषके उदरमें हों उसके
बहुत पुत्र होते हैं, जिसका उदर वलिरहित हो वह राजा होता है ॥ २४ ॥ जिनके
उदरमें कोई छोटी कोई बडी वलि हो वह पुरुष अगम्या स्त्रीमें गमन करते हैं.
जिनके उदरमें सीधी वलि हो वे सुखी और परस्त्रीसे विमुख होते हैं ॥ २५ ॥
मांसद्वारा पुष्ट कोमल और दक्षिणावर्त रोमोंसे युक्त जिनके पार्श्व हों वे पुरुष राजा
होते हैं और मांससे हीन कठोर और वामावर्त रोमोंसे युक्त जिनके पार्श्व हों वे
निर्धन सुखसे हीन और दूसरे पुरुषोंके दास होते हैं ॥ २६ ॥ स्तनके अग्रभागको
चूचक कहते हैं. जिनके चूचक ऊपरको खींचे नहीं हों वे पुरुष सुभग होते हैं.

न्वणैर्धनिनः ॥ १३ ॥ परिशुष्कवस्तिशीर्षा धनरहिता दुर्भगाश्च विज्ञेयाः कुसुमसमगंधशुक्रा विज्ञातव्या महीपालाः ॥ १४ ॥ मधुगन्धे बहुवित्ता मत्स्यगन्धे बहून्यपत्यानि । तनुशुक्रः स्त्रीजनको मांससगन्धो महाभोगी ॥ १५ ॥ मदिरागन्धे यज्वा क्षारसगन्धे च रेतसि दरिद्रः । शीघ्रं मैथुनगामी दीर्घायुरतोऽन्यथाल्पायुः ॥ १६ ॥ निःस्वोऽतिस्थूलस्फिक् समांसलस्फिक् सुखान्वितो भवति । व्याघ्रान्तोऽध्यर्धस्फिग्मण्डूकस्फिन्नराधिपतिः ॥ १७ ॥ सिंहकटिर्मनुजेन्द्रः कपिकरभकटिर्धनैः परित्यक्तः । समजठरा भोगयुता घटपिठरनिभोदरा निःस्वाः ॥ १८ ॥ अविकलपार्श्वा धनिनो निम्नैर्वक्रैश्च भोगसन्त्यक्ताः । समकुक्ष्या भोगाढ्या निम्नाभिर्भोगपरिहीनाः ॥ १९ ॥ उन्नतकुक्षाः क्षितिप

स्थूल जिनके मणि न हों वे धनी होते हैं ॥ १३ ॥ लिंग और नाभिके अन्तरको वस्ति कहते हैं. जिनके वस्तिका उपरिभाग मांसरहित हो वे पुरुष धनहीन और सब मनुष्योंके अप्रिय होते हैं. पुष्पके समान सुगन्धित वीर्यवाले राजा होते हैं ॥ १४ ॥ शहतके समान गंध वीर्यमें हो तो बहुत धनवान् हो, मत्स्यांके समान गंध वीर्यमें हो तो बहुत संतान हो, थोडा वीर्य हो तो कन्याओंका पिता हो, मांसके समान गंध वीर्यमें हो तो महाभोगी हो ॥ १५ ॥ मद्यके समान गंध वीर्यमें आती हो तो पुरुष यज्ञ करनेवाला हो, खारके तुल्य गंध वीर्यमें आती हो तो पुरुष दरिद्री हो. शीघ्रही जो पुरुष मैथुन करे वह दीर्घायु होता है और जो पुरुष बहुत काळ पर्यंत मैथुन करे वह अल्पायुष होता है ॥ १६ ॥ जिस पुरुषके स्फिच् (कटिस्थ मांसपिण्ड) अति मोटे हों वह निर्धन होता है, सुन्दर मांसयुक्त स्फिच्वाला सुखी होता है. जिस पुरुषके ... हों उसको ... मारता है, मेंडकके समान जिसके स्फिच् हों वह पुरुष राजा होता है ॥ १७ ॥ सिं... राजा होता है. वानर अथवा उष्ट्रके समान कटिवाला ... न ऊंचा और न नीचा) उदरवाला पुरुष भोगी होता है ... पेट हो तो वे पुरुष निर्धन होते हैं ॥ १८ ॥ ... करते हैं, और उनके ... धन ... है. निम्न और टेढे पार्श्व हों तो भोगहीन ... पुरुष भोगी होते हैं. निम्न ... हो वो ... हों तो राजा होते हैं, विषम (...) ... होते हैं, जिन पुरुषोंका उदर सर्पके उदरके ...

सौख्यवीर्यवताम् ॥ ३४ ॥ करिकरसदृशौ वृत्तावाजान्ववलम्बिनौ समौ पीनौ। बाहू पृथिवीशानामधमानां रोमशौ ह्रस्वौ ॥ ३५ ॥ ह्रस्वांगुलयो दीर्घाश्चिरायुषामवलिताश्च सुभगानाम्। मेधाविनां च सूक्ष्माश्चिपिटाः परकर्मनिरतानाम् ॥ ३६ ॥ स्थूलाभिर्धनरहिता बहिर्नताभिश्च शस्त्रनिर्याणाः। कपिसदृशकरा धनिनो व्याघ्रोपमपाणयः पापाः ॥ ३७ ॥ मणिबन्धैर्निगूढैर्दृढैश्च सुश्लिष्टसन्धिभिर्भूपाः। हीनैर्हस्तच्छेदः श्लथैः सशब्दैश्च निर्द्रव्याः ॥ ३८ ॥ पितृवित्तेन विहीना भवन्ति निम्नेन करतलेन नराः। संवृत्तनिम्नैर्धनिनः प्रोत्तानकराश्च दातारः ॥ ३९ ॥ विषमैर्विषमा निःस्वाश्च करतलैरीश्वरास्तु लाक्षाभैः। पीतैरगम्यवनिताभिगामिनो निर्धना रूक्षैः ॥ ४० ॥ तुषसदृशनखाः क्लीबाश्चिपिटैः स्फुटितैश्च वित्तसन्त्यक्ताः। कुनखविवर्णैः परतर्ककाश्च ताम्रैश्च भूपतयः ॥ ४१ ॥

सुखी और बली पुरुषोंके होते हैं ॥ ३४ ॥ हस्तीकी शुंडके समान, वर्तुल, जानुतक लंबे, सम, मोटे ऐसे बाहु पृथ्वीपतियोंके होते हैं और निर्धनोंके रोमोंसे युक्त, ह्रस्व होते हैं ॥ ३५ ॥ दीर्घायुवाले पुरुषोंकी अंगुली लम्बी होती है. सीधी अंगुली सुभग पुरुषोंकी होती है. बुद्धिमानोंकी अंगुली पतली होती है. परसेवा करनेवालोंकी अंगुली चपटी होती है ॥ ३६ ॥ मोटी अंगुली हो तो निर्धन होते हैं, जिनकी अंगुली बाहरको झुकी हो उनकी शस्त्रसे मृत्यु होती है. वंदरके तुल्य हाथवाले धनवान् होते हैं. व्याघ्रके तुल्य हाथवाले पापी होते हैं ॥ ३७ ॥ हस्तके मूलको मणिबंध अर्थात् पहुंचा कहते हैं. जिनके मणिबंध निगूढ दृढ व सुश्लिष्ट संधि हों वह राजा होते हैं, छोटे मणिबंध हों तो उनसे हाथ काटे जाते हैं, ढीले और शब्दसे युक्त जिनके मणिबंध हों वह निर्धन होते हैं ॥ ३८ ॥ जिनकी हथेली निम्न (नीची) हो वह पिताके धनसे रहित होते हैं. सम, गोल और निम्न जिनकी हथेली हो वह धनवान् होते हैं. जिनकी ऊंची हथेली हो वह पुरुष दाता होते हैं ॥ ३९ ॥ विषम हथेली जिनकी हो वह क्रूर और निर्धन होते हैं, लाखके समान लाल रंगकी जिनकी हथेली हो वह ऐश्वर्यवान् होते हैं. पीले रंगकी हथेलीवाले अगम्या स्त्रीमें गमन करते हैं, रूखी हथेलीवाले निर्धन होते हैं ॥ ४० ॥ तुषोंके समान रेखाओंसे युक्त जिनके नख हों वह नपुंसक होते हैं. चपटे और फूटे जिनके नख हों वह निर्धन होते हैं. बुरे नखवाले और रंगसे हीन नखवाले पुरुष दूसरेकी बातमें तर्क करनेवाले होते हैं, तांबेके समान लाल रंगके जिनके

दीर्घैः । पीनोपचितनिमग्नैः क्षितिपतयश्चूचुकैः सुखिनः ॥ २७ ॥ हृदयं समुन्नतं पृथु न वेपनं मांसलं च नृपतीनाम् । अधमानां विपरीतं खररोमचितं शिरालं च ॥ २८ ॥ समवक्षसोऽर्थवन्तः पीनैः शूरास्त्वकिञ्चनास्तनुभिः । विषमं वक्षो येषां ते निःस्वाः शस्त्रनिधनाश्च ॥ २९ ॥ विषमैर्विषमो जत्रुभिरर्थविहीनोऽस्थिसन्धिपरिणद्धैः । उन्नतजत्रुर्भोगी निम्नैर्निःस्वोऽर्थवान् पीनैः ॥ ३० ॥ चिपिटग्रीवो निःस्वः शुष्का सशिरा च यस्य वा ग्रीवा । महिषग्रीवः शूरः शस्त्रान्तो वृषसमग्रीवः ॥ ३१ ॥ कम्बुग्रीवो राजा प्रलम्बकण्ठः प्रभक्षणो भवति । पृष्ठमभग्नमरोमशमर्थवतामशुभदमतोऽन्यत् ॥ ३२ ॥ अस्वेदनपीनोन्नतसुगन्धिसमरोमसंकुलाः कक्षाः । विज्ञातव्या धनिनामतोऽन्यथार्थैर्विहीनानाम् ॥ ३३ ॥ निर्मांसौ रोमचितौ भग्नावल्पौ च निर्धनस्यांसौ । विपुलावव्युच्छिन्नौ सुश्लिष्टौ

जिनके चूचक छोटे बडे और लम्बे हों वे निर्धन होते हैं. जिनके चूचक [illegible] और निमग्न अर्थात् ऊंचे न हो वे राजा होते हैं और सुखी रहते हैं ॥ २७ ॥ ऊंचा, विस्तीर्ण, कंप[illegible] हीन और मांसल हृदय राजाओंका होता है और [illegible] [illegible] हुआ और कृश हृदय अधम पुरुषोंका होता है. कठोर, रोमोंसे युक्त और नाडियों करके व्याप्त हृदयभी अधमोंकाही होता है ॥ २८ ॥ न ऊंची न [illegible] [illegible] धनवान् होते हैं. छोटी छातीवाले पुरुषार्थसे हीन होते हैं. विषम [illegible] वाले धनहीन होते हैं और शस्त्रसे उनका मृत्यु होता है ॥ २९ ॥ कंधोंके [illegible] जत्रु कहते हैं, विषम जत्रुवाला पुरुष क्रूर होता है, अस्थियोंकी संधिमें [illegible] जत्रु हों तो धनहीन होता है. ऊंचे जत्रुवाला भोगी, निम्न जत्रु हो तो निर्धन [illegible] पीन जत्रु हों तो पुरुष धनवान् होता है ॥ ३० ॥ चपटी ग्रीवावाला पुरुष [illegible] होता है. सूखी और नाडियोंसे युक्त जिसकी ग्रीवा हो वहभी निर्धन होता है [illegible] [illegible] समान गरदन होय वह शूर वीर होता है, वृषके समान जिसकी [illegible] हो उसकी शस्त्रसे मृत्यु होती है ॥ ३१ ॥ शंखके तुल्य तीन रेखाओंसे युक्त जिसकी ग्रीवा हो वह राजा होता है, जिसका कंठ लम्बा हो वह [illegible] [illegible] [illegible] नहीं. अभग्न (टूटी हुई नहीं) और रोमोंसे रहित पीठ धन[illegible] होती है, भग्न और रोमोंसे युक्त पीठ निर्धनोंकी होती है ॥ ३२ ॥ [illegible], पीन, ऊंचे, सुगंधयुक्त, सम और रोमयुक्त कक्षा (कांख) धन[illegible] होती है और इससे विपरीत कक्षा निर्धनोंकी होती है ॥ ३३ ॥ मांसरहित, [illegible], भग्न और [illegible] [illegible] निर्धनके होते हैं. विस्तीर्ण अभग्न और सुश्लिष्ट [illegible]

त्रिकोणाभिः । अंगुष्ठमूलरेखाः पुत्राः स्युर्दारिकाः सूक्ष्माः ॥ ४९ ॥ रेखाः प्रदेशिनीगाः शतायुषां कल्पनीयमूनाभिः । छिन्नाभिर्द्रुमपतनं बहुरेखारेखिणो निःस्वाः ॥ ५० ॥ अतिकृशदीर्घैश्चिबुकैर्निर्द्रव्या मांसलैर्धनोपेताः । बिम्बोपमैरवक्रैरधरैर्भूपास्तनुभिरस्वाः ॥ ५१ ॥ ओष्ठैः स्फुटितविखण्डितविवर्णरूक्षैश्च धनपरित्यक्ताः । स्निग्धा घनाश्च दशनाः सुतीक्ष्णदंष्ट्राः समाश्च शुभाः ॥ ५२ ॥ जिह्वा रक्ता दीर्घा श्लक्ष्णा सुसमा च भोगिनां ज्ञेया । श्वेता कृष्णा परुषा निर्द्रव्याणां तथा तालु ॥ ५३ ॥ वक्त्रं सौम्यं संवृतममलं श्लक्ष्णं समं च भूपानाम् । विपरीतं क्लेशभुजां महामुखं दुर्भगाणां च ॥ ५४ ॥ स्त्रीमुखमनपत्यानां शाठ्यवतां मण्डलं परिज्ञेयम् । दीर्घं निर्द्रव्याणां भीरुमुखाः पापकर्माणः ॥५५॥

आकाशकी रेखा हो और त्रिकोण रेखा हो तो वे धर्म करते हैं. अंगुष्ठमूलकी रेखा संतानकी है; उनमें जितनी रेखा सूक्ष्म हों उतनी कन्या होती हैं; जितनी रेखा स्थूल हों उतने पुत्र होते हैं ॥ ४९ ॥ तर्जनी अंगुलीतक जिनकी रेखा पहुँचे वे सौ वर्षका आयु पाते हैं. छोटी रेखा हो तो अनुमानसे आयु जाने, टूटी रेखा हाथमें हो तो वृक्षसे गिरे, जिनके हाथमें बहुत रेखा हों अथवा रेखा न हो वे निर्धन होवे हैं ॥ ५० ॥ बहुत कृश और लंबी ठोडी हो तो निर्धन होते हैं, मांससे चिबुक पुष्ट हो तो धनवान् होवे हैं; कन्दूरीके समान रक्तवर्ण और अवक्र नीचेका ओष्ठ हो तो राजा होते हैं. छोटा अधर (नीचेका ओष्ठ) हो तो निर्धन होते हैं ॥ ५१ ॥ फूटे हुए, खंडित, बुरे रंगके और रूखे ओष्ठ हों तो वे पुरुष धनहीन होवे हैं. स्निग्ध, घन (गहरे), तीखी डाढोंसे युक्त और समान दांत शुभ होते हैं ॥ ५२ ॥ रक्तवर्ण, लंबी, श्लक्ष्ण और समान जीभ हो तो भोगी होते हैं. श्वेत, कृष्ण और रूखी जिह्वा हो तो धनहीन होते हैं. यही लक्षण तालुकाभी जाने ॥ ५३ ॥ सौम्य, संवृत, निर्मल, श्लक्ष्ण और सम वक्त्र (चेहरा) राजाओंका होता है. इससे विरुद्ध अर्थात् असौम्य, असंवृत, अश्लक्ष्ण और विषम वक्त्र क्लेश भोगनेवाले पुरुषोंका होता है, बहुत फैला हुआ मुख दुर्भग पुरुषोंका होता है ॥ ५४ ॥ स्त्रीकासा मुख जिन पुरुषोंका हो वह संतानसे हीन होते हैं, गोल मुखवाले पुरुष शठ होवे हैं. लंबे मुखवाले धनहीन होवे हैं. भयभीत दीख पडे वह पापी होवे

---

१ इस रेखका छिन्न स्थान अनुपात करके जितने वर्षों है उसमें गिरेगा, उतने वर्षमें वह वृक्षसे गिरेगा।

अंगुष्ठयवैराढ्याः सुतवन्तोऽङ्गुष्ठमूलगैश्च यवैः । दीर्घांगुलिपर्वाणः सु-
दीर्घायुषश्चैव ॥ ४२ ॥ स्निग्धा निम्ना रेखा धनिनां तद्व्यत्ययेन निःस्वानां
विरलांगुलयो निःस्वा धनसञ्चयिनो घनांगुलयः ॥ ४३ ॥ तिस्रो रेखा मणिब-
न्धनोत्थिताः करतलोपगा नृपतेः । मीनयुगाङ्कितपाणिर्नित्यं सत्रप्रदो भवति
॥ ४४ ॥ वज्राकारा धनिनां विद्याभाजां तु मीनपुच्छनिभाः । शंखातपत्र-
शिबिकागजाश्वपद्मोपमा नृपतेः ॥ ४५ ॥ कलशमृणालपताकांकुशोपमाभिर्भ-
वन्ति निधिपालाः । दामनिभाभिश्चाढ्याः स्वस्तिकरूपाभिरैश्वर्यम् ॥ ४६ ॥
चक्रासिपरशुतोमरशक्तिधनुःकुन्तसन्निभा रेखाः । कुर्वन्ति चमूनाथं यज्वान-
मुलूखलाकाराः ॥ ४७ ॥ [illegible]
निम्न चैवाग्निहोत्रिणो ब्रह्म[illegible] ॥ ४८ ॥ [illegible]

देसानुनादं च । दीर्घायुषां प्रमुक्तं विज्ञेयं संहतं चैवं ॥ ६३ ॥
नो रक्तान्तविलोचनाः श्रियोभाजः । मधुपिङ्गलैर्महार्था मार्जार-
ताः ॥६४ ॥ हरिणाक्षा मण्डललोचनाश्च जिह्मैश्च लोचनैश्चौराः ।
नेत्रा गजसदृशदृशश्चमूपतयः ॥ ६५ ॥ ऐश्वर्यं गम्भीरैर्नीलोत्प-
र्विद्वांसः । अतिकृष्णतारकाणामक्ष्णामुत्पाटनं भवति ॥ ६६ ॥
स्थूलदृशां श्यावाक्षाणां च भवति सौभाग्यम् । दीना दरिद्रस्वानां
पुलार्थभोगवताम् ॥ ६७ ॥ अभ्युन्नताभिरल्पायुषो विशालोन्नता-
नः । विषमभ्रुवो दरिद्रा बालेन्दुनतभ्रुवः सधनाः ॥ ६८ ॥ दीर्घा-
भिनिः खण्डाभिर्थनारिहीनाः । मध्यविनतभ्रुवो ये ते सक्ताः स्त्रीष्व-
६९ ॥ उन्नतविपुलं शंखैर्धन्या निम्नैः सुतार्थसन्त्यक्ताः । विषमल-
ना धनवन्तोऽर्धेन्दुसदृशेन ॥ ७० ॥ शुक्तिविशालैराचार्यता शिरास-

हुआ इत्यादि अनुनाद करके युक्त प्रयुक्त (अतिदीर्घ) और संहत जो पुरुष
दीर्घायु होते हैं ॥ ६३ ॥ कमलदलके तुल्य नेत्रवाले धनवान् होते हैं,
त्रोंके अंत लाल हों वे लक्ष्मीवान् होते हैं. शहतके तुल्य पिंगल रंगके
वडे धनवान् होते हैं. बिल्लीके तुल्य कुंजे नेत्र हों तो पापी होते हैं॥६४॥
तुल्य नेत्र हों और गोल नेत्र हों और जिह्म (अचल) नेत्र जिसके हों वे
ते हैं, भेंगे नेत्र हों तो क्रूर होते हैं. हाथीके तुल्य नेत्र हों तो सेनापति होते हैं,
॥ गहरे नेत्र हों तो ऐश्वर्य होता है. नील कमलके समान कान्तिके नेत्र विद्वान्
के होते हैं. जिन नेत्रोंका तारा अति कृष्ण हो वे नेत्र उखाडे जाते हैं॥ ६६ ॥
त्र हों तो राजाके मंत्री होते हैं. कपिश रंगके नेत्र हों तो सौभाग्य होता है.
के नेत्र दीन हों वह निर्धन होते हैं; स्निग्ध और वडे नेत्रवाले धनवान् और
होते हैं ॥ ६७ ॥ मध्यसे जिनकी भ्रू ऊंची हो वे अल्पायु होते हैं. वडी
ऊंची भ्रू हो तो अतिसुखी होते हैं. छोटी बडी भ्रू हो तो दरिद्री होते हैं.
चंद्रमाकी भांति जिनकी झुकी भ्रू हो वे धनवान् होते हैं ॥ ६८ ॥ लम्बी
परस्पर न मिली हुई जिनकी भ्रू हो वे धनवान् होते हैं. टूटी हुई भ्रू हो तो
न होते हैं. मध्यसे जिनकी भ्रू न हो वे पुरुष अगम्य स्त्रियोंमें आसक्त
हैं ॥ ६९ ॥ ऊंची और वडी कनपटी हों तो धनी होते हैं. निम्न शंख हो
त्र और धनसे हीन होते हैं. जिनका ललाट टेढा हो वे निर्धन होते हैं. अर्ध-
के तुल्य जिनका ललाट हो वे धनवान् होते हैं ॥ ७० ॥ सीपके समान

चतुरस्रं धूर्तानां निम्नं वक्त्रं च तनयरहितानाम् । कृपणानामतिह्रस्वं सम्पूर्णं भोगिनां कान्तम् ॥ ५६ ॥ अस्फुटिताग्रं स्निग्धं श्मश्रु शुभं मृदु च सन्नतं चैव । रक्तैः परुषैश्चौराः श्मश्रुभिरल्पैश्च विज्ञेयाः ॥ ५७ ॥ निर्मांसैः कर्णैः पापमृत्यवश्चिपिटैः सुबहुभोगाः । कृपणाश्च ह्रस्वकर्णाः शंकुश्रवणाश्च भूपाः ॥ ५८ ॥ रोमशकर्णा दीर्घायुषस्तु धनभागिनो विपुलकर्णाः । क्रूराः शिराव-नद्धैर्व्यालम्बैर्मांसलैः सुखिनः ॥५९॥ भोगी त्वनिम्नगण्डो मन्त्री सम्पूर्णमांसगण्डो यः । सुखभाक् शुकसमनासश्चिरजीवी शुष्कनासश्च ॥ ६० ॥ छिन्नानुरूपयागम्यगामिनो दीर्घया तु सौभाग्यम् । आकुञ्चितया चौरः स्त्रीमृत्युः स्याच्चिपिटनासः ॥ ६१ ॥ धनिनोऽग्रवक्रनासा दक्षिणवक्राः प्रभक्षणाः क्रूराः । ऋज्वी स्वल्पच्छिद्रा सुपुटा नासा सभाग्यानाम् ॥ ६२ ॥ धनिनां क्षुतं सकृद् द्वि-

है ॥ ५५ ॥ धूर्तोंका मुख चौखूंटा होता है, निम्न मुख पुत्रहीन पुरुषोंका होता है. कंजूसोंका मुख बहुत छोटा होता है, सम्पूर्ण और मनोहर जिनका मुख हो वे भोगी होते हैं ॥ ५६ ॥ जिनके बाल आगेसे फटे न हों, स्निग्ध हों, कोमल, नम्र अर्थात् भली भांति नीचेको झुकी हुई दाढी हो तो शुभ है. लाल रंगकी कठोर और अल्प दाढी जिनकी हो वे चोर होते हैं ॥ ५७ ॥ जिनके कर्ण मांसरहित हों उनकी मृत्यु पापकर्मसे होती है. चपटे कानवाले बडे भोगी होते हैं, छोटे कानोंवाले कृपण होते हैं. शंकुके तुल्य आगेसे तीखे कर्णवाले सेनापति होते हैं ॥ ५८ ॥ रोमयुक्त कर्ण हों तो दीर्घायु पाते हैं, बडे कानवाले धनवान् होते हैं. नाडियोंसे नद्ध कानवाले हों तो वे पुरुष क्रूर होते हैं. लम्बे और मांससे पुष्ट कानवाले सुखी होते हैं ॥ ५९ ॥ जिसके कपोल ऊंचे हों वह भोगी होता है. मांससे पुष्ट जिसके कपोल हों वह राजाका मंत्री होता है. शुक (तोते) के समान जिसकी नासिका हो वह सुख-भोगी होता है. सूखी अर्थात् निर्मांस जिसकी नासिका होय वह दीर्घजीवी होता है ॥ ६० ॥ जिसकी नासिका कटीसी दिखाई दे वे अगम्या स्त्रीसे गमन करनेवाले होते हैं, लम्बी नासिका हो तो सौभाग्य होता है, आकुंचित (सिकुडी हुई) नासिकावाला चोर होता है. चपटी नासिकावाला स्त्रीके हाथसे मरता है, आगेसे टेढी जिनकी नासिका हो वे धनी होते हैं, दाहिनी ओर टेढी जिनकी नासिका हो वे धनी होते हैं, दाहिनी ओर टेढी जिनकी नासिका हो वे बहुभक्षी और क्रूर होते हैं. सीधी छोटे छिद्रोंसे युक्त सुन्दर पुटोंवाली नासिकावाले भाग्यवान् होते हैं. ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ एक बार छींकें वे धनवान् होते हैं.

सल्पायुर्न्यूनाभिर्भान्तरे कल्प्यम् ॥ ७८ ॥ परिमण्डलैर्गवाढ्याश्छत्राकारैः शिरोभिरवनीशाः । चिपिटैः पितृमातृघ्नाः करोटिशिरसां चिरान्मृत्युः ॥ ७९ ॥ घटमूर्धा ध्यानरुचिर्द्विमस्तकः पापकृद्धनैस्त्यक्तः । निम्नं तु शिरो महतां बहुनिम्नमनर्थदं भवति ॥ ८० ॥ एकैकभवैः स्निग्धैः कृष्णैराकुञ्चितैरभिन्नाग्रैः । मृदुभिर्न चातिबहुभिः केशैः सुखभाग् नरेन्द्रो वा ॥ ८१ ॥ बहुमूलविषमकपिलाः स्थूलस्फुटिताग्रपरुषह्रस्वाश्च । अतिकुटिलाश्चातिघनाश्च मूर्धजा वित्तहीनानाम् ॥ ८२ ॥ यद्यद्गात्रं रूक्षं मांसविहीनं शिरावनद्धं च । तत्तदनिष्टं प्रोक्तं विपरीतमतः शुभं सर्वम् ॥ ८३ ॥ त्रिषु विपुलो गम्भीरस्त्रिष्वेव षडुन्नतश्चतुर्ह्रस्वः । सप्तसु रक्तो राजा पञ्चसु दीर्घश्च सूक्ष्मश्च ॥ ८४ ॥ उरो ललाटं वदनं च पुंसां विस्तीर्णमेतत्त्रितयं प्रशस्तम् । नाभिः स्वरः सत्त्वमिति प्रदिष्टं

है. वामभागमें टेढी रेखा हो तो चालीस वर्षकी आयु होती है छोटी रेखा हो तो बीस वर्षसेभी कम आयु होती है, न्यून रेखा अर्थात् एक दो रेखा हों तोभी बीससे न्यूनही आयु होती है, इन रेखाओंके मध्यमें कल्पना करके आयु जान ले. जैसा तीन रेखा होनेसे सौ वर्ष और चार रेखा होनेसे पिचानवे वर्षकी आयु कहना, साढे तीन रेखा होनेसे साढे सतानवे वर्ष आयुकी कल्पना करनी चाहिये, ऐसही औरभी जानो ॥ ७८ ॥ गोल शिर जिनका हो वह बहुत गायोंसे युक्त होते हैं, छत्रके आकार ऊपरसे विस्तीर्ण शिर हो तो राजा होवे है. चपटे शिरके पुरुष माता पिताका वध करते हैं, करोटिके आकार जिनका शिर हो वे बहुत दिन जीते हैं ॥ ७९ ॥ घटके आकार जिनका शिर हो वह पापी और निर्धन होते हैं. निम्न शिर जिनका हो वे महात्मा पुरुष होते हैं. परन्तु अतिनिम्न हो तो अनर्थ करता है ॥८०॥ एक रोमकूपमें एक २ रोम उत्पन्न हों, कृष्ण, स्निग्ध, आकुंचित (थोडेसे कुटिल) अग्र जिनके, नहीं टूटे हुए, कोमल और बहुत घने नहीं ऐसे केश जिन मनुष्योंके हों वह सुखी होते हैं अथवा राजा होवे हैं ॥८१॥ एक २ रोमकूपसे बहुतसे उत्पन्न हुए हों, कोई बडे, कोई छोटे, कपिल रंग, मोटे, आगेसे फटे हुए, रूखे, छोटे व बहुत कुटिल और बहुत घने केश निर्धनोंके होते हैं ॥८२॥ जो जो अंग रूखा, मांससे हीन और नाडियोंसे व्याप्त हो वह अंग अशुभ होता और जो अंग स्निग्ध, पुष्ट और नाडियोंसे रहित हो वह शुभ होता है ॥ ८३ ॥ जिसके अंग विस्तीर्ण हों, तीन अंग गंभीर हों छः अंग ऊंचे हों, चार अंग ह्रस्व (छोटे) हों, सात अंग रक्तवर्ण हों, पांच अंग दीर्घ हों और पांच अंग सूक्ष्म हों वह राजा होता है ॥ ८४ ॥ छाती, ललाट और बदन यह तीन अंग विस्तीर्ण

न्नतैरधर्मरताः । उन्नतशिराभिराढ्याः स्वस्तिकवत्संस्थिताभिश्च ॥ ७१ ॥
निम्नललाटा वधबन्धभागिनः क्रूरकर्मनिरताश्च । अभ्युन्नतैश्च भूपाः कृपणाः
स्युः संवृत्तललाटाः ॥ ७२ ॥ रुदितमदीनमनश्रु स्निग्धं च शुभावहं मनुष्या-
णाम् । रूक्षं दीनं प्रचुराश्रु चैव न शुभप्रदं पुंसाम् ॥ ७३ ॥ हसितं शुभदम-
कम्पं सनिमीलितलोचनं च पापस्य । दुष्टस्य हसितमसकृत् सोन्मादस्यासकृ-
त्प्रान्ते ॥ ७४ ॥ तिस्रो रेखाः शतजीविनां ललाटायताः स्थिता यदि ताः ।
चतसृभिरवनीशत्वं नवतिश्चायुः सपञ्चाब्दा ॥ ७५ ॥ विच्छिन्नाभिरगम्यग-
मिनो नवतिरप्यरेखेण । केशान्तोपगताभी रेखाभिरशीतिवर्षायुः ॥ ७६ ॥
पञ्चभिरायुः सप्ततिरेकाग्रावस्थिताभिरपि षष्टिः । बहुरेखेण शतार्धं चत्वारिं-
शच्च वक्राभिः ॥ ७७ ॥ त्रिंशद्भ्रूलग्नाभिर्विंशतिकश्चैव वामवक्राभिः । क्षुद्राभिः

विस्तीर्ण जिनके ललाट हों उनको आचार्यता होती है, नाडियोंसे व्याप्त जिनके ललाट हो वे अधर्म करनेमें तैयार रहते हैं. ललाटके बीच ऊंची नाडी हो और स्वस्तिककी भांति स्थित हो वे पुरुष धनाढ्य होते हैं ॥ ७१ ॥ जिनके ललाट निम्न हों वे वध और बन्धनके भागी होते हैं और क्रूर कर्म करनेमें तत्पर रहते हैं. ऊंचे ललाट हों वे पुरुष राजा होते हैं. गोल ललाट होनेसे कृपण होते हैं ॥ ७२ ॥ दीनतासे हीन, अश्रुओंसे हीन और स्निग्ध रोदन (रोना) मनुष्योंको शुभ देता है. रूक्ष, दीन और बहुत अश्रुओं करके युक्त रोदन पुरुषोंको शुभदाई नहीं ॥ ७३ ॥ हँसनेके समय शरीर न कांपे तो हँसना शुभ होता है, नेत्र मूंदकर हँसनेवाले पापी होते हैं. दोषयुक्त पुरुष वारंवार हँसता है. हँसनेके अंतमें वारंवार हँसना उन्मादयुक्त पुरुषका लक्षण है ॥ ७४ ॥ ललाटमें लम्बी रेखा तीन हों तो पुरुषकी आयु शत वर्ष होता है और चार रेखा ललाटमें हों तो राजा होता है और पिचानवे वर्ष आयुष होता है ॥ ७५ ॥ टूटी हुई रेखा ललाटमें हो तो पुरुष अगम्या गमन करनेवाले होते हैं और नब्बे वर्ष उनका आयुष होता है, ललाटमें एक भी रेखा न हो तौभी नब्बे वर्ष आयुष होता है, केशोंकी जहां उत्पत्ति हो उसको केशांत कहते हैं. ललाटमें केशांततक रेखा पहुंची हो तो अस्सी वर्षकी आयु होती है ॥ ७६ ॥ पांच रेखा ललाटमें हों तो सत्तर वर्षकी आयु होती है, सब रेखा मिल गये हों तो साठ वर्षकी आयु होती है, छः सात आदि बहुत रेखा ललाटमें हों तो पचास वर्षकी आयु होती है, टेढी रेखा ललाटमें हों तो चालीस वर्षकी आयु होती है ॥ ७७ ॥ भृकुटी रेखा लग जाय तो तीस वर्षकी आयु

सर्वार्थसिद्धिजननी जननीव चाप्या छाया फलं तनुभृतां शुभमादधाति ॥ ९१ ॥ चण्डाधृष्या पद्महेमाग्निवर्णा युक्ता तेजोविक्रमैः सप्रतापैः ।आग्नेयीति प्राणिनां स्याज्जयाय क्षिप्रं सिद्धिं वाञ्छितार्थस्य धत्ते ॥ ९२ ॥ मलिनपरुषकृष्णा पापगन्धानिलोत्था जनयति वधबन्धव्याध्यनर्थार्थनाशान् । स्फटिकसदृशरूपा भाग्ययुक्तात्युदारा निधिरिव गगनोत्था श्रेयसां स्वच्छवर्णा ॥ ९३ ॥ छायाः क्रमेण कुजलाग्न्यनिलाम्बरोत्थाः केचिद्वदन्ति दश ताश्च यथानुपूर्व्या । सूर्याब्जनाभपुरुहूतयमोडुपानां तुल्यास्तु लक्षणफलैरिति तत्समासः ॥ ९४ ॥ इति मृजा ॥ करिवृषरथौघभेरीमृदङ्गसिंहाब्दनिस्वना भूपाः । गर्दभजर्जररूक्षस्वराश्च धनसौख्यसन्त्यक्ताः ॥ ९५ ॥ इति स्वरः ॥ सप्त भवन्ति च सारा

लता, सुख और अभ्युदय करती है, सब कार्योंकी सिद्धि करनेवाली होती है और माताकी भांति पुरुष आदि जीवोंको शुभ फल देती है ॥ ९१ ॥ अग्निकी छाया (क्रोधशील) अधृष्या (जिसका कोई तिरस्कार न कर सके), कमल, सुवर्ण और अग्निके तुल्य वर्ण, तेज, पराक्रम और प्रतापसे युक्त होती है, ऐसी अग्निकी छाया जीवोंको जय देती है, शीघ्रही वांछित अर्थकी सिद्धि करती है ॥ ९२ ॥ वायुकी छाया मलीन, रूखी, काली और दुर्गन्धदार होती है, वह छाया मरण बंधन, रोग, अनथ और धनका नाश करती है. आकाशकी छाया स्फटिकके समान अति निर्मल होती है. वह छाया भाग्ययुक्त और अति उदार होती है और कल्याणोंका मानो निधान होती है और स्वच्छ होती है ॥ ९३ ॥ क्रमसे भूमि, जल, अग्नि, वायु और आकाशकी पांच छाया कहीं और गर्गादि कोई मुनि दश छाया कहते हैं. उनके मतमें पांच छाया तो भूमि आदिकी और पांच छाया सूर्य, विष्णु, इन्द्र, यम और चन्द्रकी हैं, परन्तु इन छायाओंके लक्षण और फल भूमि आदिकी छायाओंके बराबरही हैं कारण हमने दश छायाका संक्षेप करके पांच छाया रक्खी हैं, यह मृजा (पंचमहाभूतमयी छाया) का लक्षण कहा है ॥ ९४ ॥ हाथी, वृष, रथसमूह, भेरी, मृदंग, सिंह और मेघके तुल्य जिनका शब्द हो, वे भूप होते हैं. जर्जर और रूखा जिनका स्वर हो वे धन और सुखसे हीन होते हैं. यह स्वरका लक्षण कहा ॥ ९५ ॥ मेद (अस्थियोंके भीतरका स्नेह), मज्जा (कपालके भीतरका स्नेह), त्वचा (चर्म), अस्थि, वीर्य, रुधिर और मांस यह सात प्राणियोंके शरीरमें सार होते हैं, अब संक्षेपसे इनका फल